प्राचीन भारतीय वेश-भूषा

डा० मोतीचन्द्र, एम० ए०, पी-एच० डी०,
डायरेक्टर, प्रिन्स आफ वेल्स म्यूजियम,
बम्बई

भारती-भण्डार
प्रयाग

—विक्रेता—

भारती-भंडार
लीडर प्रेस, प्रयाग

सस्ता साहित्य-मंडल
कनाट सर्कस, नयी दिल्ली

प्रथम संस्करण
सं० २००७ वि०
मूल्य १२)

मुद्रक
महादेव एन० जोशी
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

विषय-सूची

भूमिका

कुछ वर्षों से भारतीय संस्कृति का नाम देश विदेशों में फैल रहा है और लोग उस संस्कृति के सब अंगों को जानने के लिए उत्सुक हैं। पर अभाग्यवश भारतीय संस्कृति का अर्थ अभी तक इस देश की गूढ़ विचारधाराओं और नाना मत-मतांतरों तक ही सीमित है। भारतीय दर्शनों और धर्मों के प्रति इस अनुराग का नतीजा यह हुआ है कि संस्कृति के दूसरे अंग अछूते ही छूट गये हैं। विद्वानों ने भारतीय कला का, जो हमारी प्राचीन संस्कृति का एक विशिष्ट अंग है, कुछ न कुछ अध्ययन किया है, पर उसके समझाने में कुछ विद्वानों द्वारा छायावादी विचारों का आश्रय लेने से, हम उस कला में केवल अपनी दार्शनिक मनोवृत्तियों का ही प्रतिबिम्ब देखने लगे हैं। कला के इस दार्शनिक रूप की विचारधारा इतने कठिन शब्दों में व्यक्त की जाती है कि बिना भारतीय दर्शन के ज्ञान के वह समझी तक नहीं जा सकती। कला के दार्शनिक सिद्धांतों पर इतना अधिक जोर देने का नतीजा यह हुआ है कि 'कला के लिए कला' के सिद्धान्त को ले कर हम भारतीय कला की समीक्षा करने में डरते हैं। दर्शन की पेचीदा विचारधाराओं में डूब कर कला अपना निजत्व खो बैठती है। कला की दार्शनिक पृष्ठिका भारतीय कला के उस महत् उद्देश्य की अवहेलना करती है, जिसके अनुसार लोक जनित कला सब के जीवन और भावनाओं का प्रतिबिम्ब है और जिसके द्वारा रसानुभूति करने का सब को अधिकार है।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या अज्ञात के प्रति आध्यात्मिक विचार ही भारतीय संस्कृति है? कदापि नहीं। भारतीय द्रष्टाओं के मतानुसार जीवन का परम ध्येय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष है; इन चारों के संतुलित और सम्मिलित प्रयोग से ही हम पूर्णता और विकास के पथ पर अग्रसर होते हैं। अगर हम केवल धर्म और मोक्ष के साधन में ही लगे रहें, तो इसके माने होते हैं कि जीवन में अर्थ और काम की कोई महत्ता ही नहीं है। ऐसा करने से जीवन एकांगी बन जाता है और उस पूर्णता और गौरव तक नहीं पहुंच सकता, जो आदर्श जीवन के लक्ष्य हैं।

इसमें संदेह नहीं कि दर्शन और धार्मिक तर्क भारतीय जीवन को बहुत प्रिय थे और जहां तक सूक्ष्म से सूक्ष्म आधिदैविक विचारधाराओं के सृजन और मनन का संबंध है, भारतीय संसार के बड़े से बड़े दर्शनों से टक्कर लेते हुए आगे निकल जाते हैं। पर साथ ही साथ भारतीय जीवन और उसके आधि-भौतिक साधनों से भी प्रेम करते थे। सुसज्जित महल, करीनेदार नगर, अनेक जातियों और वर्णों वाले दास-दासियों से युक्त राज सभाएं, वादक और नर्तक, चमचमाते हुए गहने और अनेक तरह की वेश-भूषाएँ और कपड़े, प्रसाधन के लिए अनेक भांति के गंध द्रव्य, ये सब भी तो भारतीय संस्कृति और जीवन के प्रतीक थे। दार्शनिकों को सभ्यता के इन बाह्य प्रतीकों में अस्थिरता भले ही देख पड़ती हो, लेकिन संसार में पड़े हुए एक साधारण जन के लिए तो सभ्यता के ये प्रतीक सत्य और सुन्दर देख पड़ते हैं। सभ्यता के इन बाह्य प्रतीकों से हम इतिहास की सूखी हड्डियों में जान डाल सकते हैं। रूखी घटनाओं के विवरण से यह संभव नहीं है।

भारतीय संस्कृति की पूरी तस्वीर खींचने के लिए इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि हम उसके भौतिक पहलुओं की अच्छी तरह से जांच-पड़ताल करें। इस जांच पड़ताल के लिए संस्कृत, प्राकृत, पालि और अपभ्रंश साहित्य में काफी सामग्री है। इन से मिले विवरणों की सहायता हम पुरातत्व, मूर्तियों और चित्रों से जांच

सकते हैं । इस संबंध में हम यह कह देना उचित उमझते हैं कि हमें साहित्य को सांस्कृतिक इतिहास में सब से ऊँचा स्थान नहीं देना चाहिए । एक लेखक चाहे वह कितना ही विद्वान् अथवा सूक्ष्म-दर्शक हो, एक वस्तु विशेष का विवरण हमारे सामने उतनी खूबी से नहीं रख सकता, जितनी सफाई या सुंदरता के साथ एक मूर्ति, स्तर अथवा चित्रकार। साहित्यिक पुरातत्व का अपने क्षेत्र में महत्व है, लेकिन और बच्चे सबूतों के रहते हुए इसको प्रधानता न देना ही श्रेयस्कर है ।

इस पुस्तक का उद्देश्य प्राचीन भारत के सांस्कृतिक जीवन का एक पहलू अर्थात् वेश-भूषा का इतिहास लोगों के सामने रखना है । अभी तक विद्वानों ने भारतीय संस्कृति के इस पहलू पर ध्यान तक नहीं दिया है, क्योंकि उनकी राय में भारतीय वेश-भूषा में विकास क्रम नहीं है । आज धोती, चादर और पगड़ी पहनी जाती है, वही दो हजार बरस पहले भी पहनी जाती थी, फिर ऐसी रूढ़िगत वेश-भूषा का इतिहास ही क्या ? भारतीय वेश-भूषा के इतिहास की ओर विद्वानों का ध्यान न देने का एक कारण यह भी था कि लोगों का यह विश्वास था और अब भी है कि सिले कपड़े इस देश में १६ वीं शताब्दी में मुसलमान लाए । विद्वानों के भारतीय वेश भूषा के संबंध में दोनों विचार भ्रामक हैं । यह सही है कि अब तक भारतीय धोती, चादर, दुपट्टे और पगड़ी जो हमारे पहरावे में दो हजार बरस पहले प्रचलित थीं, पहनते हैं, लेकिन प्राचीन और आधुनिक वेश-भूषाओं की समानता यहीं खतम हो जाती है। कौन कह सकता है कि आज की धोती और दो हजार बरस पहले की धोती एक ही तरह से पहनी जाती थी अथवा आज की पगड़ी और तब की पगड़ी एक सी है ? अब की साड़ी और तब की साड़ी में भी बहुत बड़ा अंतर है। ठीक बात तो यह है कि भारतीय इतिहास के प्रत्येक युग में कपड़े पहरने का ढंग बदल जाता है । सिले कपड़ों का भी यही हाल है । कम से कम वैदिक युग से लेकर ७ वीं सदी तक सिले कपड़ों के उल्लेख साहित्य में मिलते हैं और उनका अंकन भी बहुधा अर्धचित्रों और चित्रों में हुआ है । बात यह है कि इस उष्णता-प्रधान देश में धोती चादर ही आरामदेह और स्वास्थ्य-वर्धक पहरावा था और उसे लोग चाव से पहनते थे, पर इसके यह माने नहीं कि सिले वस्त्र कभी पहने ही नहीं जाते थे । स्त्रियां तो अक्सर कंचुक या चोली पहनतीं थीं । विदेशी संपर्क से सिले कपड़ों का इस देश में और अधिक प्रचार बढ़ा, पर जन-साधारण अपनी धोती चादर को कभी न छोड़ सका । इस बात को मानने का भी पर्याप्त कारण है कि बहुत प्राचीन काल से गंधार और पंजाब में लोग ठंडक की वजह से सिले वस्त्र पहनते थे और इन सिले वस्त्रों में हम यूनानी, ईरानी और मध्य एशिया का काफी प्रभाव देखते हैं क्योंकि इन प्रान्तों का उपरोक्त जातियों से बहुत प्राचीन काल से घनिष्ट संबंध रहा और ऐसी अवस्था में दोनों में सांस्कृतिक आदान-प्रदान का होना स्वाभाविक था ।

वेश भूषा के इतिहास में भारतीय वस्त्रों का भी इतिहास आ जाता है, क्योंकि प्राचीन पहरावों में हमारी दिलचस्पी और बढ़ जाती है जब हम ठीक-ठीक जान लेते हैं कि वे किन कपड़ों से बनते थे और बड़े सादे होते थे अथवा नक्काशीदार । भारत के प्राचीन वस्त्र-व्यवसाय के इतिहास के लिए भी ऐसी जांच-पड़ताल बहुत जरूरी है । उदाहरणार्थ अभी तक हम प्राचीन भारतीय वस्त्रों के इतिहास के लिए यूनानी लेखकों के ही आश्रित थे और उनसे भी हमें उन कपड़ों के भारतीय नाम नहीं मिलते । हमारा साहित्य इस कमी को बहुत कुछ दूर कर देता है । वैदिक, बौद्ध और जैन साहित्यों तथा आख्यायिकाओं और कोशों में वस्त्रों के ऐसे सैकड़ों नाम सुरक्षित हैं । इस वृहद् साहित्य में आयी तालिकाओं और उनकी टीकाओं से उन वस्त्रों के केवल नाम ही नहीं, उनके विवरण भी मिलते हैं । साहित्य से यह भी पता चलता है कि देश के किन-किन भागों और नगरों में अच्छे कपड़े बनते थे। इन तालिकाओं में सन और वल्कल के बने वस्त्रों के

नाम आये हैं, जिन्हें बहुधा साधु अथवा बहुत ही साधारण लोग पहनते थे । इनमें बहुत से चमड़ों और समूरों के नाम भी आये हैं । कृष्णाजिन ऐसे चमड़े तो ऋषि-मुनि पवित्रता के खयाल से पहनते थे, पर दूसरे चमड़े तो लगता है इस देश के बाहर भेजे जाते थे, क्योंकि इस गरम देश में समूर अथवा चमड़ों के बने वस्त्र पहनना असंभव था।

यह कहना कठिन है कि आदिम युग में भारतीयों की वेश-भूषा क्या थी । हमें अभी तक की खोजों से यह पता नहीं लगा है कि वे कपड़े पहनते थे अथवा नहीं और अगर कपड़े पहनते थे, तो वे चमड़े के बने होते थे अथवा पत्तियों और छालों के । प्रागैतिहासिक गुफा-चित्रों से तो यही पता चलता है कि उस युग के लोग प्रायः नग्न रहते थे और अचेलकत्व कोई बुरी बात नहीं मानी जाती थी । इस संबंध में हम कुछ प्राचीन संप्रदायों में अचेलकत्व का उल्लेख कर देना चाहते हैं। बौद्ध साहित्य में तो ऐसे अनेक नंगे साधुओं के संप्रदायों का उल्लेख आया है जिनमें मुख्य जैन थे । लगता है उनका नग्नत्व उस प्राचीन समाज के नग्नत्व की ओर इशारा करता है जब शरीर ढकने की भावना का उदय नहीं हुआ था । धीरे-धीरे जब सभ्यता ने आगे कदम बढ़ाया, तब समाज तो वस्त्रों का आदी हो गया, पर उसके धार्मिक गुरु नग्नत्व की प्राचीनतम प्रथा अपनाये रहे, जो एक समय सर्वसाधारण का नियम था। वैदिक और बाद के साहित्यों में आये चमड़े, वल्कल और तृणों के वस्त्र भी उसी आदि सभ्यता की ओर संकेत करते हैं । बात यह है कि पूरा समाज एक साथ ही उन्नति के पथ पर अग्रसर नहीं होता, उसका कुछ भाग हमेशा पीछे रह जाता है और प्राचीनता को निभाये चलता है । इन्हीं पिछड़े लोगों के विश्वासों और आदतों से हम बहुत प्राचीन काल की सभ्यता का चित्र खींच सकते हैं ।

सब से पहले हमें भारतीय वेश-भूषा का पता सिंधु घाटी से मिली प्रागैतिहासिक सभ्यता से मिलता है । मोहेन जोवड़ो और हड़प्पा की यह सभ्यता ३५०० ई० पू० से लेकर १५०० ई० पू० तक फली-फूली और इसका संबंध मध्य पूर्व की सभ्यताओं से था । भौतिक सभ्यता के काफी आगे बढ़ने पर भी लोग बहुत ही खफ़ीफ़ कपड़े पहनते थे । बहुधा लोग नंगे रहते थे और अगर कपड़े पहनते भी थे तो वह लंगोटी या धोती छोटी तहमत होती थी। कभी-कभी लोग चादर ओढ़ लेते थे और अपने बाल फीते से बांधते थे। स्त्रियां कभी कभी पंखे के आकार का शिरोवस्त्र पहनतीं थीं।

यह कहना कठिन है कि लोग सिले वस्त्र पहनते थे अथवा नहीं, गो कि एक मूर्ति कमीज जैसा वस्त्र पहिने दिखलायी गयी है । लगता है लोग कभी-कभी चिपकी और नोकदार टोपियां भी पहनते थे ।

स्त्रियां करधनी से बंधी लंगोटियां पहनतीं थीं। एक स्त्री एक धोती पहरे दिखलाई गयी हैं । शिरोवस्त्र पंखाकार होते थे और लगता है फ्रेम पर चढ़े माड़ीदार कपड़े से बनते थे । इन शिरोवस्त्रों पर कभी कभी अलंकार भी बने होते थे । कभी-कभी शिरोवस्त्र तिपाई नुमा होते थे । स्त्रियां कभी कभी पगड़ी भी पहनतीं थीं।

तकुओं की फिरकियों के मिलने से पता चलता है कि लोग सूत कातते थे । एक वस्त्र के टुकड़े के वैज्ञानिक अध्ययन से पता चलता है कि लोग कपास से अवगत थे । इससे इस बात की भी पुष्टि हो जाती है कि बाबुली भाषा का सिंधु और यूनानी भाषा का सिंडोन शब्द सिंधु देश के बने कपास के कपड़े के लिए ही थे । इस तरह कपास से कपड़े बनाने का श्रेय सब से पहले इसी देश को मिलता है।

मोहेन जोवड़ो के नष्ट होने (२५०० ई० पू०) और आर्यों के भारत आने (१५०० ई० पू०) के अंतर में भारतीय सभ्यता की क्या अवस्था थी, इसका हमें पता नहीं है। जब इस अंधकार युग का परदा उठता है, तब हमें वैदिक सभ्यता का दर्शन होता है। वैदिक युग की सभ्यता एक युग की न हो कर करीब

हजार बरस में फैली हैं और उसमें भिन्न-भिन्न स्तर मिलते हैं। लेकिन जहां तक वस्त्र-भूषा का संबंध है, उसमें ८००. बरस तक कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। इस युग में विजेता आर्यों ने विजितों से बहुत से वस्त्र ग्रहण कर लिये, फिर भी अपने निजी वस्त्रों के प्रति उनका मोह बना रहा।

कातना और बुनना आर्य-सभ्यता के मुख्य अंग थे। ऊनी वस्त्र को आविक कहते थे। सिंध की घाटी में अच्छे ऊनी कपड़े मिलते थे और रावी के प्रदेश के धुले और रंगीन ऊनी कपड़े प्रसिद्ध थे। कंबल और शामुल्य ऊनी वस्त्र थे। शामुल्य समूर हो सकता है।

बहुत प्राचीन युग में आर्य गोचर्म पहनते थे, पर बाद में गायों की आर्थिक उपयोगिता देखते हुए यह प्रथा छोड़ दी गयी। कृष्णाजिन बहुत पवित्र माना जाता था और यज्ञादि के अवसरों पर पहना जाता था। बकरों की खालें भी ओढ़ी जाती थीं। इस देश की जंगली जातियां और व्रात्य भी चमड़ों के कपड़े पहनते थे।

वैदिक साहित्य में कुछ ऐसे वस्त्रों के नाम आये हैं जिनकी ठीक ठीक पहचान नहीं हो सकती। बरासी शायद बरस नाम के वृक्ष की छाल के रेशे से बनता था। दूर्श शायद किसी किस्म का ऊनी वस्त्र था, क्षौम अलसी की छाल के रेशे से बना वस्त्र होता था जो कभी-कभी रंगीन भी होता था। पांडुवाविक ऊन का बना सफेद वस्त्र था। तार्प्य की ठीक ठीक पहचान नहीं हो सकती, शायद यह किसी तरह का रेशमी कपड़ा था। कपास का सब से पहला उल्लेख आश्वालायन श्रौतसूत्र में आया है, इसके कई कारण हो सकते हैं। (१) सिंधु सभ्यता का आर्यों को ज्ञान नहीं था। पूर्वी भारत में आने पर उन्होंने कपास के कातने बुनने से परिचय प्राप्त किया। (२) शायद अनार्य वस्त्र होने से आर्य इसके व्यवहार करने में हिचकिचाते हों, पर इसकी संभावना कम है।

कपड़ा बुनने वाली स्त्रियों के लिए वायित्रि और सिरी शब्दों का व्यवहार हुआ है। वैदिक साहित्य में बुनाई के बहुत से शब्द यथा ओतु (बाना), तंतु (सूत), तंत्र (ताना), वेमन (करघा), प्राचीनतान (आगे खिंचा ताना), वाय (बुनकर), मयूख (ढरकी), आये हैं।

वैदिक साहित्य में पहरावे के लिए साधारणतः वासस् और वसन शब्दों का प्रयोग हुआ है। सुवसन और सुवासस् से अच्छी तरह से कपड़े पहनने का बोध होता है। सुरभि के अर्थ ठीक तरह से बदन पर बैठने वाला कपड़ा है। अच्छे कपड़े पहनने वालों का समाज में आदर होता था, रंग-बिरंगे कपड़े भी पहने जाते थे।

कपड़ों पर कभी-कभी कारचोबी का काम होता था। कपड़ों में झालर (सिच्) और अलंकृत किनारे (आरोक) भी होते थे। धुले और कोरे कपड़े पहने जाते थे। रंगीली स्त्रियां रंगीन और सुनहरे काम वाले कपड़े पहनतीं थीं। व्रात्य नीले कपड़ों के शौकीन थे।

कसीदे के काम को पेशस् और कसीदे काढ़ने वालियों को पेशकारी कहते थे। कसीदे का काम वस्त्रों के ऊपर नीचे और मध्य में किया जाता था। कुछ अलंकार बुने जाते थे और कुछ काढ़े। खूब काम करने से सुईकार की पटुता बढ़ती थी।

आर्य नीवि (लंगोटी), वासस् और अधिवास पहनते थे। नीवि शायद तहमतनुमा वस्त्र था। कोई-कोई इसकी व्युत्पत्ति तमिल नइ से जिसका अर्थ बुनना है, करते हैं। नीवि से प्रायः अथवा पटका लटका होता था जो फुदनों से सजा होता था। स्त्रियां और पुरुष दोनों अपने शरीर को ढकने के लिए उपवसन, पर्याणहन, द्रापि और अत्क पहनते थे। उपवसन और पर्याणहन चादर थे और प्रतिधि [illegible] पट्ट। अत्क पूरे शरीर का लंबा कंचुक था और द्रापि कोई कोटनुमा वस्त्र। उष्णीष, जिसका उल्लेख [illegible]

प्रथम अथर्ववेद में आया है, राजे यज्ञादि अवसरों पर पहनते थे, कभी-कभी स्त्रियां भी पगड़ी पहनतीं थीं। व्रात्यों के उष्णीष में कई फेंटे होते थे और वह एक तरफ झुका कर बांधा जाता था। जूतों का उल्लेख कम है, वटूरिणापाद शायद लड़ाई में पहनने का जूता था। उपानह यज्ञ के अवसर पर यजमान और व्रात्य पहनते थे।

यज्ञ के अवसर पर शुद्ध अनाहत वस्त्र पहने जाते थे। लोगों का विश्वास था कि बाने में अग्नि, ताने में वायु, नीवि में पितृ, प्रघात में नाग, सूत में विश्वेदेवा तथा आरोक में नक्षत्रों का अधिकार है। इस विश्वास से शायद यह मतलब हो कि वस्त्र की पवित्रता से उसमें भूत प्रेत नहीं घुस सकते थे न उस में जादू टोना लग सकता था। •

राजा धोती, चादर और पगड़ी पहनते थे। पगड़ी की जगह कभी-कभी पट्टियों से काम चल जाता था। यज्ञ के अवसर पर स्त्रियां रसना पहनतीं थीं। दीक्षित वस्त्र के ऊपर रेशमी चंडातक जो अधोरुक जैसा कोई वस्त्र था पहिनतीं थीं।

व्रात्य उष्णीष, काली गोटवाले कपड़े और बकरों की खाल पहनते थे। अनुयायी व्रात्यों के कपड़ों के किनारे लाल होते थे और उनकी छीरें बटी हुई। सूत्रों के अनुसार व्रात्य लाल पगड़ी और कुरते पहनते थे, उनकी पगड़ी टेढ़ी बंधी होती थी। वे जूते भी पहनते थे।

महाजानपद युग, शैशु नागों और नंदों (६४२-३२० ई० पू०) में भारतीय सभ्यता और आगे बढ़ी। इस युग के इतिहास की सामग्री हमें जैन सूत्रों, बौद्ध पिटकों और ब्राह्मण सूत्र ग्रंथों में मिलती है। इस युग की आर्य सभ्यता ग्रामों से निकल कर नगरों में पहुँच चुकी थी और देश का कला-कौशल काफी आगे बढ़ चुका था। कपास, क्षौम, रेशम और ऊनी कपड़ों का काफी चलन था। जातकों में सुईकार (पेसकार), बेंत बिनने वालों (नलकार) और बुनकर (तंतुवाय) के व्यवसायों को नीचकर्म कहा है। उपरोक्त भाव बौद्धों के नहीं हो सकते, क्योंकि बुद्ध तो जात-पांत मानते ही न थे, लगता है कहानियों में जाति-पांति की भावना वैदिक समाज की वर्ण-व्यवस्था की द्योतक है। जैन सूत्र तो दरजियों, बुनकरों इत्यादि को शिल्पार्यों की श्रेणी में रखते हैं।

इस युग में कपास की खूब खेती होती थी और बनारस की कपास मशहूर थी। रूई धुनने, कातने और सूत की गड्डियां बनाने का भी वर्णन है। रेशमी कपड़े भी पहने जाते थे। वाहीक और चीन से भी रेशमी कपड़े आते थे। क्षौम के बने कपड़े बहुत महीन और सुन्दर होते थे। यह कपड़ा अलसी की छाल के रेशों से बनता था। उड्डीयान और गंधार के रक्त कंबल बहुत मशहूर थे। शिवि देश के घुस्सों की तो काफी कीमत होती थी। पंजाब और गंधार ऊनी कपड़ों के लिए प्रसिद्ध थे। पंजाब, उत्तरी सीमा प्रान्त, पूर्वी अफगानिस्तान से खालें कीमती शाल, समूर इत्यादि इस देश में आते थे। इस युग में पश्मीनों का बड़ा नाम था। आधुनिक पठानकोट में कोटुंबर नाम के बहुत ही अच्छे ऊनी वस्त्र बनते थे। किखाब को हिरण्य वस्त्र कहते थे।

काशी में बहुत अच्छे कपड़े बनते थे। कहा जाता है कि बनारस के बने कपड़े में बुद्ध का मृत शरीर लपेटा गया था। ये कपड़े नीले, पीले, लाल और सफेद होते थे तथा इनका पोत मुलायम होता था। ये कपड़े सूती होते थे। बनारस अपनी अच्छी रूई और धोने के पानी के कारण सूती कपड़ों के लिए मशहूर था। बनारस में रेशमी और ऊनी वस्त्र भी बनते थे। बनारस की अद्धी की एक जगह बड़ी प्रशंसा की गयी है। बहुत मामूली दरजे के कपड़े सन, भंगेला, फल के रेशे, कुश, वल्कल तथा एरक, मोरमु और मज्जाक

नाम के तृणों से भी बनते थे। तरह-तरह के चमड़ों का प्रयोग वस्त्र और बिछावन के लिए किया जाता था। मालूम तो यह पड़ता है उस समय चमड़े बहुत उपलब्ध थे और दक्षिणापथ में तो चमड़े पहनने का काफी रिवाज था।

चांदनी, मेजपोश, परदे इत्यादि भी सादे अथवा ऊनी होते थे। गोणक बकरे के बाल से बने आस्तरण होते थे। लगता है यह कपड़ा ईरान से आता था जहां इसे कौनकेस कहते थे। ईरान में बना कौनकेस बाबुल भी जाता था जहां इसे लोग अधोवस्त्र की तरह पहनते थे। चित्तक ऊनी पट्टियों को सीकर बना कालीन होता था। सफेद कालीन को पलिका कहते थे तथा फूलदार कालीन का नाम पटलिका था। रजाई को तूलिका कहते थे। सिंह, व्याघ्र इत्यादि के चित्रों से अलंकृत कालीन विकटिका थी। ऊद बिलाव की खालों से कंबल बनते थे। रूखे रोयें वाले कंबल एकंतलोमी कहे जाते थे। कट्टिस्स नाम के आस्तरण में जवाहर जड़े होते थे। कोसेय्य रेशमी कालीन को और कुत्तक बड़े भारी कालीन को कहते थे। हाथी, घोड़ों और रथों के लिए भी आस्तरण होते थे। मृगचर्म साट कर कंबल बनते थे। कदली मृग के समूरों से भी आस्तरण बनते थे। चिमिलिका चांदनी थी। वाहीतिक १६ हाथ लंबी और ८ हाथ चौड़ी ऊनी चादर थी। नमतक नमदा था और कोजव लंबे रोयें वाला कंबल।

कपड़े सज्जी खार में धोये जाते थे। कपड़े नीले, हरे, पीले, लाल और मजीठिया रंगों में रंगे भी जाते थे। भिक्षुओं को पीत वर्ण छोड़ कर और किसी रंग के कपड़े पहनने की आज्ञा न थी।

ब्राह्मण और श्रमण सन के बने कपड़े, कफन के कपड़े, घूर पर फेंके चिथड़ों के बने वस्त्र, तिरीट के रेशे से बने वस्त्र, मृग चर्म, कुश चीर, वल्कल, केस कंबल, बाल कंबल, उलूक पंख कंबल इत्यादि पहन सकते थे। उपरोक्त कपड़े हिंदू साधुओं के भिन्न-भिन्न वर्गों में प्रचलित थे।

बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियों के वस्त्र यथा संघाटी, अन्तरवासक और उत्तरासंग एक होते थे। इन तीनों के सिवाय, प्रत्यस्तरण, कंडूक प्रतिच्छादन, आयोगपट्ट, कायबंध का भी वे उपयोग कर सकते थे। कायबंध के किनारों पर पट्टियां लगी होती थीं और सकरपारेदार तगानी का काम। वस्त्रों में भिक्षु तुक मेक लगा सकते थे। अलंकृत वस्त्रों के पहनने की आज्ञा उन्हें नहीं थी।

बौद्ध भिक्षु अपने कपड़े स्वयं बुन सकते थे। करघे को तंतक, ढरकी को वेमक, टट्टी को शलाका, और डोर को वट्ट कहते थे।

भिक्षुणियां अन्तरवासक और संघाटी के सिवाय कंचुक भी पहन सकती थीं। एकांत में उन्हें एक तिकोने लंगोट पहनने की भी आज्ञा थी।

जैन साधु केवल तीन वस्त्र रख सकते थे। इनमें दो क्षौम की धोतियां होती थीं और एक ऊनी चादर। कपड़े धोने और रंगने का उन्हें अधिकार न था।

साधारण गृहस्थ अंतरवासक, उत्तरासंग और उष्णीष पहनते थे। स्त्रियां और पुरुष दोनों ही कंचुक पहन सकते थे। स्त्रियां मजबूत साड़ियां पहनती थीं। लोग अपने कपड़े बड़े संवार कर पहनते थे और अपने शरीर पर फबने वाले रंग के कपड़े ही उनको विशेष प्रिय थे। स्त्रियां तो अपने कपड़े बड़े ही सुरुचि से संभाल कर पहनती थीं। धोती हस्तिशौंडिक (हाथी के सूंड़ जैसी), मत्स्यवालक (मछली की पूंछ जैसी), चतुष्कर्णक (चौकोर), तालवृंतक (पंखे के आकार की), और शतवल्लिक (सौ चूननों वाली) ढंग से पहनी जाती थी। कमरबंद या कायबंध कई तरह के होते थे यथा कलाबुक (रस्सी का बना) डेड्डुभक (ढेढ़े सांप की शकल का) मुरज (ढोल के आकार का), और मद्दवीन (अलंकार सहित)। स्त्रियां भी कमरबंद और पटके

पहनती थी, पर भिक्षुणियां केवल एक फेंटे वाले सादे कमरबंद पहन सकती थीं। पटके बांस के रेशे, चर्म पट्ट, ऊनी पट्टी, गुथी हुई पट्टी और चोल वस्त्र से बनते थे।

जूते पहनने का काफी रवाज था। जूतों में एक से लेकर चार तल्ले तक होते थे और वे तरह-तरह के रंगीन चमड़ों से बनते थे; लेकिन ऐसे जूते केवल गृहस्थ ही पहन सकते थे। जूतों में निम्नलिखित प्रकार होते थे—पुटबद्ध (घुटने तक के जूते), पालिगुंठिम (पैर ढकने वाले जूते), खल्लकबद्ध (आधुनिक पेशावरी जूते जैसा), मेंडविषाण बद्धिक (जूते के नोक पर मेंढ़ की सींग होती थी), अजविषाण बद्धिक (बकरे की सींग वाला), वृश्चिकालिक (जूते पर बिच्छू की पूंछ जैसा अलंकार होता था), मोरपिछपरिसिब्बित (तले या बंदों में मोर पंख सिले होते थे), तूलपुण्णिक (रूई से भरा जूता) और तित्तिर पट्टिक (तीतर के पंखों जैसी बनावट)। बौद्ध भिक्षु उपदेश सुनते समय जूते और चप्पल नहीं पहन सकते थे। उपरोक्त जूतों के अलग बहुत से वन्यपशुओं के चमड़ों से भी जूते बनते थे। जूते पहनने का इस युग में इतना रवाज था कि चर्मकार के व्यवसाय का जातकों में कई बार उल्लेख आया है। जूतों के सिवाय गृहस्थ तृण, मूंज, तालपत्र, बांस और लकड़ी की बनी चप्पलें और पादुकाएं भी होती थीं। कुछ शौकीन लोग सोने चांदी और रत्नों से जड़ित पादुकाएं भी पहनते थे।

इस युग के साहित्य में कभी-कभी विशेष तरह की वेश-भूषाओं के उल्लेख आ जाते हैं। प्रतियोगिता के समय एक धनुर्धारी एक सकच्छ लाल धोती, लाल कमरबंद, सुनहला कंचुक और उष्णीष पहने बतलाया गया है। राजे कभी-कभी दुकूल चुंबट पहनते थे, लेकिन यह पता नहीं लगता कि चुंबट कैसा वस्त्र था।

इस युग में सिलाई की कला बहुत उन्नत हो चुकी थी और सिलाई संबंधी बहुत से शब्द बौद्ध साहित्य में मिलते हैं। तेज सूइयां सूची नालिका में रक्खी जाती थीं और उनकी धार बचाने के लिए नालिकाओं में जौ का आंटा, बालू, मोम इत्यादि भर दिये जाते थे। कुछ लोहारों के गांव अच्छी से अच्छी सूई बनाते थे और इस व्यवसाय में उनकी इतनी ख्याति थी कि लोग उन्हीं से सूइयां लेते थे। कपड़े काटने के लिए तरह तरह की मूठों वाली कैंचियां (सत्थक) भी होती थीं। सिलाई के समय सूई की नोक से अंगुलियां बचाने के लिए अंगुश्ताने (प्रतिग्रह) भी पहने जाते थे। एक तख्ते को, जिस पर कपड़े बांध कर सिये जाते थे, कठिन कहते थे। कठिन के और भागों के भी नाम दिये हुए हैं। कपड़े ब्योंतने के लिए उनपर ताड़पत्र के अंक बना दिये जाते थे तथा सिलाई और कटाई के पहले लंगर (मोघ सुत्तक) डाल दिये जाते थे। दरजी की दूकान में आलमारियां (आवेसन वित्थक), और कठिन अर्थात् सीने के फ्रेम होते थे। इसमें खूंटियां और टाड़ें भी लगी होती थीं।

काटने, सीने और रफू करने के भी बहुत से शब्द आये हैं, पर इनका ठीक-ठीक अर्थ समझना आसान नहीं है। कटाई के लिए कपड़े पर नख से बने निशान को उल्लिखित, लंगर से जुटे कपड़े के टुकड़ों को बंधन, लंबान में मोड़ देकर लंगर की सिलाई को ओवट्टियकरण, बड़े टुकड़ों से छोटे कपड़ों को जोड़ने को कंडुसकरण, प्योंदा लगने अथवा फटन सीने के लिए वढ्किरण, बटाईदार सिलाई को अनुवातकरण, बगल और पीछे की सिलाई को अनुवातकरण, कुछ जगहों की मोहरी सिलाई की ओवट्ठेयकरण, तिरछेबल की सिलाई को कुसि, आधी दूर तिरछे बल की सिलाई को अड्ढकुसि, पांच खंड से एक खंड की गोल सिलाई को मंडल, भीतरी मोड़ को विवट्ट, घुटने पर की सिलाई को जांघेयक, गले की सिलाई को गिवेय्यक और केहुनी पर लगे कपड़ों की सिलाई को बहन्त कहते थे। सूत से ऊंचे रफू को सुत्तलूख, एक तरफे रफू को विकण्ण, रफू से ऊंचा नीचा हटाने की क्रिया को विकण्णं उद्धरितुं, छीर निकालने को ओकिरति

और किनारों पर छोर बांधने को अनुगशतं परिभण्डं कहते थे। भीतरी गोंट को पत्ता, किनारीदार झालर को अट्ठपाद और कंधों पर लगी गोंट को अंसबद्ध कहते थे ।

मौर्ययुग में भारतीय संस्कृति ने खूब उन्नति की। इस युग की वेश-भूषा के इतिहास के लिए हमें साहित्य का ही सहारा लेना पड़ता है, क्योंकि इस युग की मिली मनुष्य मूर्तियां संख्या में बहुत ही कम हैं। इस युग की वेश-भूषा और कपड़ों के इतिहास के लिए महाभारत सभापर्व और कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र में काफी सामग्री है । इन ग्रंथों से यह भी पता चलता है कि भारत और मध्य एशिया से काफी व्यापारिक संबंध था और अफगानिस्तान, बलख और ताजिकिस्तान से यहां रेशमी और ऊनी कपड़े, खालें तथा समूर आते थे ।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में चमड़ों और समूरों की विशद व्याख्या है। कान्तानावक एक नीले रंग का चमड़ा होता था और प्रैयक सफेद और नीले रंग का बुंदकी और धारीदार चमड़ा। द्वादश-ग्राम से बिसी, जो बालदार और चित्तीदार होता था तथा महाबिसी जो खुरखुरा और सफेद होता था, आते थे । हिमालय प्रदेश के आरोह नामक स्थान से गुलदार श्यामिका, भूरे और फाख्तई रंग की कालिका, काले भूरे और लाल रंग के कदली चर्म, गोल चित्तीदार चन्द्रोत्तरा और शाकुला नाम के चमड़े और समूर आते थे। बलख से काले समूर, चीन देश के समूर और गेहुएं रंग के सामूली आते थे । ऊद बिलाव के चमड़ों में सातीना काले रंग का होता था, नलतूला हरे रंगका। वृत्रपुच्छा का रंग भूरा होता था और इसमें ऊद बिलाव की पूंछ भी होती थी । चिकने, मुलायम और गज्झिन रोम वाले समूर अच्छे माने जाते थे । गोह, चीते, सूंस, सिंह, व्याघ्र, हाथी, भैंसे, सुरागाय और गयाल के चमड़े भी काम में आते थे ।

भेंड़ के ऊन से बने आविक नाम के शाल, सफेद, शुद्ध रक्त और पक्ष रक्त रंगों के होते थे । सुईकारी और बुनाई द्वारा शाल में अलंकार योजना को खचित कहते थे, करघे पर ही जिस शाल में अलंकार बुने गये हों उसे वानचित्र और अनेक टुकड़ों को जोड़ कर बनाये गये शाल को खंड संघात्य कहते थे । किनारे पर जालीदार शाल को तंतुविच्छिन्न कहते थे । आज दिन भी कश्मीर में उपरोक्त विधियों से ही शाल और जामेवार बुने जाते हैं ।

कौटिल्य ने दस तरह के ऊनी कपड़ों का वर्णन* दिया है जिनमें अधिकतर बिछाने के काम में आते थे। कंबल सब तरह के ऊनी कपड़ों के लिए एक साधारण शब्द है। ग्वालों के कंबल को कैचलक कहते थे, गजास्तरण को कुथमितिका, वृषभास्तरण को सौमितिका, और अश्वास्तरण को तुरगास्तरण । रंगीन कंबल को वर्णक, पलंगपोश को तलिच्छक, खूब मोटे कंबल को वारबाण, हाथी के झूल को परिस्तोम और हाथी के जांघो की रक्षा के लिए मोटे कंबल को समंतभद्रक कहते थे ।

नैपाल देश से दो तरह के कंबल आते थे यथा भिंगिसी जो आठ टुकड़ों को जोड़ कर बनता था और बरसाती का काम देता था और अपसारक जो आधुनिक पट्टू की तरह कोई कपड़ा होता था ।

जंगली जानवरों के बालों से भी कपड़े बनते थे । ऐसे ही कपड़े से संपुटिका अथवा पाजामा बनता था। चतुरश्रिका के कोनों पर अलंकार होते थे, लंबरा एक तरह की चादर होती थी । मोटे सूत से बनी चादर को कटवानक कहते थे और किनारेदार चादर को प्रावरक।

दुकूल वस्त्र दुकूल वृक्ष की छाल के रेशों से बने वस्त्र को कहते थे । बंगाल का बना दुकूल सफेद और मुलायम होता था, पौंड्र का दुकूल नीला और चिकना तथा सुवर्णकुड्या का दुकूल ललाई लिये होता था। मणिस्निग्धोदकवान दुकूल घुटे सूत से बनते थे, चतुरस्रकवान में बुनाई बराबर होती थी और

व्यामिश्रवान में रेशम मिला होता था या तरह तरह के रंगीन सूतों से यह बुना जाता था। ताने-बाने में एक, दो, तीन या चार तार लगते थे। कभी-कभी ताने में एक तार होता था और बाने में दो।

काशी और पुंड्र क्षौम के लिए प्रसिद्ध थे। पत्रोर्ण से बने कपड़ों के नाम उन देशों पर पड़ते थे जहां वे बनते थे। इस नियम के अनुसार उसके नाम मागधिका, पौंड्र और सौवर्णकुड्यका पड़े। पत्रोर्ण नाग वृक्ष, लिकुच, बकुल और वट वृक्षों की छालों से निकले रेशों से बनता था, और उसका रंग गेहुआं, सफेद और मक्खन का सा होता था।

रेशमी वस्त्रों में कौशेय और चीन पट्ट मुख्य थे। कौशेय कोशकार देश का बना रेशमी कपड़ा था और चीन पट्ट चीन देश का बना रेशमी कपड़ा।

सूती कपड़ों के नाम भी उन देशों पर पड़ते थे जहां वे बनते थे। माधुर आधुनिक मदुरा में, अपरान्तक अपरांत में, कालिंगक कलिंग देश में और काशिक काशी जनपद में बने कपड़ों के नाम थे। अर्थ शास्त्र से यह सिद्ध हो जाता है कि प्राचीन काशी कर्पास और क्षौम वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध थी, रेशमी वस्त्रों के लिए नहीं। पूर्वी बंगाल में बने सूती कपड़े को वांगक कहते थे, वत्स देश (आधुनिक प्रयाग के पास) के सूती कपड़े को वात्सक और महिष देश के कपड़े को माहिषक।

कोषाध्यक्ष को देश, काल और परिभोग के अनुसार कपड़ों की जानकारी आवश्यक थी। कीड़े मकोड़ों और चूहों से रक्षा करने का भी उसे प्रबन्ध करना पड़ता था।

राज के निजी कपड़े बुनने के कारखाने सूत्राध्यक्ष के जिम्मे होते थे। इन कारखानों में विधवाएं, वृद्धा दासियां इत्यादि काम पर रक्खी जाती थीं और उन्हें ऊन, रूई, क्षौम इत्यादि से सूत तैयार करना पड़ता था। कत्तिनों को उनके काम के अनुसार वेतन मिलता था। छुट्टियों में काम करने का भी पारिश्रमिक मिलता था, पर काम खराब करने वालों का वेतन काट लिया जाता था। अच्छे कारीगरों को दिमाग तर रखने के लिए तेल इत्यादि इनाम में दिये जाते थे। कारखानों के सिवाय ठीके पर भी कपड़े बुनवाये जाते थे। घर से बाहर न निकल सकने वाली स्त्रियों को घर पर ही काम देने का प्रबंध था। कारीगरों को बढ़ावा देने के लिए रेशमी, सूती और ऊनी वस्त्र इनाम में दिये जाते थे। वस्त्रों पर चुंगी भी लगती थी। कपड़े, किंशुक, कुसुंभ और कुंकुम के रंगों में रंगे जाते थे।

महाभारत में राजसूय यज्ञ के अवसर पर भारत के सीमा प्रान्त और बाहर से अनेक तरह के वस्त्रों के युधिष्ठिर के पास उपहार में आने का उल्लेख है। कंबोज (आधुनिक ताजिकिस्तान) से ऊनी कपड़े, समूर और सुनहले कपड़े, ऊनी चादरें, बेशकीमती दुशाले और कदली मृग की खालें आयीं। बलूचिस्तान या पारेसिंधु प्रदेश से बकरे और भेड़ों की खालें आयीं। चीन, हूण, शक, वाह्लीक और ओड्र देशों से ठीक नाप के खुशरंगीन और मुलायम वस्त्र, भेड़ के ऊनी कपड़े, पश्मीने, रेशमी कपड़े, नमदे तथा समूर आये। अंग कलिंग, ताम्रलिप्ति और पुंड्र से दुकूल और पत्रोर्ण के बने कपड़े और चादरें आयीं। ऐसा लगता है कि उपरोक्त प्रदेशों से भारत का इस काल में घनिष्ठ व्यापारिक संबंध था।

इस काल की भारतीय वेश-भूषा का उल्लेख यूनानी इतिहासकारों ने भी किया है। उनके अनुसार भारत के लोग आधे पैर तक की धोती और चादर पहनते थे। ये वस्त्र कभी-कभी सुवर्ण और रत्नखचित भी होते थे।

मौर्ययुग के अंतिम चरण और शुंगयुग की वेश-भूषा का पता हमें यक्ष याक्षिणियों की मूर्तियों और और भरहुत के अर्ध चित्रों से मिलती है। परखम का यक्ष आधे पैर की धोती, छाती पर संकरमुद्री

पड़ा दुपट्टा पहने है। धोती पैर तक भी पहुंचती थी और कमरबंद और वैकक्ष्य पहनने की प्रथा थी। एक जगह अटपटी पगड़ी भी आयी है। स्त्रियां एंड़ी तक पहुंचती साड़ी, कई लड़ों की करधनी, पटका और दुपट्टे पहनतीं थीं।

भरहुत के अर्ध चित्रों में पुरुष सकच्छ धोती पहनते हैं जो कभी आधे पैरों तक और कभी पूरे पैरों तक पहुंचती थी। धोती के साथ-साथ, कमरबन्द, पटके, दुपट्टे, और पगड़ियां पहनने की भी चाल थी। इस युग में दक्षिण भारत के पहरावे में कुछ अंतर था। शुंगयुग में पगड़ियां अनेक तरह से बांधी जाती थीं। साधारण रीति से तो सिर पर बाल के जूट के चारों ओर पगड़ी के फेटें बांध लिये जाते थे। लट्टूदार साफा, कामदार साफा, झालरदार साफा, पीछे उभरा साफा, अटपटी पगड़ी, हलका साफा, अटपटी लट्टूदार पाग तथा छोटे झालरदार साफा पहने जाते थे।

भरहुत के अर्ध चित्रों में सिले वस्त्र केवल दो जगह आये हैं। एक जगह एक राजा का अनुचर कोट-नुमा वस्त्र पहने दिखलाया गया है और दूसरी जगह एक उत्तरापथ का आदमी बंददार कोट पहने है। इसके बाल एक फीते से बंधे हैं, कमर में धोती और पटका है और छाती पर परतला। कभी-कभी शुंग-कालीन मट्टी की मूर्तियां भी कोट पहने दिखायी गयी हैं। सांची के नं० के स्तूप के अर्ध चित्रों में जो शुंगकालीन हैं आधे और पूरे बांह के कंचुक आये हैं।

भरहुत के अर्धचित्रों में स्त्रियां घुटने तक की साड़ियां पहने दिखलायी गयी हैं। साड़ियों पर कमरबंद, करधनें और पटके होते थे। स्त्रियां कभी-कभी चादर और पगड़ी भी पहनतीं थीं। यक्षिणी चंदा की वेश-भूषा से एक शुंगकालीन संभ्रांत नारी के पहरावे का पता चलता है। उसके कमर में घुटने तक की धोती, सतलड़ी करधनी और कामदार कमरबंद है। सिर एक कामदार ओढ़नी से ढंका है। एक दूसरी यक्षी पतली साड़ी, सकरमुद्धीवार कामदार कमरबंद, करधनी और योगपट्ट पहने है। यक्षी, चूलकोका का पटका मार्के का है

साधु कोपीन पहनते थे और उनकी स्त्रियां साड़ी और चादर। स्त्रियां रूमाल से सिर ढांक लेतीं थीं अथवा कभी-कभी पगड़ी भी पहनतीं थीं। दक्षिण भारत की स्त्रियों की पोशाक भी प्रायः ऐसी ही होती थी, घुटनों तक की साड़ी बक्सुएदार कमरबंद और चारखाने की ओढ़नी पहनने की प्रथा थी।

ई० पू० पहली शताब्दी की वेश-भूषा ई० पू० दूसरी शताब्दी की वेश-भूषा से मिलती ; है पर उसमें थोड़ा अंतर भी आ जाता है। धोती सादी होती है और भारी कमरबंदों और पटकों का अभाव सा है; लेकिन लोग अपने कपड़े सजा कर पहनते थे। अनुचर वर्ग और सिपाही सिले कपड़े भी पहनते थे। स्त्रियां अपनी धोती और चादरें खूब सजा कर पहनती थीं। इस युग की दक्षिणी वेश-भूषा कुछ टीमटाम वाली होती थी। इस युग की वेश-भूषा के इतिहास की सामग्री हमें सांची और भाजा के अर्ध चित्रों से, अजंटा के ९-१० नं० की लेणों के भित्ति चित्रों से तथा मथुरा और कोशांबी से मिली मट्टी की मूर्त्तियों से मिलती है।

सांची के अर्ध चित्रों में धोती सकच्छ और कभी-कभी विकच्छ होती है। दुपट्टे कई तरह से ओढ़े जाते थे। लोग प्रायः साफे बांधते थे। साफे के फेंटे जूड़े के चारों ओर होते थे। साफे अलग-अलग ढंग के होते थे यथा नीची फेंट वाला साफा कुछ चुनन लिये, दाहिनी फेंट वाला साफा, मोती की लड़ी से सजा साफा, लंबोतरे लट्टू वाला साफा, गद्दीदार साफा, तिरछा गोलबंदार साफा, ढोल के आकार का लट्टू वाला साफा, शंखाकार साफा, चक्करदार पगड़ी, फिरहरीदार पगड़ी, लंबोतरी लट्टू वाली पगड़ी, पंखाकार पगड़ी, बेलन के आकार की पगड़ी, तीन लट्टुओं वाली पगड़ी।

टोपियां बहुधा विदेशी पहनते थे। निम्नलिखित प्रकार की टोपियां सांची के अर्ध चित्रों में देख पड़ती हैं---कुलाहनुमा टोपी, चौकस गोल किनारे वाली टोपी, बीच से कटी झालरदार टोपी, नीचे बार की तुर्कीटोपी नुमा टोपी, पंजकों से सजा कुलाह, चोटीदार टोपी। सिर कभी-कभी फीते से बांधे जाते थे।

स्त्रियां सकच्छ साड़ी और कमरबंद पहनतीं थीं। एक दूसरी तरह की साड़ी में एक भाग कमर में लपेट लिया जाता था। कभी-कभी चूनन बगल में खोंस ली जाती थी। ओढ़नी ओढ़ने के निम्न लिखित प्रकार थे---घोघी के आकार की ओढ़नी, दोहरे किनारे की ओढ़नी, दोहरी ओढ़नी, पेचीदार ओढ़नी, पंखाकार ओढ़नी, बढ़ी ढकती हुई किनारेदार ओढ़नी। स्त्रियां कभी-कभी पगड़ी और टोपी पहनती थीं। एक जगह एक स्त्री खौद पहने दिखायी गयी है।

मथुरा और कोसम से मिली मट्टी की स्त्री मूर्तियां कंचुक और गहने पहनती हैं। इंडियन इंस्टिटयूट म्यूजियम, आक्सफर्ड, में एक ऐसी ही मूर्ति गहनों के सिवाय बिना बाह का कंचुक, जो केवल बायां कंधा ढाकता है, और कमरपेटी पहनती है। दुपट्टे एक या उससे अधिक है।

सांची के अर्ध चित्रों में सिपाही इत्यादि कंचुक पहनते है। धनुर्धारी पूरे बांह का कंचुक तहमतनुमा धोती, कमरबंद और साफा पहनते थे। पैदल सिपाही धनुर्धारियों की तरह वस्त्र अथवा कमरबंद से बंधी जांघिया पहनते थे। विदेशी शक पूरी बांह का कंचुक, तथा कमरबंद पहनते थे और अपना सिर रूमाल से बांधते थे। एक जगह एक विदेशी अधबहियां कंचुक, जांघिया और बूट पहने दिखाया गया है। विदेशी यूनानी चप्पल भी पहनते थे।

ब्राह्मणों का कौपीन घाघरेनुमा होता था और वे वैकक्ष्य पहनते थे। ऋषि पत्नियों का भी वैसा ही पहरावा था।

उत्तर और दक्षिण भारत की वेश-भूषा में कुछ स्थानिक विशेषताएं थीं। अमरावती के इस युग के अर्ध चित्रों में सद्गृहस्थ लंबोतरा साफा, घुटनों तक की धोती और झब्बेदार कमरबंद बांधते थे। महाराष्ट्र में धोती छोटी होती थी और कमरबंद उमेठे दुपट्टे के होते थे। भाजा के अर्ध चित्रों में एक अंगरक्षक अटपटी पगड़ी और लहरियादार कंचुक पहने है। एक द्वारपाल लंबी धोती कमरबंद, पटका तथा गुंबददार पगड़ी पहनता है और एक सिपाही हलकी पगड़ी, वैकक्ष्य, सरकती धोती और कमरबंद पहनता है। एक जगह घुमावदार पगड़ी आयी है।

स्त्रियों के शिरोवस्त्र तरह-तरह के होते थे यथा सिर पेंच सहित ओढ़नी, कई तहों की भारी ओढ़नी, दांतेदार पगड़ी, गोल मूंगरीनुमा शिरोवस्त्र, फीतेदार जूड़ा और कान तक पहुंचती पगड़ी।

अंजटा के ९-१० नं० की लेणों के भित्ति चित्रों में हलकी पगड़ी, अधबहियां कंचुक और अंगा आते हैं।

ईस्वी सन् के प्रथम तीन सौ वर्षों में भारतीय जीवन और संस्कृति में काफी उन्नति हुई। इस युग में बृहत्तर भारत और मध्य एशिया में भारतीय उपनिवेश बने और भारत और रोम में रत्नों, गंध द्रव्यों, स्फटिक के बरतनों और कपड़ों का कीमती व्यापार बढ़ा।

इस युग में भारतीय वेश-भूषा के इतिहास की प्रचुर सामग्री हमें गंधार की मूर्तियों और अर्ध चित्रों

से, मथुरा की मूर्तियों से और अमरावती और गोल्ली के अर्ध चित्रों से मिलती है। इस काल में उत्तर-पश्चिमी भारत में धोती, चादर, पगड़ी, साड़ी और ओढ़नी के सिवाय कंचुक, शलवार, टोपियां, जिरह-बख्तर और पूरे बूट प्रचलित थे, जैसे ईरानी और मध्य एशिया के पहरावे भी मिलते हैं। यहां हमें यूनानी वेश-भूषा के भी दर्शन मिलते हैं। शक राजाओं की पोशाकों का पता सिक्कों से चलता है। इस युग में दक्षिण भारत में स्त्रियों और पुरुषों की वेश-भूषा काफी सादी होती थी। दोनों ही मलमली कमरबन्द और धोतियां पहनते थे। पुरुष पगड़ी भी पहनते थे। सिपाही और द्वारपाल इत्यादि कंचुक पहनते थे और कभी-कभी उनके सिर पर कुलाहनुमा टोपी भी होती थी।

कुषाणयुग के साहित्य से कपड़ों और वेश-भूषा पर विशेष प्रकाश नहीं पड़ता। वस्त्रों के वर्णन छिटफुट से हैं और उनके माने समझने में भी कठिनाई पड़ती है। इस युग के कपड़ों का अच्छा वर्णन पेरिप्लस आफ दि एरीथ्रियन सी नामक ग्रंथ में आया है।

इस युग में कपास खूब होती थी। कपास बाजार से खरीद कर धुन ली जाती थी और उससे एक सा महीन सूत कात लिया जाता था। बुनकर चीर छोड़ कर कपड़े बिनते थे और उनकी स्त्रियां ताने पर माड़ी देती थीं।

कलिंग देश के नाग बुनकर बहुत अच्छी मलमल बिनते थे, जिसकी खपत यहां और विदेश दोनों में ही होती थी। रोम साम्राज्य में भारतीय मलमल की गहरी खपत थी। पेरिप्लस के अनुसार बढ़िया मलमल को मोनाचे और घटिया रूई के कपड़े को सगमतोगेने कहते थे। गुजरात के घटिया तरह के कपड़े को मोलोचीन कहते थे। यहां से कपड़े पूर्वी अफ्रिका के बंदरगाहों को, तथा अरब, मिस्र और सोकोतरा को भेजे जाते थे। त्रिचनापल्ली और तंजोर की मलमल को अर्गरतिक कहते थे। मसलीपटम में भी मलमल बनती थी। पूर्वी भारत की मलमल को गेंजटिक कहते थे और यह शायद काशी और ढाका के पास बनती थी।

इस युग में रेशमी कपड़े भी खूब चलते थे और इनके लिए पट्टांशुक, चीन, कौशेय और धौतपट्ट शब्दों का व्यवहार हुआ है। विचित्र पटोलक में तरह-तरह की नक्काशियां बनी होती थीं और इसकी तुलना गुजरात की आधुनिक पटोला साड़ी से की जा सकती है।

सिंध नदी के बाब्रिकन बंदरगाह से रेशम और रेशमी कपड़ों का निर्यात होता था। इस युग में चीनी रेशमी कपड़े ब्रह्मपुत्र की घाटी, आसाम और पूर्वी बंगाल हो कर भी आते थे। मलाबार के बंदरगाहों में भी पूर्वी बंगाल से रेशमी कपड़े आते थे। कावेरीपट्टन में रेशम के व्यापारियों की दूकानें थीं। रोमन व्यापारी रेशमी कपड़े गंगा के मुहाने, खंभात की खाड़ी और त्रावनकूर के बंदरगाहों से खरीदते थे, जहां चीनी व्यापारी आते थे।

ऊनी कपड़ों को साधारणतः कंबल कहते थे। द्रप्य भी किसी तरह का ऊनी कपड़ा होता था। ऊन दुकूल मिलाकार भी अच्छे वस्त्र बनते थे। अच्छे पश्मीने भी बनते थे। इसी पश्मीने के बने एक लाल रंग के रूमाल को ईरान के एक बादशाह ने रोमन बादशाह आरेलियन को उपहार में भेजा। पश्म को शायद रोमन कानून के संग्रह में मारकोकोरम लाना कहा है। हुरमुज़ द्वितीय को काबुल की राज कन्या के साथ विवाह करने पर दहेज में पश्मीने के शाल मिले जिनकी सुन्दरता देख कर लोग चकित हो गये।

ऊनी और सूती कपड़ों के सिवाय, क्षौम, सन और सफेद दुकूल के कपड़े भी चलते थे। खालिस सुनहले कलाबत्तू से बने वस्त्र को हिरण्यी अथवा हिरिवस्त्र कहते थे। बनारस के बने कपड़ों के लिए काशिक वस्त्र, काशी, काशिकांशु इत्यादि शब्दों का प्रयोग हुआ है। शायद काशिक वस्त्र का तात्पर्य रेशमी वस्त्रों से न हो

कर सूती वस्त्रों से है । काशी की मलमल बड़ी महीन होती थी और उससे पहनने के कीमती कपड़े बनते थे । फलक नाम का वस्त्र शायद फल के रेशों से बनता था। अपरांत में बने वस्त्र को अपरांतक कहते थे । फुट्टक वस्त्र से शायद छींट का मतलब है । पुष्पपट्ट से किंखाब का तात्पर्य है ।

भिक्षुक तथा श्रमण-ब्राह्मण वृक्षों की छालों के रेशों, घास इत्यादि के बने कपड़े और ऊंट, बकरों इत्यादि के बालों के बने कंबल और जानवरों की खालें पहनते थे । इस युग में भारत और रोम के बीच चमड़े और समूरों का अच्छा व्यापार था। समूर चीन, तिब्बत इत्यादि देशों से भारत में आते थे । कुछ मामूली दरजे के चमड़े अथवा कंबल भी खंभात की खाड़ी हो कर पूर्वी अफ्रिका जाते थे ।

इस युग में कपड़े का इतना गहरा व्यापार था कि बहुत से व्यापारी केवल एक ही किस्म के कपड़े रखते थे । सोपारा में काशी के वस्त्रों की दूकान और छींट की दुकान का उल्लेख है । मदुरा में बजाजे का जिक्र है । कावेरीपट्टन में कपड़े के दल्लालों का भी उल्लेख है ।

इस युग के साहित्य में वेश-भूषा का कम उल्लेख है । साधारणतः लोग धोती दुपट्टा पहनते थे । काशी के धोती दुपट्टे प्रसिद्ध थे और कभी-कभी इनके बड़े ऊंचे दाम होते थे । राजे चौड़े किनारे वाले नये वस्त्र पहनते थे । मामूली किसान सन की धोती और लंगोटी पहनते थे । पगड़ी पहनने की भी प्रथा थी । राजे कभी-कभी कंचुक भी पहनते थे । अंग रक्षक और सिपाही तो अक्सर कंचुक और जिरह-बख्तर पहरते थे। दक्षिणी राजे जड़ाऊ टोपी और धोती पहनते थे । उच्च वर्ग के तामिल धोती पहनते थे और एक टुकड़े कपड़े से अपने सिर ढंक लेते थे । अंग रक्षक कोट पहनते थे । यवन अंग रक्षक युद्ध क्षेत्र में कंचुक पहन कर पहरा देते थे ।

तामिल स्त्रियां पैर तक पहुंचती साड़ियां पहनतीं थीं। वारवनिताओं की साड़ी आधी जांघ तक पहुंचती थी । जंगली स्त्रियां पत्तों की घघरियां पहनती थीं।

गंधार की मूर्तियों और अर्ध चित्रों में आयी वेश-भूषा में हम भारतीय ईरानी, और यूनानी वेश-भूषाओं का सम्मिश्रण पाते हैं। राजे और सामंत पैर तक पहुंचती सिलवटदार धोती तथा चादर पहनते थे। चादर अनेक तरह से पहनी जाती थी।

डोरी से बने कमरबंद झब्बेदार होते थे । चट्टी या खड़ाऊं पहनने की भी प्रथा थी । बाल अक्सर मोती की लड़ों और रत्नों से सजे होते थे, पर पगड़ी भी पहिनी जाती थी ।

ये पगड़ियां बंधी बंधाई पहिनी जाती थीं। शीर्षपट्ट बहुधा अलंकृत होते थे। एक शीर्षपट्ट पर मिथुन का आकार है, दूसरे पर सुवर्ण और नाग, तीसरे पर बुद्ध मूर्ति और चौथे पर मोर। पगड़ी का ऊपरी सिरा पंखे जैसा होता था, और फेंटें खूब सजी हुई। एक पगड़ी में गरुड़ मूर्तियों से सज्जित एक पट्टी है जिसके बंद हवा में पीछे फड़फड़ाते दिखाये गये हैं ।

पगड़ियों के निम्न लिखित रूप हैं—चक्करदार पगड़ी, हलकी पगड़ी, त्रिकोण अलंकार से सज्जित हलकी पगड़ी, चक्राकार हलकी पगड़ी, शीर्षपट्ट युक्त भारी पगड़ी।

श्रेष्ठि गण धोती उत्तरीय और चादर पहनते थे। सरदी में कंचुक पहनने की प्रथा थी। कभी-कभी इसमें तुक मेक के लिए पट्टी होती थी। एक दाता कंचुक, वैकक्ष्य और फुंदनेदार टोपी पहने है। समूरी अस्तर वाला चुगा भी कभी-कभी पहना जाता था।

गंधार की मूर्तियों में सिपाही दो तरह के कपड़े पहनते थे। एक तरह के सिपाही धोती, पेटी और वैकक्ष्य पहनते थे । उनके बाल खुले अथवा पगड़ी से ढंके होते थे। दूसरी तरह के सिपाही खोद बख्तर पगड़ियां कमरबन्द और परतले पहनते थे । कभी-कभी सिपाही जांघिया भी पहनते थे ।

शिकारी केवल धोती पहने दिखाये गये हैं। खेतिहर एक छोटी धोती और मजदूर लंगोट पहनते थे। पहलवान लंगोट अथवा जांघिया पहनते थे । ब्राह्मण धोती और चादर पहनते थे ।

विदेशियों की टोपियां निम्न लिखित प्रकार की होती थीं—गोटदार कुलाहनुमा टोपी, अर्धचंद्र से अलंकृत फूंदनेदार टोपी, सकर मुट्ठी के रूप की चोटी सहित टोपी, कटे किनारे वाली टोपी या खोद ।

स्त्रियों की वेश-भूषा में तीन कपड़े, यथा कंचुक, साड़ी और दुपट्टा चादर, होते थे। कभी-कभी चादर का कोना कमर में खोंस लिया जाता था । स्त्रियों के कंचुक प्रायः घुटने तक पहुंचते थे। कभी-कभी वे आगे खुले भी रहते थे और तब यह कोटनुमा दिखते थे । एक दूसरी तरह का कोट नाभि को ढंकता दिखलाया गया है। कंचुक साड़ी के नीचे अथवा ऊपर पहने जाते थे। कसे कंचुक पर प्रायः सिलवटें पड़तीं थीं। स्त्रियां कभी कभी स्तन पट्ट भी पहनतीं थीं।

साड़ियां दो प्रकार से पहनी जातीं थीं। एक में एक हिस्सा कमर में लपेट लिया जाता था और दूसरा पीछे खोंस लिया जाता था, दूसरी में साड़ी का एक सिरा कंधे पर डाल लिया जाता था। कभी-कभी साड़ी काफी बड़ी होती थी और उसका छुट्टा भाग आगे अथवा पीछे लटका रहता था। कभी-कभी साड़ी का छुट्टा सिरा बायें कंधे पर योजक से बांध दिया जाता था, कभी-कभी साड़ी का छुट्टा सिरा दाहिने स्तन को अनावृत रखते हुए कंधे पर डाल दिया जाता था, ढीली तौर से साड़ी पहनने में बांयीं छाती खुली रह जाती थी, दुपट्टा या चादर का एक छोर कमरबंद में खोंस लिया जाता था। स्त्रियां अक्सर अपने जूड़े शेखरकों से सजाती थीं, पर कभी-कभी मुकुट भी पहनतीं थीं।

यवनियां भारतीय और यूनानी दोनों तरह की पोशाकें पहनतीं थीं। यूनानी पोशाक में कंचुक, घाघरा और कमरबंद होते हैं। सिर पर टोपियां होती हैं। भारतीय अंगरक्षिकाएं साड़ी, कमरबंद और चादर पहनती है।

मथुरा की मूर्तियों से हमें विदेशियों तथा मध्य देश के निवासियों की वेश-भूषाओं का पता चलता है। भारतीय प्रायः सकच्छ लंबी धोती, दोनों कंधों पर पड़ा दुपट्टा और पगड़ियां और पटके पहनते थे। कभी-कभी कमरबंद भी वेश-भूषा का अंग होता था। कभी-कभी कमरबंद रस्सी की तरह बटा होता था। दुपट्टों और कमरबंदों के पहरने के और भी बहुत से ढंग बतलाये गये हैं। घुड़सवार कई फेंटों से बंधी जांघिया पहनते थे।

पगड़ी प्रायः सादे कपड़े की बनी होती थी और जूड़े के चारों ओर लपेट ली जाती थी। रईस शीर्षपट्ट युक्त कामदार पगड़ियां पहनते थे। कभी-कभी शीर्षपट्ट चपकनदार होता था और कभी-कभी धातु की एक पट्टी से युक्त। कभी-कभी शीर्षपट्ट में कलंगी लगती थी।

विदेशी राजे और सिपाही कंचुक, शलवार, टोपी और जूते पहनते थे । कनिष्क की बेसिर वाली मूर्ति घुटने के नीचे तक पहुंचता कंचुक, चुगा और तस्मेदार बूट पहने है। एक शक राजा की मूर्ति अलंकृत वस्त्र का बना गोटदार कंचुक और पूरे बूट पहने है । एक तीसरी मूर्ति गोटदार कंचुक और कमरपेटी पहने दिखायी गयी है। सूर्य की एक मूर्ति गोटदार चुस्त कंचुक, कमरबंद और कारचोबी टोपी पहने है। एक ईरानी की मूर्ति खूब कामदार कंचुक, पीठ पर लहराता रूमाल और चंद्र सूर्य के आकारों से अलंकृत कुलाहनुमा टोपी पहने है ।

ईरानी और शक टोपियां पहनते थे । टोपियां निम्न लिखित तरहों की होती थीं—दो टुकड़े नमदों से बनी कुलाहनुमा टोपी, बल खायी हुई कुलाहनुमा टोपी, अर्धचंद्र युक्त टोपी, बिल्लोबाल पगड़ी नुमा टोपी, चपटी छत वाली सजी हुई टोपी ।

स्त्रियां करधनी से युक्त साड़ी और तहदार दुपट्टे पहनतीं थीं, कमरबंद में दोनों ओर फंदे पड़ते थे। कभी-कभी कमरबंद का झब्बेदार सिरा आगे लटकता हुआ छोड़ दिया जाता था, कभी-कभी दोहरे कमरबंद का निचला भाग साड़ी में खोंस लिया जाता था, कहीं-कहीं कमरबंद का एक सिरा हाथ में ले लिया जाता था। पटके भी पहने जाते थे।

कभी-कभी लंहगा भी पहना जाता था, पर कुषाणयुग की वेश-भूषा म यह अपवाद स्वरूप है। मथुरा की मूर्तियों में एक ग्वालिन की मूर्ति लंहगा पहने है। लंहगा कमर पर सीधा है और निचले भाग में केवल एक घेर पड़ता है।

विदेशी स्त्रियां कंचुक पहनतीं थीं। कंचुक का निचला भाग चूननदार होता था। कुछ स्त्रियां कंचुक के ऊपर साड़ी भी पहिनतीं थीं। कभी-कभी ईरानी स्त्रियां खूब कामंदार कंचुक पहनतीं थीं।

स्त्रियां प्राय: सिर नहीं ढकतीं थीं, पर कभी-कभी ओढ़नी ओढ़ी जाती थी। कभी-कभी स्त्रियां लीलावश अपने शिरोवस्त्र पगड़ी की तरह बांध लेतीं थीं।

इस युग में दक्षिण भारत के लोग, जैसा कि अमरावती इत्यादि के अर्ध चित्रों से पता चलता है। सकच्छ लंबी धोती पहनते थे। धोती कभी-कभी घुटनों तक और लांग सहित होती थी। कमरबंद बांधने की अनेक कलात्मक रीतियां थीं। नाचते समय कमरबंद की मोर मुरक से नर्तक के सादे पहरावे में एक गति आ जाती थी।

वकक्ष्य पहनने की अनेक रीतियां थीं। कभी-कभी छाती पर दुपट्टा परतले की तरह पहना जाता था। और कभी-कभी वह कंधों पर डाल लिया जाता था।

शीर्षपट्ट युक्त पगड़ियां दो तीन सादे फेंटोंमें बांध ली जाती थीं। पगड़ियों के निम्न लिखित बहुत से प्रकार मिलते हैं, यथा अटपटी पगड़ी, मोरपंख युक्त चक्करदार पगड़ी, कुंडेदार शीर्षाभूषण युक्त पगड़ी, छल्लेदार पगड़ी, सरपेंच युक्त छोटी गोल पगड़ी, तीन कुब्बेवाली पगड़ी, दोहरी पट्टी वाले आभूषण से सज्जित नीची पगड़ी, शीर्षपट्ट युक्त तीन फेंटे की पगड़ी, चौंरीदार अटपटी पगड़ी, फिरकीनुमा आभूषण युक्त अटपटी पगड़ी, अनेक लट्टुओं वाली पगड़ी, गोल पेंचदार पगड़ी, दिल्लीवाल पगड़ी जैसी पगड़ी और चक्करदार ऊंची पगड़ी, इत्यादि।

दक्षिण भारत में झब्बेदार धातु निर्मित टोपियां भी पहनी जाती थीं। टोपियों के निम्नलिखित प्रकार मिलते है यथा मोरपंख और पत्राकार आभूषण से सजी टोपी, चायदानी के ढक्कन के शकल की टोपी, चपकी टोपी जिसका छज्जा ऊपर मुड़ा है, लहरियेदार छज्जे वाली टोपी, कंटोप और शीर्षपट्ट युक्त टोपी। कोई-कोई अपने सिर और कान रूमाल से ढाकते थे।

साधारणः इस युग में दक्षिणी सिले वस्त्र नहीं पहनते थे; पर सेवक, गायक, वादक, और विदेशी इस नियम के अपवाद थे। कंचुक के साथ कंटोप और धोती पहनी अथवा पगड़ी, दुपट्टा और धोती पहरी जाती थी। शरीर के साथ कंचुक कमरबंद से बांध दिया जाता था। कभी-कभी ढीले बांह का कंचुक टोपी और चूड़ीदार पाजामें के साथ पहना जाता था। पालकी उठाने वाले कहार बांहदार या बिना बांह के कंचुक पहनते थे। एक साईस अंग्रेजी ढेल कोट नुमा कंचुक पहने है। ग्वाले जांघिया पहनते थे।

दक्षिणी स्त्रियां पैर तक पहुंचती करधनी और कमरबंद से युक्त साड़ियां पहनतीं थीं। कभी-कभी साड़ी पर करधनी, कमरबंद और पटका होता था और सिर पर पगड़ीनुमा वस्त्र। कभी-कभी स्त्रियां दुपट्टा या चादर हाथ में ले लेतीं थीं। स्त्रियां कभी-कभी पगड़ी और मुकुट भी पहन लेतीं थीं। पगड़ियां और मुकुट निम्न लिखित प्रकार के होते थे, झब्बेदार शीर्षपट्ट से युक्त चक्करदार पगड़ी, सींगनुमा केशवेश के ऊपर बंधी पगड़ी, मकराकृत मुकुट, पूरे मकर की आकृति वाला मुकुट, कलगी युक्त चक्करदार मुकुट, छोटा मुकुट और लहरियादार मुकुट। ओढ़नी ओढ़े केवल एक स्त्री दिखलायी गयी है।

ब्राह्मण साधु पटकेदार कौपीन और दुपट्टा पहनते थे। बौद्ध भिक्षु कभी-कभी पांसु दुकूल पहनते थे।

सिपाही कंचुक, कमरबंद और धोती पहनते थे।

बच्चे जांघिया और कमरबंद पहनते थे। कभी कभी वे छन्नवीर और पेट पर कस कर बंधा रूमाल पहनते थे।

प्राक् गुप्तयुग में हमें भारतीय वेश-भूषा का कम मसाला मिलता है। मथुरा से मिली इस युग की कुछ मूर्तियां तथा पवांय के अर्ध चित्रों के बल पर हम उत्तर भारत की वेश-भूषा का पता पाते हैं। दक्षिण भारत की वेश-भूषा का गोल्ली के अर्ध चित्रों में अच्छा प्रदर्शन है। खास गुप्त युग की वेश-भूषा के इतिहास की सामग्री हमें सारनाथ, देवगढ़, मंडोर इत्यादि से मिली मूर्तियों और अजंटा के १७ नं० की लेण के भित्ति चित्रों में मिलती है। अजंटा की लेणें गुप्त-साम्राज्य में नहीं थीं, पर गुप्तयुग की कला स्थानिक न हो कर देश के कोने-कोने में फैल चुकी थी और इस दृष्टि से अजंटा की कला को गुप्त कला के अन्तरगत मानना ठीक ही है। गुप्त सिक्कों पर अंकित प्रतिकृतियों से भी तत्कालीन वेश-भूषा पर काफी प्रकाश पड़ता है। इनसे पता लगता है कि गुप्तयुग के आरंभ में राजों की वेश-भूषा शकों जैसी थी, गो कि वे कभी-कभी भारतीय वस्त्र भी पहनते थे, लेकिन इस युग के अंत में उनका पहिरावा पूर्ण भारतीय बन गया। रानियां कंचुक और साड़ियां पहनतीं थीं। सिक्कों पर आये वस्त्रों के सूक्ष्म अध्ययन से यह भी पता लगता है कि गुप्त-युग में भद्दे शक वस्त्रों में आकर्षण लाकर उन्हें भारतीय बाना दे दिया गया।

समुद्रगुप्त (३३५-३८५ ई० पू०), चंद्रगुप्त द्वितीय (३८५-४१३) और कुमारगुप्त (४१४-४५५) में साम्राज्य के बढ़ने के साथ ही कला और साहित्य की अभूतपूर्व उन्नति हुई। गुप्तयुग सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग माना जाता है। महाकवि कालिदास ने इसी युग में अमर काव्यों और नाटकों की रचना की। भौतिक संस्कृति भी किसी से पीछे न रही। अंजटा के भित्ति चित्रों और पुरातत्व के अवशेषों से हम उस युग की संस्कृति का पूरा खाका खींच सकते हैं। कपड़े पहनने का लोगों को इतना शौक था कि प्रसाधन के लिए संस्कृत साहित्य में अनेक शब्द आये हैं।

गुप्तयुग में प्रायः नौकर-चाकर सिले वस्त्र पहने दिखलाये गये हैं। इससे यह न समझ लेना चाहिए कि वे सब विदेशी थे। लगता है कुषाणयुग में राज दरबार की प्रथा के अनुसार दास-दासियां भी सिले कपड़े पहनने लगे और यही प्रथा गुप्तकाल में भी प्रचलित रही। इस युग में विदेशों से भी दास-दासियों के आने का जैन साहित्य में उल्लेख है जिससे पता लगता है कि अफ्रिका, अरब, ईरान, यूनान, मध्य एशिया इत्यादि से दासियां इस देश में आती थीं और वे अपने जातीय पहरावे पहनतीं थीं। लगता है राजमहल के अंदर रहने वाली दासियों के पहरावे का प्रभाव दूसरों पर भी पड़ा होगा। पर गुप्तयुग में विदेशी व्यापा-

प्रथम अध्याय

प्रागैतिहासिक युग में भारतीय वेश-भूषा—मोहेनजोदड़ो और हड़प्पा

ऐतिहासिक अनुश्रुतियों के आधार पर तो हमारी सभ्यता सनातन है, और अधिकतर भारतीयों का विश्वास भी ऐसा ही है। पर किसी सभ्यता का इतिहास केवल अनुश्रुति गत कल्पनाओं को ही लेकर नहीं लिखा जा सकता। आजकल का वैज्ञानिक युग सत्य तो उसे ही मानता है जो दृश्य है और जिसकी सत्ता वैज्ञानिक आधारों पर साबित की जा सकती है। केवल आज से पचीस तीस वर्ष पहिले पुरातत्व शास्त्री भारतीय सभ्यता के इतिहास का आरंभ वैदिक युग यानी १५०० ई० पू० या अधिक से अधिक २००० ई० पू० से करते थे। वैदिक आर्यो के पूर्व इस देश में एक सभ्यता थी, यह तो विद्वान मानते थे पर उसका ठीक ठीक रूप क्या था इसका निश्चय बिना पुरातत्व के सहारे करना कठिन था। युरोपीय विद्वानों को तो दृढ़ विश्वास हो चुका था कि भारतीय इतिहास का आरंभ करीब १५०० ई० पू० से ही होता है और इसके पहिले शायद एक द्रविड़ सभ्यता इस देश में थी पर उसकी संस्कृति आर्य संस्कृति से काफी कमजोर थी। द्रविड़ एक तरह से जंगली थे और उनके धार्मिक विश्वास अर्थात नाग, वृक्ष पूजा इत्यादि भी उनके जंगलीपन के सबूत है। इस विश्वास की मजबूती का अन्दाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि वेदों में या बौद्ध और पौराणिक साहित्यों में अगर भारत का किसी ऐसे देश से संबंध का जिक्र है जिसकी ऐतिहासिक स्थापना से भारतीय सभ्यता का इतिहास १५०० ई० पू० के कुछ आगे बढ़ सकता हो तो विद्वानों में एक तरह की खलबली मच जाती थी और वे इन ऐतिहासिक स्थापनाओं का खंडन कर के यह दिखलाने का प्रयत्न करते थे कि भारतीय साहित्य में यह अवतरण बाद के हैं। उदाहरण के लिए बावेरु जातक (जातक ३३९) में बाबुल देश को भारत से मयूर पक्षी जाने का उल्लेख है, जिससे पता चलता है कि इस देश से बाबुल का संबंध काफी प्राचीन समय से था[1]। इस संदर्भ को लेकर विद्वानों में काफी बहस छिड़ पड़ी। पालि बावेरु प्राचीन ईरानी हरवानी बादशाहों के अभिलेखों में आये बविरु का रूपान्तर माना गया और इस आधार पर इस मत की स्थापना हुई कि फारस की खाड़ी के देशों से और भारतवर्ष से ई० पू० पांचवीं से सातवीं सदी तक व्यापारिक संबंध था। लेकिन इस स्थापना को विद्वानों ने एक स्वर से स्वीकार नहीं किया। श्री हलेवी का तो यह दृढ़ मत था कि यह उद्धरण ई० पू० दूसरी शताब्दी के पहिले का नहीं हो सकता लेकिन इस संबंध में श्री हलेवी इस बात की मीमांसा करना भूल गये कि जातककार ने अगर अपनी कथा ई० पू० पहली

१—सिलवें लेवी, ओतूर दु बावेरु—जातक, पृ० २८४ आगे, मेमोरियल सिलवें लेवी, पेरिस, १९३७

या दूसरी शताब्दी में लिखा तो उसने बाबुल का ग्रीक नाम जो सिकंदर के समय से चल चुका था क्यों न देकर उसके पहले चलने वाले ईरानी नाम का क्यों प्रयोग किया। इन सब तर्कों से यह पता चलता है कि पश्चिमी पुरातत्ववेत्ता और भाषाशास्त्री भारतीय सभ्यता को मिश्र और बाब्ल की प्राचीन सभ्यताओं की कोटि में नही आने देना चाहते थे। इस बात से उनका पक्षपात तो साबित होता है पर प्रमाणाभाव से हम उनकी विधिवत युक्तियों के खंडन मे प्राय: असमर्थ थे । लेकिन उनका मत कुछ दिनों तक ही चल सका। १९२२ ई० मे मोहेन-जोदड़ो के एक बौद्धस्तूप की खुदाई करते हुए श्री राखालदास बेनर्जी को सिधु-घाटी की प्रागैतिहासिक सभ्यता का पता चला। मोहेनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई जैसे जैसे आगे बढ़ती गयी वैसे वैसे भारतीय सभ्यता की प्राचीनता के ठोस सबूत मिलते गये और पुरातत्ववेत्ताओं ने एक स्वर से इस बात को स्वीकार कर लिया कि भारतीय सभ्यता प्राचीनता मे सुमेर और मिश्र की सभ्यताओं से न केवल टक्कर ही लेती है वरन कुछ बातों में जैसे नगर रचना में तो उनसे भी आगे बढ़ जाती है।

इस सिंधुघाटी की प्रागैतिहासिक सभ्यता के जो कुछ भी अवशेष मिले हैं उनसे पता चलता है कि वह सभ्यता वैदिक सभ्यता से कहीं आगे बढ़ी हुई थी। सिंधुसभ्यता ३००० ई० पू० या ४००० वर्ष पूर्व फूल फल रही थी और इसमें वैदिक आर्यों की सभ्यता का कोई लेश नहीं मिलता। इस सभ्यता का संबंध सुमेर, अक्काड और एलम से भी था और अफगानिस्तान, कश्मीर और सुदूर दक्षिण से भी। उस प्राचीन काल में भी सिंधुघाटी की सभ्यता काफी आगे बढ़ी हुई थी। बड़े बड़े शहरों में लोग रहते थे । गेहूं और जौ की खेती होती थी और लोग बैल, भैंसे, भेंड़ें, सूअर, कुत्ते तथा हाथी पालते थे । सवारी के लिए वे पहियेदार गाड़ियों का व्यवहार करते थे। वे धातुओं के सामान और औजार बना सकते थे। लड़ाई और शिकार में वे धनुष बाण, भाले, कुल्हाड़ियां, छूरे तथा गदा व्यवहार में लाते थे । उनके घरेलू मिट्टी के बरतन चाक पर चढ़े होते थे और अक्सर उन पर अलंकार बने होते थे। समृद्धजन प्रसाधन के लिए सोने, तांबे, कच्चे शीशे, हाथीदांत और अकीक इत्यादि की मणियों से बने गहने पहनते थे, गरीब मट्टी तथा शंख के बने गहनों ही पर संतोष करते थे । लेखन कला से भी वे अवगत थे । सभ्यता के इतने आगे बढ़ने पर भी सिंधु सभ्यता में वस्त्र काफी सादे होते थे । साधारणत: लोग लंगोटी या तहमत पहनते थे। बहुधा लोग नंगे भी रहते थे । कभी कभी चादर से छाती ढंकी होती थी। बाल बहुधा फीतों से बंधे रहते थे। स्त्रियों के शिरोवस्त्र कभी कभी पंखे के आकार के होते थे ।

मोहेनजोदड़ो में कताई के साधन

मोहेनजोदड़ो से बहुत सी तकुओं की फिरकियां मिली हैं जिनसे पता लगता है कि अमीर गरीब सब सूत कातते थे । गरम कपड़े ऊन से बनते थे और हलके कपड़े सूती होते

थे। मोहेनजोदड़ो से मिले हुए एक चांदी के पात्र में चिपके वस्त्र के कुछ टुकड़ों के वैज्ञानिक अनुसंधान से इस बात का पता चला कि इन टुकड़ों में सूत उस साधारण कपास का है जो आज दिन बहुतायत से भारतवर्ष में होती है। सर जान मार्शल का कहना है कि इस खोज से अब यह बात पुष्ट हो जाती है कि बाबुली भाषा मे सिंधु और ग्रीक भाषा में सिडोन (Sindon) जिनका अर्थ कपड़ा होता है सेंमल रूई के सूत के न हो कर कपास के होते थे[२]।

सिंधु सभ्यता में पहनने के कपड़े

सूती वस्त्र खंड के मिलने से यह विचार स्वाभाविक ही है कि मोहेनजोदड़ो में भांति भांति के वस्त्र पहने जाते रहे होंगे लेकिन वस्त्रों के इतिहास के सम्बन्ध में जो कुछ भी सामग्री हमें मोहेनजोदड़ो और हड़प्पा से मिली है उससे हमारी यह धारणा गलत सिद्ध होती है। एक मनुष्य मूर्ति एक लंबी चादर पहने हुए है (चि० १-२) यह चादर छाती ढंकती हुई बाएं कंधे पर डाल दी गई है, बांयाँ हाथ खाली है। यह चादर काफी लंबी होती थी और बैठने पर पैरों तक पहुंच जाती थी। पत्थर की एक दूसरी मूर्ति एक तहमत नुमा कपड़ा पहने हुए है[३]। बांएं कंधे के नीचे एक अनिर्धारित रेखा से शायद चादर का तात्पर्य हो। अगर हमारा अनुमान ठीक है तो चादर दाहिने कंधे को ढंकती थी। लेकिन चादर पहिनने का यह ढंग अनियमित सा है क्योंकि अब तक मिली हुई मूर्तियों में चादर बांयें कंधे को ही ढांकती हुई दिखलायी गयी है; उनका दाहिना कंधा हमेशा खुला हुआ होता है।

यह कहना तो कठिन है कि आदमी चादर के नीचे धोती, लंगोटी या तहमत ऐसा कोई वस्त्र बराबर पहिना करते थे क्योंकि मनुष्य मूर्तियां प्रायः नंगी बतलायी गयी हैं। लेकिन मुद्राओं पर चित्रित देवता और वीर पुरुष एक बहुत संकरा कोपीन पहने हुए दिखलाये गये हैं। हड़प्पा से मिले हुए एक ठीकरे पर बनी हुई मनुष्य मूर्ति[४] एक तंग मोहरी वाला पाजामा या धोती पहने हुए दिखलायी गयी है।

हड़प्पा और मोहेनजोदड़ो से अभी तक जो सामग्री हमें मिली है उसके आधार पर यह कहना मुश्किल है कि सिंधु सभ्यता के लोग सिले हुए कपड़ों से अवगत थे अथवा नहीं। केवल एक मूर्ति कमीज जैसा वस्त्र पहिने हुए है जो कमर पर एक डोर से बंधी हुई है[५]।

२—मार्शल, मोहेनजोदड़ो एंड इंडस वेली सिविलाइजेशन १, पृ० ३३, प्लेट ९८

३—मेके, फरदर एक्सकेवेशंस एट मोहेनजोदड़ो, भा० १, पृ० २५७; भा० २, प्ले० १०५, सं० ६०-६१

४—मेके, इंडस वैली सिविलाइजेशन, पृ० १०३

५—मेके, उपरोक्त

१

२

३

४

५

६
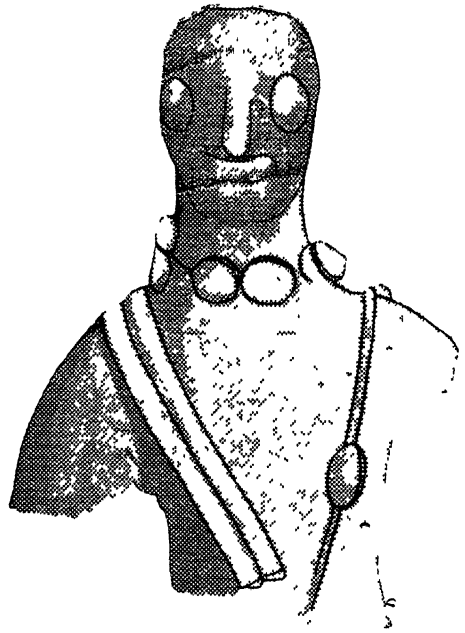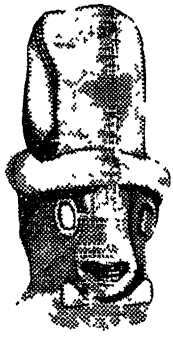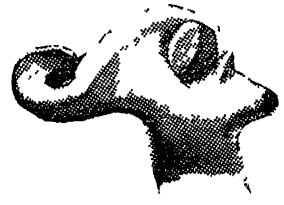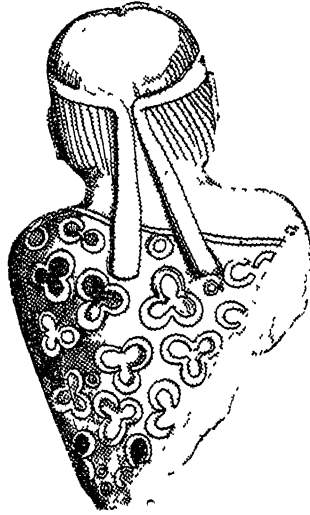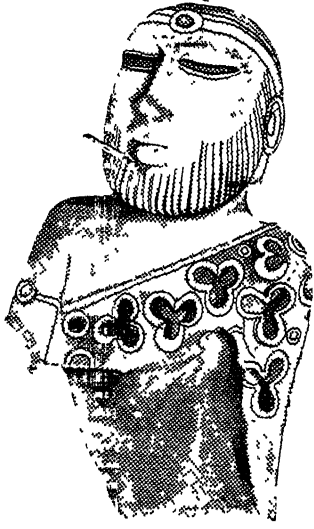
बाल बहुधा फीते से बंधा होता था (आ० १)। लगता है मनुष्य कभी कभी नोकदार चपकी हुई टोपी भी पहनते थे। इस टोपी की नोक या तो फीते से बंधी हुई एक तरफ झुकती हुई दिखलाई गई है (आ० ३) [६] या वह पेंचदार है (आ० ४) [७]।

कभी कभी दुपट्टे की तरह का वस्त्र मनुष्य गले में पहने दिखलाये गये हैं। यह एक तरफ झुकता हुआ होता है (आ० ५) [८]। बटन या ब्रूच से बंधा हुआ यह दुपट्टा प्रायः दोहरा होता था (आ० ६) [९]। डा० मेके [१०] का यह अनुमान है कि यह दुपट्टा शायद किसी पद के अधिकार का अथवा किसी धर्म विशेष का द्योतक है।

स्त्रियों की वेश-भूषा

मट्टी की मूर्तियों में स्त्रियों के जो भी वस्त्र आते है वे काफी साधारण हैं। अगर गहने बाद कर दिये जावें तो स्त्रियों के धड़ नंगे दीखते हैं। संकरी साड़ी घुटने के बहुत ऊपर पहुंचती हैं; इसे साड़ी न कह कर लगोटी कहना बेहतर होगा। जंतरों पर बनी स्त्री मूर्तियां भी ऐसी ही लंगोटी पहने हैं। लेकिन इस लंगोटी का आगा पीछा के बनिस्बत काफी छोटा होता है। लंगोटी को कमर से बांधने के लिए मेखला पहनी जाती थी। यह मेखला कई लड़ मनकों या सादे कपड़े की, जिसके छोर मिलाने के लिए एक चपकन होती थी, बनी होती थी। एक जगह मेखला किसी बुने कपड़े के फूदने से बंधी दिखलायी देती है। कहीं कहीं लंगोटी किसी गुलिका (boss) जैसे आभरण से भूषित दिखलायी गयी है [११]। एक मट्टी की मूर्ति में एक स्त्री घोघी (cloak) पहने दिखलायी गयी है। इस घोघी ने स्त्री के हाथ छिपा रक्खे हैं, और वह लंगोटी के छोर के नीचे नहीं पहुंचती (आ० ७)। डा० मेके का अनुमान है कि शरीर रक्षा के अतिरिक्त साधन के रूप में इसका व्यवहार हुआ है [१२]।

स्त्रियां और पुरुष भी पंखे के आकार का एक शिरोवस्त्र पहनते है (आ० ८)। अभी तक इस बात का पता नहीं चल सका है कि उसके बनाने में कौन सा कपड़ा लगता था। डा० मेके का अंदाजा है कि शायद यह फ्रेम पर चढ़े मांड़ीदार कड़े कपड़े से बना हो [१३]। यह भी हो सकता है सिर पर की चादर का एक कोना बांध कर इस शिरोवस्त्र का रूप खड़ा किया

६—मार्शल, वही, प्ले० ९४, ११

७—मार्शल, वही, प्ले० ९४, ४

८—मेके, फर्दर एक्सकेवेशन...२, प्ले० ७६, २२

९—वही, प्ले० ७६, १५

१०—वही, भा० १, पृ० २६२

११—मेके, इंडस वेली सिविलिजेशन, पृ० १००-१०१

१२—मेके, फर्दर एक्सकेवेशंस्.......आ० २, प्ले० ७५, ६, इंडस वेली...पृ० १०१

१३—मेके, इंडस वैली.....पृ० १०१
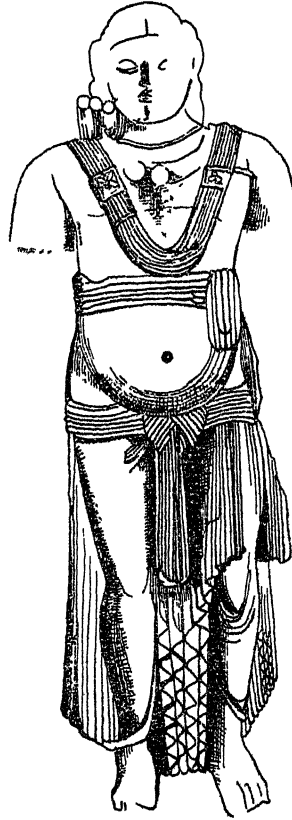
७
८
९
१०
११
१२
१३
१४
१५

गया हो क्योंकि सांची में इस शिरोवस्त्र का रूप ऐसा ही बनाया गया है। जब यह शिरोवस्त्र दोनों तरफ दिवलीदार न हो कर सादा होता था तो इस पर कुछ अलंकार होते थे। कभी कभी इसके दोनों ओर वृत्ताकार अलंकार होते थे और कभी मनक़े की लड़ों और एक चोंगानुमा अलंकार से इसकी सजावट होती थी (आ० ९-१०)[१४]। कहीं कही शिरोवस्त्र सीधा सिर पर रक्खा हुआ देख पड़ता है और कही कहीं वह पीठ पर गिरती चोटी से लगा हुआ और सिर से एक फीते से बंधा मालूम पड़ता है[१५]। दिवलीदार शिरोवस्त्र तो शायद देवी माता ही पहिनती थीं। पेशानी पर बंधे एक फीते के सहारे ये शिरोवस्त्र टिके रहते थे। शिरोवस्त्र में लगी दिवलियों में काजल ऐसे कुछ धब्बे मिले हैं जिनसे पता चलता है कि शायद इनमें किसी समय दीपक जलाये जाते थे[१६]। इससे यह भी सिद्ध होता है कि हाथ में या सिर पर दीप धारण किये हुए मध्यकालीन और आधुनिक दीपलक्ष्मी की मूर्तियों का स्रोत प्रागैतिहासिक काल में है।

कहीं कहीं कुछ अजीब ढंग के शिरोवस्त्र भी मिलते हैं[१७]। पंखे के आकार वाले इन शिरोवस्त्रों पर एक तिपाई सी दीख पड़ती है, यह तिपाई शायद किसी अलंकार की द्योतक हो। यह भी हो सकता है कि इस तिपाई का तात्पर्य किसी देवपीठ से हो। आज दिन भी देवयात्राओं में स्त्रियां अपने सिरों पर देवपीठ ले कर चलती हैं। पगड़ी पहने हुए स्त्री मूर्तियां (आ० ११) कम मिली है[१८]। लगता है स्त्रियां कभी कभी ढीली टोपी भी पहिनती थीं (आ० १२)[१९]।

१४—मेके, फर्दर एक्सकेवेशंस्.... भा० २, प्ले० ७५, ३, ८; ७६, १७
१५—मार्शल, वही, भा० १, पृ० ३३८
१६—वही, भा० १, पृ० २६०; २, प्ले० ७३, ३, ४, ७५, २१—३७
१७—वही, भाग २, प्ले० ७५, १५, १६
१८—वही, भा० २, प्ले० ७६, १६
१९—मार्शल, वही, भा० १, पृ० ३४०, प्ले० १५३, २५

द्वितीय अध्याय

वैदिक युग में वेश-भूषा

सिंधु सभ्यता के समाप्त होने से लेकर ई० पू० तीसरी शताब्दी तक हमें भारतीय सभ्यता के इतिहास के लिए पुरातत्व की अधिक सामग्री नहीं मिलती। मोहेनजोदड़ो के नष्ट होने (२५०० ई० पू०) और आर्यो के भारत आने (१५०० ई० पू०) के बीच में जो एक हजार वर्ष का अंतर पड़ता है उसमें भारतीय सभ्यता किस तरह से फूली फली इसका भी हमें ठीक ज्ञान नहीं है।

जब सिंधु सभ्यता के बाद ऐतिहासिक अंधकार का परदा उठता है तो हमें वैदिकयुग का दर्शन मिलता है, और भारत की आरंभिक आर्य सभ्यता का दर्शन कराने के लिए हमारे सामने ऋग्वेद के मंत्र आते हैं। लेकिन वैदिक सभ्यता कोई एक काल विशेष तक सीमित नहीं थी वह तो १५०० ई० पू० से लेकर करीब ५०० ई० पू० तक बढ़ती और प्रसरित होती रही। पहले संहिताएं बनीं, बाद में ब्राह्मण ग्रंथ, और अंत में उपनिषद् और सूत्र ग्रंथ। काल क्रम के पैमाने में आगे या पीछे होने से वैदिक साहित्य में भी एक ऐतिहासिक विकास क्रम पाया जाता है। वैदिक साहित्य के विभिन्न ग्रंथों के समय निर्धारित करने की विद्वानों ने चेष्टा की है लेकिन अभी तक वे दृढ़ता के साथ वैदिक ग्रंथों का समय निश्चित नहीं कर सके हैं।

वैदिक साहित्य के काल क्रम की यह गड़बड़ी जब हम वैदिक सभ्यता का इतिहास लिखने बैठते हैं तो बड़ी खलती है, क्योंकि हम दृढ़तापूर्वक यह नहीं कह सकते कि सभ्यता के प्रतीक अमुक अंग का आरंभ और विकास समय के पैमाने में कब से कब तक हुआ। साधारणत: हम ऋग्वेद को वैदिक आर्यों का आदि ग्रंथ मान कर उसी के आधार पर आरंभिक आर्य सभ्यता का रूप खड़ा करते हैं, लेकिन अथर्ववेद और कहीं कहीं ब्राम्हणो में भी आर्य और अनार्य सभ्यताओं के कुछ ऐसे प्रारंभिक रूप आये हैं जो ऋग्वेद के समकालीन हो सकते है। बात यह है कि ऋग्वेद कोई इतिहास का ग्रंथ तो है नहीं जिसमें तत्कालीन सभ्यता के सब रूप आने जरूरी थे। वह तो दान तथा देव स्तुतियों और दार्शनिक विचारों का एक संग्रह मात्र है। जिसमें वैदिकसभ्यता के भिन्न भिन्न पहलुओं के संकेत आनुषंगिक रूप से हो गये है। वैदिक युग की भारतीयसभ्यता के अनेक प्रतीक श्रुत वा दृश्य अथर्ववेद और कहीं कहीं ब्राहणों में बाद में आये लेकिन केवल बाद में आने ही से तो यह कहा नहीं जा सकता कि उनका विकास बाद में हुआ। बहुधा वैदिक साहित्य के अध्ययन में ऐसी अड़चनों का हमें सामना करना पड़ता है और तब हमें बुद्धि और वैज्ञानिक

तर्क की तराजू पर यह तौल कर देखना पड़ता है कि पलड़ा किस पक्ष का भारी है और उसी के अनुसार हमें अपनी राय कायम करनी पड़ती है। ऐसे समय हमें पुरातत्व का कोई सहारा न मिलना बड़ा खलता है क्योंकि साहित्य तो साहित्य ही है केवल उसी के सहारे हम उस वैज्ञानिक तथ्य तक नहीं पहुंच सके जिस पर हम वैज्ञानिक पुरातत्व की खोजों से पहुंच सकते हैं। पुरातत्व के सहारे हम सभ्यता संबंधी साहित्यिक उद्धरणों की जांच पड़ताल करके उनके कालसम्बन्धी एक विशेष निष्कर्ष पर पहुंच सकते है, पर कोरे साहित्य से और ऐसे साहित्य से जिसका काल अभी विवादग्रस्त है हमारा विशेष काम नही निकल सकता। लेकिन जब हमारे पास पुरातत्व के साधन नही है तो हमें लाचार होकर साहित्य का आश्रय लेना ही पड़ता है। फिर चाहे उससे निकाले गये नतीजे कितने ही विवादग्रस्त क्यों न हों।

वैदिक साहित्य भारतीय सभ्यता के १००० वर्षो से अधिक विकास के इतिहास का भण्डार है। लेकिन उसमें जो कुछ आया है उसे हम एक ही काल में नही ढूंढ़ सकते, उसमें ऐतिहासिक विकास की परंपरा दिखलाने के लिए हमें काल विभाजन का सहारा तो लेना ही होगा। जहां तक वस्त्र-भूषा का संबंध है हमारी कठिनाई कुछ इसलिए सरल हो जाती है कि संहिताओं, ब्राह्मणों और उपनिषदों में आनुषंगिक रूप से वस्त्रों की जो भी चर्चा आई है उसमें एकता है जिससे यह पता चलता है कि जहां तक वस्त्रों का संबंध है वैदिक काल मे करीब ८०० वर्षों तक विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। इसके दो कारण हो सकते है; (१) अपने प्रारंभिक वेश-भूषा के प्रति आर्यो का मोह, गो कि वैदिक साहित्य के कुछ शब्दों से यह पता चलता है कि आर्यो ने भारत में अपने पूर्व के निवासी द्रविड़ों और निषाद जातियों से कुछ वस्त्र ग्रहण किये थे। (२) इतिहास में बहुधा यह देखा गया है कि किसी नवीन सभ्यता के सम्पर्क में आने से अथवा उससे विजित होने पर विजित सभ्यता विजेताओं के वस्त्र ग्रहण कर लेती थी। उदाहरण के लिए करीब २९०० ई० पू० में जब अक्काद के लोगों ने सम्पूर्ण सुमेर पर अपना अधिकार जमा लिया तो प्राचीन सुमेर के लोगों ने 'कौनकेस' या तहमत की जगह जो उनका जातीय वस्त्र था अक्कादियों के वस्त्र कमीज और चादर को अपना लिया। लेकिन वैदिक साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि न तो वे बाहरी किसी शक्ति से विजित हुए न उनके विशेष संपर्क में आये। इसीलिए उनके अपने वस्त्र जिनमें उन्होंने देश काल के अनुसार सुधार भी कर लिये होंगे ज्यों के त्यों बने रहे। वस्त्रभूषा की इस एकता को देखते हुए हमने संपूर्ण वैदिक युग को एक ही माना है और इसके काल विभाजन नहीं किये हैं। हां सूत्र युग में जिसका आरंभ करीब ५०० ई० पू० से होता है हमें नये वस्त्रों के नाम मिलने लगते हैं और इसीलिए हमने इस सूत्र युग की वेश-भूषा का वर्णन महाजनपद युग की वेश-भूषा के अंतर्गत किया है।

आर्यों का आदि स्थान कहां था इस प्रश्न पर तो काफी बहस रही है लेकिन इतना

तो निश्चित जान पड़ता है कि आर्य भारतवर्ष में और पश्चिमी एशिया में एक साथ प्रविष्ट हुए और ईरानी और भारतीय आर्य करीब २५०० ई० पू० मे अलग हुए। भारतीय आर्यो ने इस देश मे २००० ई० पू० और १४०० के बीच अफगानिस्तान और हिंदूकुश के रास्ते से होकर प्रवेश किया और सबके पहले सिंध नदी की उपरली घाटी मे बसे। बाद मे उन्होंने धीरे धीरे आगे बढ़ते हुए गंगा की घाटी में भू-स्थापना की और अंत मे विंध्यक्षेत्र और सुदूर दक्षिण में फैल गये। पशु पालन और कृषि इनके प्रधान व्यवसाय थे और आरंभिक काल में वे गांवों में रहते थे। गृह निर्माण, बढ़ईगिरी और रथ बनाने की कला में वे पटु थे। अयस के बरतन बना सकते थे और सोने और गहनों के उपयोग वे करते थे। वे कपड़े भी बुन सकते थे। सीने पिरोने, चमड़े कमाने और मिट्टी के बरतन बनाने की कलाओं से भी वे परिचित थे।

ऊनी वस्त्र

आर्य कातने और बुनने के लिए भेड़ों का ऊन व्यवहार में लाते थे और इसीलिए भेंड़ को वे ऊर्णावती[१] कहते थे और ऊन को आविक[२]। सिंध की घाटी को सुवासा ऊर्णावती इसलिए कहा गया है कि वहां ऊन और ऊनी कपड़े बहुतायत से मिलते थे[३]। गधार की भेंड़ें प्रसिद्ध थी[४] और जिस प्रदेश से रावी (परुष्णी) बहती थी वहां का रंगीन अथवा धुला हुआ (सुन्ध्यवः) ऊनी कपड़ा प्रसिद्ध था[५]। पूषण द्वारा ऊनी कपड़े बिनने का भी उल्लेख है[६]।

कंबल और शामुल्य

कंबल[७] और शामुल्य[८] स्त्रियों और पुरुषों के नित्य के पहिनने के वस्त्र थे। कंबल से शायद खुरदरे ऊनी कपड़े का तात्पर्य रहा हो। प्रो० प्रिजलुस्की के मतानुसार[९] कंबल मुंडा–ख्मेर भाषा का शब्द है और वैदिक संस्कृत ने इस शब्द को उस भाषा से उधार लिया है। अथर्ववेद में सबसे पहले यह शब्द आने से यह धारणा होती है कि इस शब्द को आर्यो ने आदिवासियों से अधिक घनिष्टता बढ़ने पर अपना लिया। शामुल्य समूर का बना कपड़ा होता था। पर

१—ऋ० वे०, ८।६७।३
२—वृहदारण्यक उ०, २।३।६
३—ऋ० वे०, १०।७५।८
४—ऋ० वे०, १।१२६।७
५—ऋ० वे०, ४।२२।२; ५।५२।९
६—ऋ० वे०, १०।२६।६
७—अथर्ववेद, १४।२।६६, ६७
८—ऋ० वे० १०।८५।२९; अ० वे० १४।१।२५
९—प्री आर्यन एण्ड प्री ड्रवीडियन, पृ० ६-८, श्री बागची द्वारा संपादित

शामुल्य के संबंध में डा० सुविमलचंद्र सरकार[१०] का और ही मत है। उनका विचार है कि शामुल्य रूई भरा कोई हल्का कपड़ा था। वे हमारा ध्यान इस ओर भी दिलाते हैं कि आधुनिक शमला जो एक संकरा शाल है, और जिसका व्यवहार पगड़ी पर के बंद के लिए होता है और जिसकी व्युत्पत्ति अरबी शामिलात से जिसके अर्थ होते हैं जोड़ना, वास्तव में शामुल्य से निकला है। इस धारणा को सत्य मानने में कई कठिनाइयां हैं। शामुल्य को रूई से भरा वस्त्र मानने में संदेह होता है क्योंकि रूई का ज्ञान, जैसा कि हम आगे चल कर देखेंगे, आर्यो को सूत्र काल में हुआ। शामुल्य तो समूर शब्द का प्राचीन रूप मात्र है जिसका अर्थ आज दिन भी रोएंदार चमड़ा होता है। इसी अर्थ में इस शब्द का व्यवहार कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी हुआ है।

खालों के वस्त्र

जानवरों की खालों का भी वस्त्ररूप में व्यवहार होता था। देवता, मुनि, व्रात्य और देश के आदि निवासी खालों से बने कपड़े पहनते थे। इस संबंध में शतपथ ब्राह्मण[११] में एक कहानी दी हुई है जिससे पता चलता है कि वैदिक सभ्यता के आरंभिक युग में आर्य गोचर्म पहना करते थे। कहानी यह है कि मनुष्य एक समय गोचर्म से आच्छादित होता था। गाय की उपादेयता का देवताओं को ज्ञान था और इसीलिए मनुष्य के शरीर से गोचर्म उन्होंने खलिया कर पुनः गायों को वापस कर दिया। खाल के बिना मनुष्य को बराबर चोटें लगा करती थीं। इसलिए उनका खोया हुआ आवरण पुनः वापस देने केलिए देवताओं ने वस्त्रों की सृष्टि की। इस कहानी से यह निष्कर्ष निकलता है कि सभ्यता के आरंभिक युग में आर्य गोचर्म पहना करते थे। इसमे कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जिस समय सभ्यता शिकारी अथवा पशुपालक अवस्था में थी उस समय मनुष्य पशुओं के चमड़ों से अपने बदन ढांका करते थे। प्राचीर सुमेर में भी लोग सारगान के काल तक बकरे की खाल की बनी तहमत पहना करते थे। ऐसा लगता है कि जब आर्यो की सभ्यता उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़ी तो उन्हें गाय की आर्थिक उपयोगिता का ज्ञान हुआ और चमड़े के लिए व्यर्थ गो-हत्या का निषेध करके वे और तरह तरह के वस्त्र पहनने लगे।

कृष्णाजिन

शतपथ ब्राह्मण की[१२] एक दूसरी कहानी से पता लगता है कि कृष्णाजिन बहुत ही पवित्र माना जाता था। कहानी यह है कि यज्ञ की आहुति एक समय मृग का रूप धारण

१०—सरकार, सम आसपेक्टस् ऑफ दी अर्लियस्ट सोशियल हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ० ५६, फु० नो० ६ '७।

११—शतपथ ब्रा०, ~~३।१।२।१३~~

१२—शतपथ ब्रा०, १।१।४।१

कर के देवताओं से बचने के लिए भाग गयी। देवताओं को जब इसका पता लगा तो उन्होंने उसे पकड़ कर उसकी खाल उतार लिया । उसी दिन से कृष्णाजिन पर दीक्षा दी जाने लगी और यज्ञ की आहुति के लिए धान्य भी उस पर घोटा जाने लगा। यज्ञादिक कार्यों में मृगचर्म का व्यवहार विहित है। इसी बात को साबित करने के लिए ऊपर की कहानी गढ़ी गयी है। कहानी हमारी उस पूर्वकालीन संस्कृति की ओर भी इशारा करती है जब धार्मिक कार्यों में मृगचर्मो का प्रयोग बेधड़क होता था । आज दिन भी धार्मिक कार्यों में मृगचर्म पवित्र माना जाता है।

मरुत् हिरन की खालें पहनते थे[१३]। हिरन की खालें पहन कर और उन्हीं के चमड़े की बनी ढालें लेकर देवगण शत्रुओं में भय उत्पन्न करते थे[१४]। मुनिगण भूरे और कमाए हुए चमड़े (पिशङ्गमला) पहनते थे[१५]। व्रात्यों के अधिनायक और उनके साथी दोहरे (द्विसंहितानि) चमड़े पहनते थे जिसमें एक काला (कृष्ण) और दूसरा सफेद (वलक्ष) होता था[१६]। जंगली जातियां नाच के समय कृत्ति और दूर्श पहनती थी[१७], और अजिन भी व्यवहार में लाती थीं[१८]। यज्ञ के समय कृष्ण मृगचर्म पहना जाता था[१९]। बकरे की खाल (अजर्षभ्यस्य अजिन) पहनी जाती थी[२०]। समूर के व्यापार का भी उल्लेख है[२१]।

कुछ और तरह के भी कपड़े व्यवहार में लाये जाते थे पर उनका कोई विवरण न प्राप्त होने से उनकी पहचान में काफी कठिनाई पैदा होती है और न ठीक ठीक से यह कहा जा सकता है कि वे वनस्पतियों के किन किन रेशों से बनते थे ।

बरासी

बरासी का उल्लेख सबसे पहले काठक संहिता[२२] में आया है। आश्वलायन श्रौत सूत्र[२३] और लाटचायन श्रौत सूत्र[२४] के अनुसार बरासी वस्त्र सोमयाग में भाग लेने वाले नेष्टि को

१३—ऋ० वे०, १।१६६।१०
१४—अ० वे०, ५।२१।७
१५—अ० वे०, १०।१३६।२
१६—पञ्चविंश ब्रा०, १७।१
१७—अ० वे०, ८।६।११
१८—अ० वे०, ४।७।६
१९—अ० वे०, ५।२१।७; ६।१।१८५
२०—शत० ब्रा०, ३।९।१।१२; ५।२।२१।२४
२१—वाजसनेयी सं०, ३०।१५; तैत्तिरीय ब्रा०, ३।२।१३।१
२२—काठक सं०, १५।४; पंचविंश ब्रा०, १८।९।
२३—आ० श्रौ० सू०, २।३।४।१७
२४—ला० श्रौ० सू०, ९।२।१५

दक्षिणा के रूप में दिया जाता था। लाट्यायन श्रौत सूत्र के टीकाकार को इस शब्द का ठीक ठीक अर्थ का पता नही था और इसीलिए उसने बरासी को क्षौम्य अर्थात् अतसी की छाल के रेशे का बना वस्त्र कहा है। आश्वलायन श्रौत सूत्र के टीकाकार ने बरासी का अर्थ मोटे सूत का कपड़ा किया है। डा० सरकार के मत से उत्तर पश्चिमी सीमा प्रांत और हिमालय के बहिर्गिरि पर उगने वाले बरस (एक प्रकार के लाल फूल वाला रोडोडेड्रन) नाम के वृक्ष की छाल के रेशे से शायद यह वस्त्र बुना जाता था[२५]।

दूर्श

इस कपड़े का उल्लेख अथर्ववेद में आया है[२६]। पालि साहित्य में भी दुस्स नाम के कपड़े का उल्लेख आया है। आज दिन धुस्सा जो दूर्श से निकला है एक तरह की खरदरी ऊनी चादर का नाम है जो पंजाब और कश्मीर मे बनती है, पर यह ठीक तौर से नहीं कहा जा सकता कि वैदिक युग में दूर्श का क्या रूप था।

क्षौम

क्षुमा अथवा अतसी की छाल के रेशे से बने हुए वस्त्र का सर्वप्रथम उल्लेख मैत्रायणी संहिता और तैत्तिरीय संहिता में आया है[२७]। कुसमी रंग के क्षौम परिधान का उल्लेख शाङ्खायन आरण्यक[२८] मे आया है। आश्वलायन श्रौत सूत्र[२९] के अनुसार क्षौम वस्त्र सोमयाग में नेष्ट्रि को दक्षिणा रूप में दिया जाता था।

पांड्व

शतपथ ब्राह्मण और मैत्रायणी[३०] संहिता के अनुसार पांड्व वस्त्र यज्ञ के समय राजाओं द्वारा पहना जाता था। बृहदारण्यक उपनिषद्[३१] में पांड्वाविक वस्त्र का उल्लेख है। यह भेड़ के ऊन का बना हुआ सफेद वस्त्र होता था। डा० सरकार का कहना है कि शायद पांड्व कोरा अथवा रंगीन रेशमी अथवा सूती वस्त्र था[३२]। उनके ऐसा कहने का आधार क्या है यह नही कहा जा सकता।

२५—सरकार, वही, पृ० ६१, फु० नो० ३
२६—अ० वे०, ४।७।६; ८।६।११
२७—मै० सं०, ३।६।७; तै० सं०, ६।१।१।३
२८—शा० आ०, ११।४
२९—आ० श्रौ० सू०, २।३।४।१७
३०—श० ब्रा०, ५।३।५।२१; मै० सं०, ४।४।३
३१—बृ० उ०, २।३।६
३२—सरकार, वही, पृ० ५९

तार्प्य

तार्प्य का उल्लेख अथर्ववेद तथा और कई जगह आया है[३३]। कृष्ण यजुर्वेद[३४] के अनुसार यज्ञ के अवसर पर यजमान को स्वयं तार्प्य पहनना पड़ता था। राजसूय यज्ञ[३५] के अवसर पर राजा तार्प्य वस्त्र जिस पर यज्ञ के उपादानों के रूप कढ़े या टंके होते थे पहनता था। सायण और कात्यायन ने तार्प्य के बहुत से अर्थ दिये हैं। यथा क्षौम, घी मे डूबा वस्त्र, तृप नाम की घास से बना हुआ, अथवा तीन बार घृत मे डुबोया हुआ वस्त्र इत्यादि। तार्प्य की इन सब व्याख्याओं से यह पता चलता है कि टीकाकारों को इस शब्द के अर्थ के बारे में दुविधा थी। कुछ ऐसा भी मालूम पड़ता है कि शतपथकार को भी इस शब्द के ठीक अर्थ के बारे में शक था। गोल्डस्टुकर के मत से सहमत होते हुए एगलिग का कहना है कि तार्प्य किसी तरह का अधोवस्त्र था[३६]। डा० सरकार तार्प्य को बिहार के टसर से, जो एक तरह का मोटा रेशमी कपड़ा होता है, तुलना करते है[३७]। डा० सरकार इस पहचान पर कैसे पहुंचे यह कहना कठिन है। सत्य तो यह है कि तार्प्य का ठीक ठीक अर्थ अभी हमे विदित नहीं है।

कार्पास

जैसा हम पहले अध्याय में कह आये है सिंधु सभ्यता के युग मे कपास से बने कपड़े पहने जाते थे। आश्चर्य की बात है कि वैदिक संहिताओं और ब्राह्मणों मे कार्पास का कहीं भी उल्लेख नहीं है। सब से पहले कपास का उल्लेख आश्वलायन और लाट्यायन श्रौत सूत्रों[३८] में आया है। इन उल्लेखों के अनुसार सोमयज्ञ के पोतृ को कपास का कपड़ा (कार्पास संवासः) दक्षिणा के रूप में दिया जाता था। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या कारण था कि वैदिक आर्य कपास से इतने काल तक अनभिज्ञ थे ? उत्तर कई हो सकते हैं यथा (१) वैदिक आर्यो से और सिंधु सभ्यता से कोई सरोकार नहीं था और वे भारत में उस काल में आये जब सिंधु सभ्यता पूर्णत. नष्ट हो गयी थी और इसलिए उस सभ्यता के एक प्रतीक कपास की कताई बुनाई का उन्हे ज्ञान नहीं हुआ। यह ज्ञान उन्हें तब हुआ जब वे पूर्व भारत में पहुंचे जहां कपास के व्यवहार से, जैसा हमें पालि साहित्य बतलाता है, लोग भली भांति परिचित थे। (२) यह भी संभव है कि आर्यों को कपास का ज्ञान रहा हो लेकिन एक अनार्य वस्तु होने से उसके व्यवहार से वे हिचकिचाते रहे हों, गोकि इसकी संभावना कम है।

३३—अ० वे०, १८।४।३१; तै० सं०, २।४।११।६; मै० सं०, ४।४।३

३४—तै० ब्रा०, १।३।७।१

३५—श० ब्रा०, ५।३।५।२०, सर्वाणि यज्ञरूपाणि निस्यूतानि।

३६—एगलिंग, शतपथ ब्रा०, भा० ३, पृ० ८८, फु० नो० १

३७—डा० सरकार, वही, पृ० ६, फु० नो० ५

३८—आ० श्रौ० सू०, २।३।४।१७; ला० श्रौ० सू०, २।६।१; ६।२।१४

कताई बुनाई

कातने और बुनने का काम प्राय: स्त्रियों के जिम्मे था[३९]।

अथर्ववेद[४०] के एक रूपक में रात्रि और दिवा को भगिनी मान कर उन्हें वर्षरूपी कपड़े को बुनते बतलाया है । इसमें रात को ताना और दिन को बाना माना है। कपड़े बुनने वालियों के लिए वायितृ[४१] और सिरी[४२] शब्दों का उपयोग हुआ है। डा० सरकार के अनुसार वैदिक सिरी तामिल सिलै से लिया गया है और पूर्वी जानपदी भाषाओं में अब भी इसका रूप सिरी, सिली, सिलाई होता है जिसका अर्थ बुना हुआ कपड़ा होता है ।

वैदिक साहित्य में बुनने की कारीगरी के बहुत से पारिभाषिक शब्द आये हैं। ओतु (बाना)[४३], तंतु (सूत)[४४], तंत्र (ताना)[४५], वेमन् (करघा)[४६], प्राचीनतान (आगे खिंचा हुआ ताना)[४७], वाय (बुनकर)[४८], मयूख (ढरकी या शीशे का वजन)[४९] बुनाई संबंधी शब्द हैं।

पहनने के कपड़े

ऋग्वेद[५०] और बाद के साहित्य में पहनने के कपड़ों के लिए साधारणत: वासस् शब्द का व्यवहार हुआ है। वसन[५१] और वस्त्र[५२] के भी वही माने होते हैं। वैदिक आर्य अपने कपड़े बड़े शौक से पहनते थे। सुवसन[५३] का व्यवहार खूबसूरत कपड़ों तथा अच्छी तरह से पहने

३९—अ० वे०, १०।७।४२; १४।२।५१
४०—अ० वे०, १०।७।४२
४१—पञ्च० ब्रा०, १।८।९; श० ब्रा०, ३।१।२।१३ इत्यादि
४२—अ० वे०, १४।२।५१
४३—ऋ० वे०, ६।९।२-३; तै० सं०, ६।१।१।४
४४—अ० वे०, १४।२।५१; श० ब्रा०, ३।१।२।१८
४५—ऋ० वे०, १०।७१।९
४६—वाजसनेयी सं०, १९।८३
४७—तै० सं०, ६।१।१।४
४८—ऋ० वे०, १०।२६।६
४९—वा० सं०, १९।८०–८३
५०—ऋ० वे०, १।३४।१; १।११५।४; ८।३।२४
५१—ऋ० वे०, १।९५।७
५२—ऋ० वे०, १।२६।१
५३—ऋ० वे०, ६।५१।४

गये वस्त्र दोनों ही के लिए हुआ है[५४]। सुवासस्[५५] विशेषण का प्रयोग अच्छे कपड़े पहनने वालों के लिए हुआ है। सुरभि[५६] शब्द से पता चलता है कि पहनने के कपड़े बदन पर ठीक बैठते थे। समाज में बढ़िया कपड़े पहनने वालों के मान होने का उल्लेख शतपथ[५७] में आया है। इस उल्लेख के अनुसार मनुष्य कपड़ा इसलिए पहनता है कि वह उसके बदन पर चमड़े की तरह शरीर की रक्षा का काम देता है। इसीलिए यह आवश्यक है कि मन से मनुष्य अच्छे कपड़े पहने (सुवासा एव बुभूषेत्)। अनेक रंग बिरगे कपड़े पहनने की भी प्रथा थी। शतपथ में अग्नि का एक पर्याय विभावसु[५८] भी है जिसका अर्थ है रंग बिरंगे कपड़े पहनने वाला। कौषीतकी ब्राह्मण[५९] में अच्छे कपड़े पहनने वाले युवकों का उल्लेख है।

वैदिक वस्त्रों पर अलंकार

वैदिक युग में कपड़ों पर बहुधा कसीदे का काम बना होता था। मरुत् कारचोबी के काम वाले कपड़े पहनते थे[६०] (हिरण्यान् प्रति अत्कान्)। कपड़ों में किनारे और झालरें भी होती थीं। सिच्[६१] शब्द से कसीदा किये हुए किनारे या झालर का बोध होता है। दो ऊपर नीचे के और दो बगल के किनारों का उल्लेख आया है[६२]। वैदिक आरोका:[६३] से शायद कपड़े पर बने अलंकारों से मतलब है। डा० सरकार का विचार है[६४] कि आरोका: की व्युत्पत्ति तामिल अरुकणि से है जिसके अर्थ होते हैं कपड़ों के अलंकृत किनारे। यज्ञ के अवसर पर कोरे कपड़े[६५] पहने जाते थे पर अन्य अवसरों पर धुले कपड़े (स्वित्यञ्च:)[६६]। सुनहले काम वाले रंगीन कपड़े ऊषा की श्रेणी वाली रंगीली स्त्रियां पहनती थी[६७]। व्रात्य गृहस्थ किनारेदार नीले कपड़े पहनने के शौकीन थे[६८]।

५४—ऋ० वे०, ६।६७।५०
५५—ऋ० वे०, १।१२४।७; ३।८।४
५६—ऋ० वे०, ६।२९।३
५७—श० ब्रा०, ३।१।२।१६
५८—श० ब्रा०, ६।४।३।८
५९—कौ० ब्रा०, १०।२
६०—ऋ० वे०, ५।५५।६
६१—ऐत० ब्रा०, ७।३२; श० ब्रा०, ४।२।२।११
६२—सरकार, वही, पृ० ६३
६३—श० ब्रा०, ३।१।२।१३
६४—सरकार, वही, पृ० ६३, फु० नो० १२
६५—श० ब्रा०, ३।१।२।१३
६६—ऋ० वे०, ७।३३।१
६७—ऋ० वे०, १।९२।४, अधिपेशांसि वपते नृतुः ऽइव ; १०।१।६
६८—पञ्चविंश ब्रा०, १७।१।४।१६

रियों और सिपाहियों के सिले वस्त्रों का प्रभाव भी पड़ा। समन्वय के इस युग की एक विशेषता है कि विदेशी वस्त्रों के ग्रहण करते हुए भी उन्हें भारतीयता के सांचे में ढाला गया।

इस युग में सिपाहियों की वर्दी भी दो तरह की थी। एक वर्दी में तो सिपाही धोती दुपट्टा पहनते थे और दूसरी में कंचुक और जांघिया। लगता है कि दूसरी वर्दी की लड़ाई में उपयोगिता देख कर गुप्तों ने उसे शकों और हूणों से ग्रहण किया।

गुप्तयुग में बहुत तरह के महीन, छपे हुए और नकाशीदार कपड़े बनते थे जिनमें चारखाने, डोरिये, हंस मिथुन इत्यादि मुख्य थे। अभाग्यवश इस युग के साहित्य में कपड़ों के छिटपुट वर्णन आये हैं; पर बाण-भट्ट की कादंबरी और हर्षचरित से तथा जैन छेद सूत्रों से तत्कालीन कपड़ों के वर्णन मिल जाते हैं। वस्त्र चार विभागों में बंटे थे यथा वल्कल, फाल, कौशेय और रांकव। रांकव पश्मीना था, जो पामीर के प्रदेश से आता था।

जैन साहित्य में कपड़ों की निम्नलिखित तालिका आई है—भंगिय (भंगेला), जंगिय (ऊंट के बाल से बना कपड़ा), पोत्तग (ताड़ के पत्तों से बना कपड़ा), क्षौम, तूल कड (सेमल की रूई से बना वस्त्र), आइणग (चमड़े के बने वस्त्र), सहिण (महीन कपड़े), महिण कल्लण (रंगीन और नक्काशीदार कपड़े), आजक (बकरे के रोएं से बने कपड़े), काय (नीली रूई के सूत से बने कपड़े), दूकूल (दुकुल वृक्ष की छाल के रेशे से बने कपड़े), हंस दुकूल (हंसाकृतियों से अलंकृत महीन दुकूल), पट्ट (रेशमी वस्त्र) जिसके बहुत से भेद होते थे यथा मलय-अंशुक, चीनांशुक, कृमिराग और सुवर्ण; पत्रोर्ण (शायद जंगली रेशम), वेसराग (जाटों के देश का रंगीन कपड़ा), अमिला (कलफदार कपड़ा), गज्जफल (कड़कड़ाता कपड़ा), फालिय (पारदर्शी कपड़ा), कोयव (रोयेंदार कंबल), कंबल (ऊनी चादर), पावर (चादर) इत्यादि।

शाल और चादरें निम्न लिखित भांति की होती थीं—उद्र (ऊद बिलाव के चमड़े के बने रूमाल), पेस (सुईकारी के कामवाला शाल), पेसल (पश्मीने की चादर), नीलमिगाइणग (नीलगाय के चमड़े से बना ओढ़ना), गोरमिगाइणग (एक सफेद पशु के चमड़े से बनी चादर), कणग (सुनहरे काम की चादर), कणगकंतिय (सोने के भरपूर काम वाली चादर), कणगपट्ट (पूरी कलाबत्तू से बिनी चादर), कणगखचिय (जरदोजी के काम की चादर), कणगफुसिय (थोड़े सुनहले काम की चादर), कणगयक (सुनहरे किनारे वाली चादर), कणगफुल्लिय (जिसके फूल कलाबत्तू से कढ़े हों), ऊंट, बाघ और चीतों की खालों से बने प्रावार, आभरण (पत्ती की नक्काशी वाली चादर), आभरण-विचित्त (भरी नक्काशीदार चादर), पखंग (पश्मीना), तिरीटपट्ट (तिरीट वृक्ष की छाल के रेशे से बने महीन कपड़े), वडग (टसर), इत्यादि। इनके सिवाय रल्लक (एक तरह का कंबल) और शांणक (सनी कपड़ा) के नाम भी आये हैं।

इस युग के सूती कपड़ों का कम उल्लेख आया है। इसका कारण यह हो सकता है कि सूती कपड़े इतने प्रचलित थे कि उनके वर्णन की आवश्यकता नहीं समझी गयी, फिर भी उपरोक्त तालिका में गर्जफल और फालिक शायद सूती वस्त्र थे।

अमर कोश में कपड़े बुनने की क्रिया का उल्लेख है। करघे से तुरन्त उतरे कपड़े को निष्प्रवाणि, बिना कुंदी किये कपड़े को अनाहत, और करघे पर चढ़े कपड़े को तंत्रक कहते थे। कपड़े के किनारे को दशा या वसति, लंबाई को दैर्घ्य, आयाम और आरोह और पनहे को परिणाह और विशालता कहते थे। साधारणतः बहुमूल्य कपड़ों के लिए सुचेलक और पट और मामूली कपड़ों के लिए वराशि और स्थूलशाटक शब्द आये हैं। कपड़े धोने के लिए पहले वे सज्जीखार के घोल में डाल दिये जाते थे और बाद में उबाल कर साफ पानी में धो लिये जाते थे।

गुप्तयुग के साहित्य में कपड़े बुनने के प्रसिद्ध स्थलों के नाम आये हैं । मथुरा की डोरिया प्रसिद्ध थी। लाट देश से आकर मंदसोर में बसे पट्टवाय बहुत ही कोमल रंग बिरंगे और नक्काशीदार रेशमी कपडे बिनते थे । आसाम के रेशमी कपड़ों में जाती पट्टिका (चमेली के फूलों से अलंकृत मूंगा) और कोमल चित्रपट मुख्य थे । पौंड् (उत्तर बंगाल) के धोती दुपट्टे प्रख्यात थे । गुजरात की बांधणी या चूंदरी को पुलकबंध कहते थे । कोट्टम्ब (आधुनिक पठान कोट), ताम्रलिप्ति (आधुनिक तामलुक) और सिंधु कपड़े बुनने के बड़े केन्द्र थे । शायद पुष्पपट्ट (किंखाब) काशी में बुने जाते थे ।

विवाह के अवसर पर धनिक वर्ग और राजे महराजे दहेज में तरह-तरह के कीमती कपड़े देते थे। राज्यश्री के विवाह अवसर पर राज महल में अनेक तरह के कपड़े दहेज में देने के लिए सजाये गए थे जिनमें क्षौम, बादर (सूती कपड़े), दुकूल, लालातंतुज (बहुत महीन रेशमी कपड़ा) और नेत्र (एक तरह का रेशमी कपड़ा) मुख्य थे ।

इस युग में सर्व साधारण जन धोती दुपट्टा पहनते थे । धोती के लिए चार शब्द यथा अंतरीय, उपसंव्यान, परिधान और अधोंशुक आये हैं और चादर के लिए प्रावार, उत्तरासंग, वृहतिका, संव्यान और उत्तरीय । कूर्पासक एक मिर्जई अथवा चोली की तरह कोई वस्त्र था । आधी जांघ तक की घघरी को चंडातक कहते थे । जाड़े में पहरे जाने वाले लबादे को नीशार और पैर तक लटकते अंगे को प्रपदीन ।

इस युग में स्त्रियां साड़ी, चादर और वैकक्ष्य पहनती थीं। कभी-कभी वे रंग बिरंगे कंचुक और चंडातक पहनती थीं। साड़ियां कभी-कभी पुष्पों और चिड़ियों की नक्काशी से सजी होती थीं। स्त्रियां बहुधा मौसिम के अनुकूल कपड़े पहनती थीं। गरमी में हलकी दुकूल की साड़ी और बसंत में केसरिया साड़ी और लाल स्तनपट्ट पहनने के उल्लेख हैं ।

राजे सादे पर सजीले कपड़े पहनते थे । रेशमी धोती, सितारे टंके हुए दुपट्टे, तथा हंसदुकूल वे अक्सर पहनते थे । उच्चवर्ग के लोग भी अपनी मान मर्यादा के अनुकूल कपड़े पहनते थे ।

पैदल सिपाही कंचुक, रूमाल और कमरबंद पहनते थे । सिपाही रंग बिरंगी पगड़ियां और कंचुक भी पहनते थे । अश्वारोही दुकूल की बनी पगड़ी और वारबाण पहनते थे । युद्ध के अवसर पर सामंतगण पाजामे, कंचुक, स्तवरक के बने वारबाण, चीन चोलक और कूर्पासक पहनते थे । उनकी पगड़ियों में कर्णोत्पल की नालें खुसी होती थीं और उनके सिर केसरिया रंग के उत्तरीय से ढके होते थे ।

गुप्तयुग के साहित्य में पगड़ी के काफी उल्लेख हैं। ये मलमल की पट्टियों से बनी होती थीं।

जैन छेद सूत्रों से भी गुप्त की वेश-भूषा पर काफी प्रकाश पड़ता है । हमें बतलाया गया है कि निम्नलिखित अवसरों के लिए अलग-अलग कपड़े होते थे—नित्यनिवसन, मज्जनिक (नहाने के बाद के कपड़े) क्षणोत्सविक (तिहवारों पर पहरने के कपड़े) और राजद्वारिक (राजा से भेंट करने के समय के कपड़े) । कपड़े खूब साफ सुथरी तौर से रक्खे जाते थे । इनकी धुलाई (धौत), कुंदी (घृष्ट), माड़ी (मृष्ट), और बासने (संप्रधूमित) का उल्लेख है । कपड़ों के भिन्न-भिन्न भागों में देवताओं और असुरों के निवास का लोगों को विश्वास था। शायद इसका यह कारण रहा हो कि लोग धार्मिक अवसरों पर ठीक नाप के शुद्ध कपड़े पहनें।

जैन साधु ऊंट के बाल, भांग के रेशे, ताल के पत्ते, सन, ऊन, बकरे के रोएं इत्यादि से बने कपड़े पहन सकते थे । इनके कपड़े प्रमाणवत्, सम, स्थिर और रुचिकारक होते थे । उन्हें सूती और उसके न मिलने

पर रेशमी अधोवस्त्र, तथा ऊनी चादर और उसके न मिलने पर छालटी और रेशमी चादर ओढ़ने का आदेश है। साधु एक साथ केवल दो वस्त्र यथा ऊनी और सूती अथवा तिरीटपट्ट और छालटी पहन सकते थे।

जैन छेदसूत्रों में कटाई और सिलाई के अनेक शब्द आये हैं। यथाकृत सादे कपड़े होते थे। कटे किनारे अथवा थोड़े काम वाले कपड़े को अल्पपरिकर्म और काफी काट वाले शरीर के नाप के बने कपड़े को बहुपरिकर्म कहते थे। उपरोक्त तीन तरह के वस्त्रों में जैन साधु केवल यथाकृत वस्त्र पहन सकते थे, लेकिन यात्रा और बीमारी के समय इस नियम का उल्लंघन क्षम्य था। जैन साधु साधारण नागरिकों की भांति कृत्स्न वस्त्र ग्रहण नहीं कर सकते थे। कृतस्न वस्त्र छः श्रेणियों में अर्थात् नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव के अनुसार बंटे थे। द्रव्यकृत्स्न वस्त्र के दो विभाग थे सकल और प्रमाण। सकल के अन्दर गज्झिन, चिकने, बिना छीर और किनारे वाले कपड़े होते थे। प्रमाणकृत्स्न वस्त्रों की नाप साधुओं के वस्त्रों के नाप से बढ़ कर या घट कर होती थी। क्षेत्रवृत्स्न वस्त्र अप्राप्य और बहुमूल्य वस्त्र होते थे। काल कृत्स्न वस्त्र साल के कुछ महीनों में बहुत महंगे पड़ते थे और मुश्किल से मिलते थे। भावकृत्स्न दो विभागों में यथा मूल्य के अनुसार (मूल्ययुत) और रंग के अनुसार (वर्णयुत) बंटे होते थे। साधु इन दोनों तरह के कपड़े नहीं पहन सकते थे। पर स्थूण देश में अथवा उन देशों में जहां चोरों का भय नहीं था और जहां अच्छे वस्त्र पहनना कौतुक का हेतु नहीं बनता था जैन साधु कीमती, कपड़े किनारे हटा कर पहन सकते थे, पर कुछ अवस्थाओं में किनारे रख भी सकते थे। उंकवत से पीड़ित साधु प्रमाणहीन वस्त्र भी पहन सकते थे। नैपाल, ताम्रलिप्ति और सिंधु-सौवीर में अच्छे कपड़े पहनने की प्रथा थी, इसलिए जैन साधु भी अच्छे कपड़े पहन सकते थे। कुछ ठंडे देशों में साधु कीमती कंबल भी ओढ़ सकते थे। जैन संघ में आने वाले राजकुमारों इत्यादि को उस समय तक कोमल वस्त्र पहनने की आज्ञा थी, जब तक वे खुरदरे कपड़ों के पहनने के अभ्यस्त नहीं हो जाते थे।

धोती चादर के सिवाय साधु सादे सूती कमरबंद भी पहन सकते थे। बीमार साध्वियों की सेवा करते समय वे गोपालकच्छ नामक वस्त्र-विशेष पहनते थे।

साधारण नागरिकों की तरह जैन साधु निम्नलिखित चादरों और उपधानों का उपयोग नहीं कर सकते थे—कोयव (रोयेंदार कंबल), प्रावार (रजाई), पूरिका (पाटकी बनी चादर), विरलिका (दो सूती), उपधान (परों से भरी तकिया), तूलि (अर्क तूलसे भरी तकिया), आलिंगणिका (गाव तकिया), मसूरक (गोल गद्दी), गंडोपधान (सिर के नीचे एक तरफ रखने की तकिया)।

जैन साध्वियां अपने शरीर को अच्छी तरह से ढकने के लिए निम्न लिखित वस्त्र पहनती थीं— अवग्रह (गुप्तांग ढकने के लिए एक तिकोना कपड़ा), पट्ट (नीवी बंद), अर्धोरुक (जांघिया), चलनिका (आधी जांघों की घघरी), अंतरनिवसनी (कपड़े पहनते समय आड़ के लिए एक गमछानुमा वस्त्र), बहिनिवसनी (एड़ी तक पहुंचती साड़ी), कंचुक (यह बेसिला वस्त्र होता था), औपकक्षिकी (छाती ढकते हुए दाहिने कंधे पर बंधा वस्त्र विशेष), वैकक्षिकी (वैकक्ष्य), संघाटी (भिन्न-भिन्न अवसरों पर पहनरने के लिए चार संघाटियां होती थीं) और स्कंधकरणी (हवा से कपड़े उड़ने से बचाने के लिए कंधे पर पहराजाने वाला एक वस्त्र-विशेष)। गृहस्थ स्त्रियों की तरह साध्वियां साड़ी की चूनन आगे या पीछे नहीं खोंस सकती थीं। वे पर्यस्तक भी नहीं पहन सकती थीं; पर बीमारी में यह आज्ञा लागू नहीं थी, फिर भी यह आवश्यक था कि वह जालदार न हो।

आश्चर्य की बात है कि जिस युग में अनावृत शरीर आकर्षक माना जाता था दासियां और नर्तकियां सिले वस्त्र पहनती थीं। रायपसेणिय में एक जगह इसका उल्लेख है कि नट उत्तरीय, चित्र-पट से बने परिकर, कंचुक और रंग बिरंगे वस्त्र पहनते थे । नटियां भी कंचुक पहनती थीं ।

गाय, भैंस, बकरे इत्यादि के चमड़ों से इस युग में तरह-तरह के जूते बनते थे । ये जूते प्रमाण और वर्ण के अनुसार सकल, प्रमाण, वर्ण और बंधकृत्स्न में बंटे थे । सकलकृत्स्न एक तल्ले जूते होते थे और प्रमाण-कृत्स्न दो या इनसे अधिक तल्लों वाले जूते । खल्लक बूट नुमा जूते होते थे । इनके दो उपभेदों में अर्ध-खल्लक आधे पैर ढकते थे और समस्त खल्लक पूरे पैर। वागुर से पैर की अंगुलियां ढक जाती थीं और कोशा से ठोकर लगने से बचाव होता था । जंघा पूरे जंघे को ढकता था और अर्धजंघा आधे जंघे को । तसमेदार जूते को पुटक कहते थे । कोशक और खपुसा सरदी और बरफ से बचने के लिए पहने जाते थे । सकलकृत्स्न जूते एक चमड़े से बने होते थे और वर्णकृत्स्न रंगीन चमड़े से । बंधकृत्स्न जूते में कई बंद होते थे। जो घुटनों और पैर की अंगुलियों पर होते थे । उपरोक्त किस्म के जूते केवल गृहस्थ पहन सकते थे । जैन साधु तो कई टुकड़े चमड़ों से बने एक तल्ले जूते ही पहन सकते थे । कुछ अवसरों पर जैसे यात्रा, बीमारी, आकस्मिक विपत्ति में अविहित जूते भी पहने जा सकते थे ।

जैन साधु और साध्वियों की उपरोक्त वेश-भूषा में हम जैन-धर्म के विकास का रूप पाते हैं । आरंभ में रूखे वस्त्र केवल सामाजिक नियमों की पाबंदी के लिए पहने जाते थे, पर धीरे-धीरे भारतीय संस्कृति की विलासिता के प्रभाव से तप-प्रधान जैन धर्म भी नहीं बच सका और जैन धर्म को भी अपने वस्त्र संबंधी कठोर नियमों को ढीला करना पड़ा ।

सातवीं शताब्दी के चीनी यात्रियों ने भी भारतीय वेश-भूषा का विवरण किया है । युवान च्वांङ के विवरण से पता चलता है कि पुरुष सफेद धोती, और वैकक्ष्य पहनते थे और स्त्रियां शायद कंचुक, चादर और साड़ी । उत्तर भारत में सरदी के मौसिम में लोग तातारी ढंग की बगल बंदी पहनते थे । इत्सिग के अनुसार कश्मीर से लेकर मंगोलिया तक लोग कमीज, पाजामें और रेफनाम का एक जाकेट नुमा वस्त्र पहनते थे ।

इत्सिग के अनुसार बौद्ध भिक्षु संघाटी, उत्तरासंग और अंतरवासक पहनते थे । इनके सिवाय वे निम्न लिखित वस्त्रों का व्यवहार भी कर सकते थे—निषीदक, निवसन, प्रतिनिवसन, कायप्रछन, मुखप्रोंछन, केशप्रतिग्रह और भेषजपरिष्कार चीवर । रेशमी वस्त्र भी पहनने की आज्ञा थी । बौद्ध निकाय के चार संप्रदायों के भिक्षु अपने निवसन अलग-अलग ढंग से पहनते थे और इससे उनकी पहचान हो जाती थी।

भिक्षुणियां उत्तरासंग, अन्तरवास, और संकक्षिका तो भिक्षुओं के ढंग पर ही पहनती थीं; पर निवसन की जगह चार हाथ लंबी और दो हाथ चौड़ी घघरी पहनतीं थीं, जिसमें कमर पर बांधने के लिए बंद लगा होता था ।

कुरता आज दिन भारतीयों का साधारण वस्त्र है । संस्कृत साहित्य में तो इसका उल्लेख नहीं आता; पर लि-येन के संस्कृत चीनी कोश में इसका रूप कुरतौ दिया हुआ है । यह तो निश्चय है कि कुरता पुर्तगाली भाषा का शब्द नहीं है जैसा कि कुछ लोग मानते हैं, हो सकता है कि मध्य एशिया की तुर्की भाषा का यह शब्द हो ।

फानयुत्सामिंग में जूतों के लिए कई शब्द आये हैं। कवषि, जो शायद ईरानी कफस का रूप है, बूट होता था, इसी से बृहत् कल्पसूत्र भाष्य का कफुस्स निकला है । ले-फान-तांग-सिआओसि में दो तरह के

और जूतों के नाम है—शवनस् और पूल; पर इन जूतों की बनावट का पता नहीं चलता। महाव्युत्पत्ति में जूतों के लिए उपानह, पादुका, पादवेष्टनिका, पूल और मंड (मुंड) पूल शब्द आये हैं। मंडा जूता आज दिन भी उत्तरी भारत में पहना जाता है।

गोल्ली के अर्ध चित्रों से पता लगता है कि गुप्तयुग के पहले दक्षिण भारत की वेश-भूषा अमरावती के आयी वेश-भूषा से बहुत भिन्न न थी। उच्च पदस्थ लोग घुटने तक की धोती और चूड़ी से निकलता हुआ कमरबंद पहनते थे। एक जगह एक राजकुमार चुनी धोती, पेटी कमरबंद और शीर्षपट्ट युक्त पगड़ी पहने है। घर में भी लोग कमरबंद पहनते थे। युद्ध-यात्रा के समय सिपाही अपनी धोती कमरबंद से खोंस लेते थे। अक्सर सिपाही धोती, कमरबंद अथवा पगड़ी, कंचुक और धोती पहनते थे। अक्सर लोग लांगदार धोती पहनते थे। पगड़ी स्थिर रखने के लिए पीछे कभी-कभी चौपतिया कोंढा लगा होता था। ब्राह्मण धोती और वैकक्ष्य और प्रतिहारी कंचुक, ऊंची टोपी और वैकक्ष्य पहरते थे। गोल्ली में एक जगह एक स्त्री टोपी पहने दिखलायी गयी है।

गुप्तयुग की मूर्ति कला में रस और आध्यात्मिकता को प्रोत्साहन देने से उसमें यथार्थवादिता की कमी आ गयी है। उसमें वेश-भूषा का चित्रण रूढ़िगत आधारों पर हुआ है, इसलिए इस युग की मूर्तियों का महत्व वेश-भूषा के इतिहास के लिए कम है; पर इस कमी को अजंटा के भित्ति चित्र पूरा करते हैं। सिक्कों से भी हम तत्कालीन वेश-भूषा का सुन्दर चित्र पाते हैं। अजंटा के चित्रों पर सिक्कों से मिली वेश भूषा से हमें पता चलता है कि भारतवर्ष मध्य एशिया, चीन और ईरान में आपस के सांस्कृतिक और व्यापारिक संबंध के कारण इस देश में बहुत से विदेशी वस्त्र भी ग्रहण कर लिये गये।

अजंटा के भित्ति-चित्रों में तो बोधिसत्व धोती, चादर, और मुकुट पहने दिखाये गये हैं, पर सिक्कों पर अंकित राजे तो धोती, दुपट्टा, कंचुक, पाजामा, पगड़ी, टोपी और जूते पहने दिखाये गये हैं। लगता तो यह है कि बोधिसत्वों की वेश-भूषा रूढ़िगत है और सिक्कों पर राजाओं की वेश-भूषा यथार्थ है। सिक्कों पर गुप्त राजे अधबहियां चाकदार और कामदार कोट, चूड़ीदार पाजामा और पूरे बूट पहनते थे। यह कोट कभी-कभी पूरी और ढीली आस्तीन वाला होता था और उसके साथ बटनदार बूट होता था। अधबहियां कंचुक कभी-कभी जांघियों के साथ पहना जाता था। राजे अक्सर कंचुक, कमरबंद, जांघिया और शीर्षपट्ट युक्त पगड़ी पहनते थे। कभी-कभी वे तुकमेकदार कोट, ब्रीचेस और खपुसा किस्म के जूते पहनते थे। आराम के समय राजे धोती और टोपी पहनते थे। चन्द्रगुप्त एक जगह कंचुक और कमरबंद और कहीं-कहीं जांघिया और कमरबन्द पहरे दिखलाये गये हैं। शिकार के समय राजा कंचुक, कमरबंद, धोती और खौद पहने दिखाये गये हैं। घोड़े पर सवार राजा धोती और कमरबंद और कभी-कभी कमरबंद, कंचुक और धोती पहनते थे। कभी-कभी उनके गले में दुपट्टा भी पड़ा होता था। कुमारगुप्त के युग में एक जातीय पहरावे का आविष्कार हुआ, जिसमें से पाजामा और पूरे बूट निकाल दिये गये। साधारणतः राजे चाकदार कंचुक और धोती पहनते थे और उनके साथ कमरबंद भी। सिर प्रायः खुला रहता था। कभी-कभी वे टोपी भी पहनते थे।

अजंटा के भित्ति चित्रों में राजे और सामंत प्रायः धोती और वैकक्ष्य पहनते हैं; पर उनके मुकुट रत्न जटित और भारी भरकम होते थे। एक जगह राजा धारीदार धोती, क़ब्बेदार कमरबंद और सिर में पेंच युक्त पगड़ी पहने हैं। एक दूसरी जगह उनके पहरावे में धोती, पेटी, पटका, दुपट्टा और टोपी है। एक तीसरी जगह वे चारखानेदार धोती और धातु निर्मित टोपी पहने है। एक जगह राजा कूर्पासक, कमरबंद और टोपी पहने हैं। दूसरी जगह राजा कूर्पासक, कमरबंद, धोती, वैकक्ष्य, करधनी और मुकुट पहने

है। एक चित्र में घोड़े पर सवार राजा कंचुक, धोती और कमरबंद पहने हैं । बाग के एक चित्र में राजे धारीदार धोती और चौखूटा मुकुट, तथा धोती और तिकोना मुकुट पहने दिखाये गये है। राजे अक्सर दुपट्टे नहीं पहनते थे और उनकी धोती प्रायः धारीदार होती थी । एक जगह अवलोकितेश्वर धारीदार धोती तिकोना मुकुट और करधनी पहने दिखलाये गये हैं। एक जगह राजा चारखानेदार धोती, दुपट्टा और आकर्षक गहने पहने हैं। एक जगह वे धारीदार धोती, मुकुट और कमरबंद पहने हैं। एक जगह उनकी वेश भूषा में मुकुट, धोती, कमरबंद और करधनी है। एक ईरानी राजा कामदार लंबा कोट, गोल टोपी और बूट पहने दिखाया गया है ।

अजंटा के भित्ति चित्रों में निम्न लिखित भांति के मुकुट पाये जाते है---रत्न जटित लंबोतरा मुकुट, चोटीदार. मुकुट, मोती की लड़ों से अलंकृत लंबोतरा मुकुट, वृत्तों और अर्ध चंद्रों से अलंकृत तिरछा मुकुट, पुष्पों से अलंकृत त्रिभुजाकार मुकुट, कलंगेदार मुकुट, तख्तियों से मंडित त्रिभुजाकार मुकुट, चिपकी टोपी जैसा मुकुट, ऊंची टोपी जैसा मुकुट ।

अजंटा के भित्ति चित्रों में घुड़सवार अक्सर पूरे बांह वाले कंचुक पहने दिखलाये गये है। कभी-कभी वे कूर्पासक और जांघिया भी पहनते थे। ईरानी सवार तिकोने गले वाले अंगे और ऊंची टोपियां पहने दिखाये गये हैं। कभी-कभी चाकदार कंचुक पर एक दूसरा वस्त्र होता था । उनके कंचुक कभी-कभी चौड़े कालर के भी होते थे। बाग के एक गुफा चित्र में एक सवारों का गरोह तरह-तरह के कंचुक पहरे दिखलाया गया है।

हाथीवान बहुधा कूर्पासक और जांघिया पहनते थे, पर कभी-कभी लंबे कंचुक भी पहन लेते थे।

पैदल सिपाही धोतियां पहनते थे और कभी-कभी पट्टियों से सिर के बाल बांध लेते थे। कभी कभी वे कूर्पासक और सिर पर रूमाल बांधते थे । एक जगह एक असिवाहक और कुंतलवाहक (आ० ३२३) कंचुक और कमरबंद पहने है।

युद्ध भूमि में राजे और सामंत कूर्पासक और पगड़ियां पहनते थे। शिकारी और बहेलिये छोटी धोतियां पहनते थे । एक जगह एक शिकारी चप्पल पहरे दिखाया गया है । एक जगह एक जंगली लंगोटी पहरे और धनुषबाण लिये दिखलाया गया है । एक जगह एक सँपेरा चारखानेदार धोती पहरे है । एक दूसरी जगह ऐसी ही धारीदार धोती पर तीर के फल बने हैं ।

अच्छे श्रेणी के शिकारी कंचुक और पाजामे पहनते थे । कंचुकीगण पगड़ी, कंचुक और दुपट्टे पहनते थे । मंत्रिगण कंचुक,-चादर और कूर्पासक पहरते थे। सामंत और राजकुमारों की वेश-भूषा सादी होती थी। वे कभी-कभी जांघिया के ऊपर धोती पहरते थे। धोती उनकी चुनी होती थी और उस पर बंटा कमरबंद होता था । कभी-कभी धोती और पगड़ी पहनने का भी रवाज था। धोती खूब चुन और सजा कर पहनने की प्रथा थी । कभी-कभी लोग धारीदार धोती और चक्करदार पगड़ी पहनते थे। धोती पर भारी पेटी और ढीले कमरबंद भी पहरे जाते थे।

गायक और वादक टोपी, कंचुक और पाजामा पहनते थे और कभी-कभी कंचुक और धोती । वे तरह तरह की टोपियां भी पहनते थे । वे धारीदार धोतियां भी पहनते थे । एक जगह एक वादक धोती, कमरबंद और पेटी पहरे है ।

द्वारपाल भी अपने कपड़े संभाल कर पहरते थे, उनकी धोती चुनी हुई और कमरबंद खूब सजा हुआ होता था। वे कंचुक और चौड़ी पेटी भी पहरते थे और कभी कभी फूलदार कोट और टोपी। एक जगह एक द्वारपाल बूट और कंचुक पहरे दिखाया गया है।

राजभृत्य सिले कपड़े अथवा धोती पहरते थे। इनके कंचुकों पर कभी कभी नक्काशियां बनी होती थीं। युद्ध के अवसर पर राजभृत्य अक्सर कूर्पासक, खौद और छोटी धोती पहरता था। नहलाने वाले नौकर लाल रंग की धोती पहरते थे और उनके सर रूमाल से ढके होते थे।

साधारण जन धोती, दुपट्टा और पगड़ी पहनते थे। ब्राह्मण धोती, दुपट्टा, कंटाप और वैकक्ष्य पहनते थे। विदूषक कंचुक, बूट, धोती, दुपट्टा और टोपियां पहनते थे। एक जगह मदारी चारखानेदार धोती और दुपट्टा पहने दिखाया गया है।

अजंटा के भित्ति चित्रों में हम मध्य एशिया, ईरान और सिरिया के लोगों की वेश-भूषा के चित्रण भी पाते हैं। इन देशों से इस युग में भारत का व्यापारिक और सांस्कृतिक संबंध था। इनकी वेश-भूषा का भारतीय वेश-भूषा पर भी प्रभाव पड़ा, और विशेषकर दास दासियां सिले कपड़े पहनने लगे।

मध्य एशिया अथवा ईरानी लोग कसीदे के कामदार कंचुक और कमरबंद पहनते थे। कभी-कभी वे कंचुक के साथ पगड़ी भी पहनते थे। ईरानी फीतेदार गोल टोपी, पाजामे, मोजे और रूमाल पहने दिखाये गये हैं।

अजंटा में एक जगह एक राज दरबार में प्रणिधिवर्ग का समागम दिखलाया गया है। विद्वानों का अब तक विश्वास था कि इस दृश्य का संबंध खुसरो द्वारा पुलकेशी के पास भेजे गये प्रणिधि वर्ग से है; पर वास्तव में यह दृश्य वेस्सन्तर जातक का है। यह हो सकता है कि इस दृश्य का अंकन किसी विदेशी प्रणिधिवर्ग अथवा व्यापारियों के किसी भारतीय राज्य दरबार में आने के दृश्य को लेकर किया गया हो। कम से कम अजंटा के इस दृश्य में तो ये सिरिया के व्यापारी मालूम पड़ते हैं जो राजा को अपनी भेंट देने आये हैं। ये धारीदार कमीज, कोट, पाजामे, नोकदार बूट और टोपियां पहरे दिखलाये गये हैं। सिरिया में ड्यूरा युरोपास की खुदाई से मिले कुछ भित्ति चित्रों में भी ऐसी ही पोशाक का अंकन हुआ है और इसी के आधार पर हम कह सकते हैं कि अजंटा के प्रणिधिवर्ग वाले दृश्य के विदेशी सिरिया के हैं।

अजंटा के विदेशी तरह-तरह की टोपियां और खौद पहने भी दिखलाये गये हैं।

अजंटा के चित्रों में बच्चे, धोती, बालबंद, पटके, जांघिया, कंचुक, बूट, टोपी, छन्नवीर और कमर पेटी पहने दिखलाये गये हैं।

गुप्तयुग के सिक्कों में स्त्रियां साड़ियां, कंचुक, स्तनपट्ट, चादर और कूर्पासक पहने दिखलायी गई हैं। कभी-कभी वे जालीदार टोपी भी पहनती थीं। एक जगह एक स्त्री कुरता और घांघरा पहरे दिखायी गयी है।

अजंटा के चित्रों में रानियां साड़ी और घघरी पहनती हैं। साड़ी बहुधा धारीदार होती है। कभी-कभी वे चोली पहनती थीं। एक जगह रानी चोली और कामदार घघरी पहने है, और एक जगह कंचुक और स्तनपट्ट भी पहना गया है। घघरी गोटदार भी होती थी। चोली के साथ छोटी घघरी भी पहनी जाती थी।

अजंटा के चित्रों में हम दास-दासियों की वेश-भूषा में काफी चटक-मटक पाते हैं। मामूली तौर से दासियां साड़ी, ढीला कमरबंद और कमरपेटी पहनती थीं, लेकिन बहुत सी दासियां घघरियां और कंचुक भी पहनती थीं। इन के सिले वस्त्रों में कंचुक, कंचुक के ऊपर जाकेट, बढावदार आगे वाला कंचुक, फ्राकनुमा चोली, हंसदुकूल का बना पूरे बांह का कंचुक, विचित्र तरह की टोपी के साथ कंचुक, कामदार टोपी और कुलाहदार टोपी मुख्य हैं।

विदेशी नस्ल की दासियाँ, टोपी, कसीदेदार कंचुक झालरदार लहँगे पहनतीं थीं। एक दूसरी जगह एक विदेशी दासी कुब्बेदार टोपी और कंचुक पहने है। एक जगह कंचुक के साथ रूमाल है। एक जगह उसकी टोपी तरंगेदार है। एक जगह एक दासी जाकेट और खोदनुमा टोपी पहने है।

दासियां मोती के गोटों से सजी चोली भी पहनती थीं। एक जगह एक दासी कंचुक, चोली और घघरी पहने है। एक पंखा हांकने वाली स्त्री स्तनपट्ट और घघरी पहरे दिखलायी गयी है। दासियां अकसर अधबहियां कंचुक भी पहनती थीं। दासियां घघरी के साथ वैकक्ष्य भी पहनतीं थीं। वे बिना कंधों और बाहों वाला कंचुक और छपहली टोपी भी पहनतीं थीं। उनकी टोपी कभी-कभी चौपहली और धारदार भी होती थी। एक जगह एक मध्य वर्ग की स्त्री अथवा दासी बिना बांह की चोली पहरे है।

बाग के एक भित्ति-चित्र में हाथी पर सवार स्त्रियां जांघिया, चोली और घघरी पहने हैं।

अजंटा के भित्ति चित्रों में रानियां मुकुट पहने दिखलाई गयी हैं। दासियां कभी-कभी टोपी पहनती हैं। एक जगह एक स्त्री छपे रूमाल से अपना सिर ढके है। एक जगह टोपी झालरदार है।

जंगली स्त्रियां पत्तियों की बनी घघरी पहनतीं थीं। ग्रामीण स्त्रियां साड़ी पहने बतलायी गयी है।

नाचने बजाने वाली स्त्रियां धोती वैकक्ष्य और चोली, लंबा कंचुक जिसके ऊपर एप्रन जैसा वस्त्र होता था, घाघरा अथवा घघरी पहनतीं थीं। बाग के चित्रों में नर्त्तकी चाकदार कंचुक, या जामा और रूमाल पहनती है। एक बजाने वाली के कंधे पर रूमाल है। वे घाघरा और अधबहिया कंचुक भी पहनती हैं।

अजंटा से आये कपड़ों पर निम्नलिखित नक्काशियां मिलती हैं: पट्टियां और फूल पत्तियां, और फूल की पंखड़ियां, फुल्ले, खिले फूल, पेंचक, धारियां और तीर के फल, पत्तियां, छोटे फूल इत्यादि।

प्रागैतिहासिक काल से सातवीं सदी तक की वेश-भूषाओं और कपड़ों के वर्णन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारतीय वेश-भूषा के इतिहास में भी एक विकास क्रम है, जिसके अनुसार समय-समय पर इसमें लोगों के रुचि के अनुसार और विदेशियों के संसर्ग से परिवर्तन होते आये। हमारा देश उष्ण प्रधान है और इसीलिए यहां सिले वस्त्रों को उतनी प्रधानता नहीं मिली जितनी कि ठंढे देशों में। कपड़े सिले न होने से उनमें एक सादगी है, पर मनुष्य की रुचि सर्वदा से बनाव चुनाव की ओर अधिक रही है और इसी लिए हम इन सादे वस्त्रों में भी बनाव चुनाव अधिक पाते हैं। शिरोवस्त्र और पगड़ियों के इतने प्रकार तो शायद ही और किसी देश में और किसी काल में मिलते हों। सारांश यह है कि अगर वेश-भूषा के पैमाने से भी हम भारतीय सभ्यता को जांचें, तो भी वह किसी प्राचीन सभ्यता से कम नहीं रहेगी।

अन्त में मै उन मित्रों का आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे इस कठिन विषय को आगे बढ़ाने में सदा प्रोत्साहित किया। इन मित्रों में डा० वासुदेवशरण मुख्य हैं। पर यह पुस्तक अधूरी ही रह जाती, अगर मेरे चित्रकार मित्रों ने मेरा हाथ न बंटाया होता। प्रारम्भ में श्री हरिहरलाल मेढ़ और श्री जगन्नाथ अहिवासी ने मेरी बड़ी सहायता की। बाद में श्री राम सूबेदार ने आकृतियों के बनाने का काम संभाला, बिना इनकी मदद के शायद यह काम ही न कर पाता। एतदर्थ में इन मित्रों को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। प्रेस कापी तैयार करने में मेरी पत्नी श्रीमती शान्ति देवी ने पूरा हाथ बंटाया, इसके लिए मैं उन्हें क्या धन्यवाद दूं।

कसीदे का काम

पेशस्[६९] शब्द का व्यवहार कारचोबी के काम वाले वस्त्रों के लिए हुआ है। इसमें कढ़े हुए अलंकार काफी फेरदार और कलात्मक होते थे[७०]। नृतु को पेशांसि पहने बतलाने से[७१] शायद कारचोबी.पेशवाज से तात्पर्य हो। कसीदा काढ़ना या उससे पेशांसि अथवा पेशवाज बनाना स्त्रियों का काम था। यजुर्वेद में पुरुषमेध में बलि देने जाने वालों में पेशकारी का नाम आया है[७२]। ऐतरेय ब्राह्मण[७३] में निविदों को ऋचाओं का कसीदा अथवा पेशस् कहा गया है। यहाँ जो उपमा दी गई है उससे कसीदे के बारे में कुछ प्रकाश पड़ता है। इस तरह का काम (पेशस्) ताने के ऊपरी भाग (प्रवयण) तथा मध्य और निचले भागों (अवप्रज्जन) में किया जाता था। पेशस् के इस विवरण से पता चलता है कि अलंकार कुछ बुने भी जाते थे और कुछ काढ़े भी। अगर हमारा यह अनुमान ठीक है तो कौटिल्य में वर्णित खचित नामक दुशाले जो सूचीवान कर्म से बनाये जाते थे और जिन्हें कश्मीर वाले अब भी तीलीकार और अम्लीकार का संयोग बताते हैं, और पेशस् एक थे। बृहदारण्यक उपनिषद्[७४] के एक उल्लेख से पता चलता है कि पेशकारी एक अलंकार को काढ़ कर जब दूसरा काढ़ती थी तो वह पहले अलंकार से भी अधिक सुन्दर उतरता था।

वैदिक आर्यों का पहरावा

ऐसा मालूम पड़ता है कि वैदिक आर्य तीन कपड़े पहिनते थे यथा नीवि[७५] (लंगोटी), वासस् और अधिवास[७६] जो शायद आधुनिक दुपट्टे या चादर का प्रारंभिक रूप रहा हो। शतपथ[७७] में दिये हुए यज्ञ काल के पहरावे से उपरोक्त पहरावों का मेल खाता है।

नीवि

नीवि या परिधान[७८] शायद तहमत या लुंगी के ऐसा कोई वस्त्र था जिसे स्त्री और पुरुष दोनों समान रूप से व्यवहार में लाते थे। नीवि की व्युत्पत्ति नि अर्थात् नीचे और व्ये

६९—ऋ० वे०, ४।३६।७
७०—ऋ० वे०, २।३।६
७१—ऋ० वे०, १।९२।४-५
७२—वाजसनेयी सं०, ३०।९
७३—ऐतरेय ब्रा०, ३।१०
७४—बृ० उ० ४।४।४ तद्यथा पेशकारी पेशसो मात्रामुपादायान्यतरं कल्याणतरं रूपं तनुत।
७५—अ० वे०, ८।२।१६; १२।२।५०
७६—ऋ० वे०, १।१४०।९; १०।५।४
७७—शतपथ ब्रा०, ५।३।५।२०
७८—बृहदारण्यक उप०, ६।१।१०

ढकना या आच्छादित करना से की गयी है । लेकिन डा० सरकार इसे चौड़ा बुना हुआ किनारा मानते है और इस शब्द की व्युत्पत्ति तामिल नइ से जिसके अर्थ बुनने के होते हैं करते है[७९]। जब तक वैदिक काल की कोई मूर्ति हमें नहीं मिलती तब तक हम यह ठीक तौर से नहीं कह सकते कि वैदिक नीवि का क्या रूप था। लेकिन सिंधु सभ्यता की मुद्राओं और मृण्मूर्तियों में जो पोशाक दिखलायी गयी है वह तो केवल एक कपड़े का सकरा सा टुकड़ा है जिसे स्त्री और पुरुष दोनों लपेट लिया करते थे । इस तरह के वस्त्र पहनने का रिवाज सिंधु सभ्यता की समकालीन सभ्यताओं में भी था। हो सकता है कि वैदिक युग में देश का यह पुराना पहरावा बच गया हो और कालांतर में आर्यो द्वारा अपना लिया गया हो।

प्रघात और वातपान

नीवि से प्रघात लटका करता था। इसका एक बेबुना छोर फूंदनों से सजा होता था और दूसरा सादा छोर एक छोटी झालर से जिसे तूष कहते थे[८०]। नीवि में वातपान[८१] भी होता था । यह शायद कपड़े में लंबाई वाला किनारा था जो हवा के झटके से सूत को बाहर निकलने से रोकता था[८२]।

कपड़े पहनने के ढंग

वेदों से जो कुछ भी हमें वस्त्रों के उल्लेख मिलते है उनसे यह ठीक ठीक पता नहीं चलता कि वैदिक युग में कपड़े किस ढंग से पहने जाते थे। इस बात का उल्लेख है कि वासस्[८३] बांधा जाता था । नीविंक्रु[८४] से पता चलता है कि शायद लोग नीवि इस ढंग से बांधते थे जिससे उसमें गांठें और सिलवटें पड़ें जो देखने में सुन्दर मालूम पड़ती हैं।

शरीर के ऊपर पहनने के वस्त्र

पुरुष और स्त्रियां अपने शरीर के ऊपरी हिस्से को ढांकने के लिए उपवसन पर्याणहन, प्रतिधि, द्रापि और अत्क पहनती थीं। उपवसन[८५] जैसा कि वधू के वस्त्रों के सम्बन्ध में इसके उल्लेख से पता लगता है, दुपट्टे की तरह कोई वस्त्र था। मुद्गलानी के उपवसन[८६] के हवा

७९—सरकार वही, पृ० ६३, फु० नो० ६
८०—तै० सं०, १।८।१।१
८१—तै० सं०, ६।१।१
८२—सरकार, वही, पृ० ६३
८३—अ० वे०, १४।२।७०
८४—अ० वे०, ८।२।१६
८५—अ० वे०, १४।२।४१९
८६—ऋ० वे०, १०।१०२।२

में फड़कने के उल्लेख से यह बोध होता है कि यह उत्तरीय जैसा कोई वस्त्र था। डा० सरकार का अनुमान है पर्याणहन शायद लंबी-चौड़ी हल्की चादर की तरह कोई वस्त्र था[८७]। अधिवास राजाओं का ऊपरी वस्त्र था[८८]। प्रतिधि[८९] एक या दो कपड़े की छीरों से बना स्तनपट्ट था जिसे विवाह के समय कन्या पहनती थी। शायद यह सीधे अथवा तिरछे ढंग से स्तनों को ढांकने के लिए पहना जाता था।

वैदिक साहित्य में सिले कपड़े

इन बेसिले कपड़ों के अतिरिक्त वैदिक साहित्य में सिले कपड़ों के भी उल्लेख हैं। अत्क[९०] शब्द का व्यवहार पहनने के कपड़े के अर्थ में ऋग्वेद में आया है, और इसका यही अर्थ रोथ, लुडविग्, ग्रासमान और त्सिमर ने ग्रहण किया है। अत्क केवल पुरुष पहनते थे और यह लंबा[९१], पूरा शरीर ढकने वाला[९२], चपक कर बैठने वाला[९३], चमकीला[९४], सुन्दर[९५] कारचोबी किया हुआ अथवा सोने के तार से बुना हुआ[९६] एक वस्त्र था। उपरोक्त विवरण से अनुमान किया जा सकता है कि अचकन या कुरते के आकार का यह कोई वस्त्र था। वैदिक युग के बाद साहित्य में फिर इसका उल्लेख नहीं आता। द्रापि चपक कर बैठने वाला[९७], कारचोबी किया हुआ[९८] कोटनुमा[९९] कपड़ा था, जिसे पुरुष[१००] और स्त्री[१०१] दोनों पहनते थे।

उष्णीष या पगड़ी

उष्णीष शब्द का पगड़ी के अर्थ में प्रयोग सब से पहले अथर्ववेद[१०२] और पञ्चविंश

८७—सरकार, वही, पृ० ६६
८८—शतपथ ब्रा०, ५।४।४।३
८९—अ० वे०, १४।१।७
९०—ऋ० वे०, १।९५।७; ४।१८।५
९१—ऋ० वे०, २।३५।१४
९२—ऋ० वे०, ५।७४।५
९३—ऋ० वे०, ६।२९।३
९४—ऋ० वे०, ६।२९।३
९५—ऋ० वे०, ९।१०७।१३
९६—ऋ० वे०, १।१२२।२; ५।५५।६
९७—ऋ० वे०, १।११६।१०
९८—ऋ० वे०, १।२५।१३
९९—अ० वे०, १३।३।१
१००—ऋ० वे०, ९।१००।९
१०१—अ० वे०, ५।७।१०
१०२—अ० वे०, १५।२।१

ब्राह्मण के[१०३] व्रात्य प्रकरण में आया है। ऐतरेय[१०४] और शतपथ मे[१०५] इस शब्द का प्रयोग राजाओं और व्रात्यों के पहरावों के संबध में आया है। राजे वाजपेय[१०६] और राजसूय[१०७] के अवसरों पर उष्णीष धारण करते थे। इन्द्राणी सम्राज्ञी की हैसियत से उष्णीष पहनती थी[१०८] व्रात्यों का उष्णीष सफेद होता था। सूत्रों के अनुसार उष्णीष में कई फेटे होते थे, और व जरा एक तरफ झुका कर बांधा जाता था[१०९]। यज्ञ के अवसर पर उष्णीष के दोनों छोर आगे लाकर उसकी तहों में खोंस दिये जाते थे[११०]। लगता है राजाओं के उष्णीष के छोर बाहर लटके रहते थे।

जूते

प्राचीन संहिताओं में जूतों का कहीं उल्लेख नहीं आता। ऋग्वेद में आये वटूरिणापाद[१११] से शायद लड़ाई मे पैरों की रक्षा के लिए किसी आवरण से मतलब हो। पत्-संगिनी[११२] का मतलब डा० सरकार के अनुसार[११३] पैर मे बांधी जाने वाली चट्टी से है जिसका व्यवहार पैदल सिपाही करते थे। उपानह् का सर्वप्रथम उल्लेख यजुर्वेद[११४] अथर्ववेद[११५] और ब्राह्मणों में[११६] आया है। व्रात्य इसका व्यवहार करते थे[११७]। यज्ञ के अवसर पर पहनने के जूते सूअर के चमड़े से बनते थे[११८]।

यज्ञ के अवसर पर नये कपड़े पहनने की प्रथा

यज्ञ के अवसर पर नये वस्त्र धारण करने की प्रथा थी। शतपथ के अनुसार[११९] यह

१०३—पं० ब्रा०, १७।१।१४
१०४—ऐतरेय ब्रा०, ६।१
१०५—श० ब्रा०, ३।३।२।३
१०६—श० ब्रा०, ५।३।५।२३
१०७—मैत्रायणी सं०, ४।४।३
१०८—श० ब्रा०, ५।३।५।२३
१०९—कात्यायन श्रौ० सू०, २१।४
११०—श० ब्रा०, ३।५।२० इत्यादि
१११—ऋ० वे०, १।१३३।२
११२—अ० वे०, ५।२१।१०
११३—सरकार, वही, पृ० ६९
११४—तै० सं०, ५।४।४।४
११५—अ० वे०, २०।१३३।४
११६—श० ब्रा०, ५।४।३।१९
११७—पञ्च० ब्रा०, १७।१४-१६
११८—श० ब्रा०, ५।४।३।१९
११९—श० ब्रा०, ३।१।२।१९

वस्त्र शुद्ध गिना जाता था । यज्ञ का वस्त्र बिना कुंदी किया हुआ (आहत) होता था । प्रति प्रस्थातृ इसलिए इसे अच्छी तरह पीटता था कि स्त्रियों द्वारा कातने (आकृणति) और बुनने (वयति) में जो दोष वस्त्र में आ गये हों वे इस क्रिया से निकल जायं और वस्त्र यज्ञ के लिए शुद्ध हो जाय ।

यज्ञवस्त्रों में देवताओं का निवास

शतपथ के एक मंत्र से पता चलता है[१२०] कि यज्ञ के कपड़ों के भिन्न भिन्न भागों पर अलग अलग देवताओं के अधिकार होने का लोगों को विश्वास था । इस उल्लेख में कपड़े की बुनाई के बहुत से शब्द प्रसंगवश आ गये हैं। मंत्र के अनुसार बाने के देवता अग्नि हैं (अग्नेः पर्यासो), ताने का वायु (वायोः अनुखादो)। नीवि के पितृ, प्रघात के नाग, सूत (तन्तवः) के विश्वेदेवा, तथा आरोक (अलंकार) के अधिकारी नक्षत्र हैं । सब देवताओं के अधिकार होने से ही वस्त्र यजमान के योग्य होता है। तैत्तिरीय संहिता[१२१] के एक मंत्र के अनुसार कपड़े के झालरदार किनारे (तूषाधानं) पर अग्नि का अधिकार होता था, वायु का वातपान पर तथा ताने (प्राचीनतान) और बाने (ओतु) पर क्रमशः आदित्यों और विश्वेदेवा के अधिकार होते थे । ऊपर के उद्धरणों से पता चलता है कि यज्ञ कार्य में आये हुए वस्त्रों की पवित्रता का विशेष ध्यान रखना पड़ता था। वस्त्र के भिन्न भिन्न भागों में देवताओं के वास से शायद यह तात्पर्य हो कि इनसे पूत होने पर वस्त्रों पर न तो जादू टोने चल सकते थे और न उनमें भूतप्रेतों का ही प्रवेश हो सकता था।

भारतीय राजाओं की वेश-भूषा

यज्ञ विधि में जो सोम के कपड़ों का वर्णन शतपथ[१२२] में आया है। वही पहरावा तत्कालीन भारतीय राजाओं का था। पूरी पोशाक में उपनहन (शायद धोती की तरह कोई कपड़ा अथवा जूता), पर्याणहन (चादर) और पगड़ी (उष्णीष) होते थे। पगड़ी न होने पर दो तीन अंगुल चौड़ी पट्टी से भी काम चल जा सकता था । राजसूय यज्ञ के समय तार्प्य पहनने के बाद राजा एक सफेद ऊनी कपड़ा (पाण्ड्व) पहनता था। इसके बाद वह एक चादर (अधिवास) से अपने को ढकता था और इसके बाद उष्णीष के छोर सामने की तह में खोंस लेता था[१२३]। उष्णीष ठीक ठीक कैसे बांधा जाता था इसके संबंध में टीकाकारों का एक मत नहीं है। एगलिंग[१२४] का अनुमान है कि सिर पर पगड़ी की एक लपेट बांधी जाती थी और उसके दोनों

१२०—श० ब्रा०, ३।१।२।१८

१२१—तै० सं०, ४।१।१

१२२—शतपथ ब्रा०, ३।३।२।३

१२३—शतपथ ब्रा०, ५।३।५।२०-२४

१२४—शतपथ ब्रा०, ३ भा०, पृ० ८६, फु० नो० २

छोर कंधों पर यज्ञोपवीत की तरह लटकते रहते थे और बाद में वे नाभि के पास शायद धोती में खोंस लिये जाते थे । इस यज्ञ में वस्त्र पहिनने की क्रिया लाक्षणिक रीति से गर्भ के आवरणों और प्रजनन की क्रियाओं के अभिव्यंजना के रूप में थी [१२५] । कुछ यज्ञों मे नीवि की चुन्नट खोल दी जाती थी[१२६] (नीविमुद्वृध्य) । ऐसा क्यों किया जाता था यहँ तो ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता पर इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि नीवि में चूनन डालने की प्रथा थी ।

राजवस्त्रों के उपरोक्त वर्णन से यह पता चलता है कि शतपथ के युग में राजे धोती, चादर और उष्णीष पहनते थे लेकिन इन वस्त्रों के पहनने का क्या ढंग था यह कहना सरल नहीं है ।

यज्ञ के अवसर पर स्त्रियों की वेश-भूषा

यज्ञ के समय स्त्रियों कौ वेश-भूषा का तो पूरा वर्णन नहीं मिला पर उनकी पोशाक में रसना का एक विशेष महत्व होता था । यज्ञ के अवसर पर अध्वर्यु यजमान की पत्नी की कमर में एक रस्सी बांधता था (योक्त्रेण सन्नह्यति) [१२७]। शतपथ के अनुसार इस क्रिया का लाक्षणिक अर्थ यह था कि स्त्री के नाभि से नीचे शरीर का भाग अपवित्र माना जाता था। यह रसना अधिवास के ऊपर बांधी जाती थी । ऐसा करने से स्त्री में पवित्रता कैसे आ जाती थी इसे शतपथ[१२८] में बहुत घुमा फिरा कर समझाया गया है । शतपथ के अनुसार वस्त्र वनस्पति के प्रतीक हैं और रस्सी वरुणपाश की प्रतीक है और इसीलिए स्त्री की रक्षा के लिए उसके शरीर और वरुणपाश के बीच में औषधि यानी वस्त्र रक्खे गये हैं । सम्भवत: इस मंत्र में रसना के जादू भरे गुण और वस्त्रों के रक्षक शक्ति की ओर इशारा किया गया है ।

करधनी

करधनी को रसना कहा गया है [१२९]। यज्ञ के समय वरुण के अस्त्र होने की वजह से इसमें गांठ नहीं लगायी जाती थी । इसका कारण वरुण के अस्त्र के साथ छेड़खानी करने के नतीजे का डर हो सकता है । इससे यह भी पता चलता है कि साधारणत: रसना में गांठें लगती थीं ।

१२५—शत० ब्रा०, ३ भा०, पृ० ८३, फु० नो० ३
१२६—शत० ब्रा०, २।४।२।२४
१२७—शत० ब्रा०, १।३।१।१३
१२८—शत० ब्रा०, १।३।१।१३-१४
१२९—श० ब्रा०, १।३।१।१५

रेशमी चंडातक

वाजपेय यज्ञ के अवसर पर[१३०] यजमान की पत्नी को कमर में लपेटे हुए दीक्षित वस्त्र के ऊपर कुश का बना हुआ चंडातक पहनना लाजमी था । यहां चंडातक और कुश के अर्थ जानने जरूरी हैं । सायण के अनुसार कुश शब्द कुश अथवा रेशम का द्योतक है और चंडातक रेशमी होता था (क्रिमिकोशविकारभूतवासः) । अगर कुश का अर्थ रेशमी वस्त्र ठीक है तो ई० पू० ७ वी या ८ वीं शताब्दी में भी इस देश में रेशम का व्यवहार प्रचलित हो चुका था । ऐसा होना कुछ असंभव भी नहीं है क्योंकि पाणिनि के समय (ई० पू० ५ वी शताब्दी) में तो रेशम चल चुका था । चंडातक और चलन एक ही होते थे । चंडातक को अर्धोरुक भी कहा गया है जो आधी जांघों तक आने वाला घांघरा जैसा कोई वस्त्र था और जिसे नर्तकियां पहना करती थी । लगता है कि अर्धोरुक जांघिया या घघरी की तरह कोई वस्त्र था । इसका उल्लेख भी इस बात का प्रमाण है कि वैदिक युग में सिले हुए वस्त्रों का व्यवहार होता था ।

व्रात्यों की वेश-भूषा

अभी यह तो ठीक ठीक से कहा नहीं जा सकता कि व्रात्य आर्यों के समाज से बहिष्कृत जन थे या इस देश के आदिवासी जिनके धार्मिक और सामाजिक विचार आर्यों से भिन्न थे । पंचविंश ब्राह्मण में प्रायश्चित के बाद इनके पुनः आर्य संस्कृति में लाये जाने का उल्लेख है । इसी प्रकरण में व्रात्यों के वस्त्रों पर भी कुछ प्रकाश डाला गया है। व्रात्यों के गृहपति उष्णीष, काली गोंट वाला कपड़ा (कृष्णसंवासः) बकरे की एक सफेद और दूसरी काली खाल (कृष्णावलक्षे अजिने) पहनते थे । इनके पास चाबुक (प्रतोद) बिना बाण वाले धनुष (शायद नावक के तीर या ब्लो पाइप से मतलब हो) और तख्तों के बने रथ (विपथश्च फलकास्तीर्णः) होते थे। इनके गले में निष्क नाम की मालाएं होती थीं [१३१] । इन गृहपतियों के अनुयायी व्रात्यों के वस्त्रों के किनारे (वलूकान्तानि) लाल होते थे और उनसे निकली छीरें बटी हुई होती थी (दामतूषाणि)। वे जूते पहनते थे और बकरे की दो जुड़ी हुई खाले ओढ़ते थे [१३२] । लाट्यायन श्रौत सूत्र[१३३] में व्रात्यों को लाल उष्णीष, लाल वस्त्र (लोहित वाससो) और कुरते (उरुपोत) पहने बतलाया गया है। व्रात्य अपनी पगड़ी टेढ़ी बांधते थे (तिर्य्यङ नद्धं) [१३४]

१३०—श० ब्रा०, ५।२।१।८
१३१—पंचविंश ब्रा० , १७।१।१४
१३२—वही, १७।१।१५
१३३—ला० श्रौ० सू०, ८।५।८
१३४—वही, ८।६।७

सूत्रों के समय व्रात्यों के वस्त्रों के संबंध में सब आचार्य एक राय नहीं थे। शांडिल्य के[१३५] अनुसार उनके वस्त्र काले न होकर चितकबरे होते थे। गौतम[१३६] के अनुसार उनके वस्त्र सफेद (शुक्ल) होते थे और उनके किनारे काले (कृष्णदशं) होते थे।

उपरोक्त विवरण से पता चलता है कि व्रात्य शायद धोती पगड़ी और दो बकरे की खालें वस्त्र रूप में व्यवहार करते थे। साधारण श्रेणी का व्रात्य शायद लाल किनारे की धोती जिसमें बटी छीरे होती थीं, पगड़ी, दो बकरे की खालें और जूते पहनता था।

१३५—वही, ८।६।१२

१३६—वही, ८।६।१३

तीसरा अध्याय

महाजानपद और शैशुनाग युगों की वेश-भूषा

६४२ ई० पू० में ३२० ई० पू० तक का भारतीय इतिहास षोड़श जनपदों शैशुनागों (६४२-४१३ ई० पू०) और नंदों (४१३-३२२ ई० पू०) का इतिहास है । शैशुनाग वंश में नवीन राजगृह की नींव डालने वाले बिबिसार, श्रेणिक और कुणिक अजातशत्रु बुद्ध और महावीर के समकालीन थे। इस युग के राजनीतिक और सामाजिक इतिहास की प्रचुर सामग्री हमें बौद्ध और जैन साहित्यों तथा धर्मसूत्रों, गृह्यसूत्रों और अष्टाध्यायी से प्राप्त है। इन सब ग्रंथों के कालनिर्णय में भी हमें उसी कठिनाई का सामना करना पड़ता है जिसे हमें वैदिक ग्रंथों के कालनिर्णय मे । फिर भी उनके अध्ययन से हमे पता चलता है कि उनमें वर्णित राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्थाएं मौर्य युग से पूर्व की है । इस युग के ब्राह्मण, जैन, बौद्ध और व्याकरण शास्त्रों में उल्लिखित भारतीय संस्कृति का रूप करीब करीब एक सा है । इसलिए अगर हम इस युग की संस्कृति को षोड़श महाजनपद युग की संस्कृति कहें तो इसमें कोई हरज नहीं है। श्रुत होने से इस युग के ग्रंथ बाद में इकट्ठे करके लिखे गये और संभव है कि बहुत सी बाद की बातों का भी उनमें समावेश हो गया हो, पर आधुनिक ग्रंथानुशीलन की परिपाटी को ध्यान में रखकर अगर हम इन ग्रंथों का अध्ययन करें तो पुराने को नये से अलग करने में हम समर्थ हो सकते है। इस बात को ध्यान में रख कर हमने बौद्ध और जैन ग्रंथों के उन्हीं अंशों को लिया है जो आलोचना की कसौटी पर खरे और प्राचीन उतरते है ।

महाजानपद युग में सभ्यता का विकास

इस युग की सभ्यता का अध्ययन करने से यह पता चलता है कि इस युग में वैदिक युग से भारतीय सभ्यता आगे बढ़ चुकी थी। ग्राम्य सभ्यता से निकलकर भारतीय सभ्यता अब नगरों में केंद्रित होने लगी थी और इसके फलस्वरूप राजगृह, साकेत, वाराणसी, बैशाली और पुष्कलावती ऐसे बड़े बड़े नगर सभ्यता के केन्द्र बन गये थे । परिखा और प्राकारों से परिवेष्टित नगर शत्रुओं के लिए दुर्गम थे। उनकी करीनेदार सड़कें, सजी दुकानें तथा कला.कौशल के कारखानें भारतीय सभ्यता के प्रतीक थे। विचार स्वतंत्रता इस युग की खास देन थी जिसके फलस्वरूप प्राचीन वैदिक धर्म की नींव हिल गयी। इस युग में बहुत सी धातुएं जैसे रांगा, सीसा, चांदी, लोहे और तांबे का खूब व्यवहार होने लगा था । राज प्रासाद और रईसों के एक या कई मंजिलों वाले प्रशस्त गृह ईंट और लकड़ी के बनने लगे

थे। कपास, क्षौम, रेशम, और ऊनी कपड़ों का खूब चलन था । कपड़ों पर कसीदे का काम भी होता था । तरह तरह के बरतन और सज्जा के सामान जैसे कुरसियां, सिंहासन, सेज, शीशे इत्यादि लोग व्यवहार में लाते थे । लोग सोने चांदी के गहने पहनते थे और बहुत से रत्नों का उन्हें पता था ।

बौद्ध और जैन साहित्यों में कारीगरों का सामाजिक स्थान

जातक कथाओं के अनुसार कारीगर अट्ठारह श्रेणियों में विभक्त थे जिनमें बढ़इयों, लुहारों और चितेरों की श्रेणियां भी सम्मिलित थीं। कसीदा काढ़ने वालों (पेसकारसिप्प) और बेंत बीनने वालों (नलकार)[१] को शायद इसलिये नीच काम करने वाला कहा गया है कि ये व्यवसाय देश के आदिम निवासियों के हाथों में थे जिन्हे आर्य हेय दृष्टि से देखते थे। भीमसेन जातक[२] में एक धनुर्धारी ब्राह्मण बुनकर (तंतुवाय) के व्यवसाय को नीच काम कहता है। सुत्तविभंग[३] में भी नलकारशिल्प, कुंभकारशिल्प, पेशकार शिल्प और स्नापित शिल्प को नीच काम कहा गया है । ऊपर के उल्लेखों से यह न समझ लेना चाहिए कि यह विचार बौद्धों के हैं क्योंकि बुद्ध ने तो जात पांत तोड़ने की पूरी व्यवस्था दी है । ये भाव तो केवल तत्कालीन ब्राह्मण आर्य सभ्यता के प्रतीक मात्र हैं जो कहानियों के प्रसंग में बौद्ध साहित्य में भी आ गये हैं। जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति[४] में जो जैनग्रंथ है दरजियों (तुण्णाग), बुनकरों (तंतुवाय) और रेशमी कपड़े बिनने वालों (पट्टगार) को शिल्पार्यो के श्रेणी में रक्खा गया है जिसका मतलब यह है कि अपने शिल्प बल से ये कारीगर आर्यत्व को प्राप्त थे। इसी तरह दौष्यिक, सौत्रिक और कार्पासिक भी कर्म आर्य[५] माने गये हैं ।

इस युग में निम्नलिखित तरह के कपड़ों का व्यवहार होता था :—

कपास—हम दूसरे अध्याय में दिखला चुके है कि वैदिक साहित्य में कपास का सर्व-प्रथम उल्लेख आश्वलायन गृह्य सूत्र में आया है । पाणिनि के सूत्रों में कर्पास का उल्लेख नहीं है लेकिन पाणिनि तूल से, जैसा कि ईषीका तूल[६] से मालूम पड़ता है परिचित थे। तूल का अर्थ बाद में तो कपास होता है लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि पाणिनि के युग में भी इस शब्द के यही अर्थ होते थे । आचारांग सूत्र[७] में भी तूल (तूलकड) का उल्लेख है लेकिन

१—जातक, भा० ४, पृ० २५१
२—जा०, भा० १, पृ० ३५६
३—पाचित्तिय, २।२।१
४—जं० प्र०, सूत्र ७०
५—वही, सूत्र ६९
६—अष्टाध्यायी, ६।३।६५; डा० वासुदेव शरण, यू० पी० हि० सो० ज०, जुलाई १९४०, पृ० १०६
७—आचारांग सूत्र, २।५।१।१

टीकाकार ने इसका अर्थ कपास का बना कपड़ा न करके सेमल की रूई (अर्कतूल) किया है। यह अर्थ संदेहात्मक है क्योंकि सेमल की रूई का सूत इतना कोमल होता है कि उसका बना कपड़ा एक धोब के बाद फट जाता है। लगता है यहां तूल से कपास का ही मतलब है। जातक कथाओं[८] में तो कपास का बहुत उल्लेख हुआ है। तुंडिल जातक[९] में बनारस के आसपास कपास के खेतों का वर्णन है। स्त्रियां कपास के खेतों की रखवारी करती थीं। महाजनक जातक[१०] में इन्हें कप्पासरक्खिका नाम से संबोधन किया गया है। कताई और बुनाई संबंधी उपकरणों के भी कभी कभी उल्लेख आते हैं। रूई धुनने की धनुही (कप्पास-पोथन-धनुक) का उल्लेख आता है[११]। स्त्रियों द्वारा महीन सूत कात कर (सुखुम सुत्तानि कन्तित्वा) गंडी (गुलं)[१२] बनाने का भी उल्लेख है।

कौशेय

हम दूसरे अध्याय में कह चुके है शायद कौशेय का उल्लेख सर्वप्रथम शतपथ ब्राह्मण में आता है। पाणिनि की अष्टाध्यायी में[१३] तो कौशेय के लिए एक अलग सूत्र ही है। रामायण[१४] में सीता को पीला रेशमी वस्त्र पहिने बतलाया गया है (पीते कौशेय वाससी) बौद्ध साहित्य[१५] में कौशेय का उल्लेख है और रेशमी चादर (कौशेय प्रावार) पहनने की अनुमति बुद्ध ने भिक्षुओं को दी है[१६]। प्राचीन जैन ग्रंथ आचारांग सूत्र में कौशेय का उल्लेख नहीं है पर पट्ट[१७] शब्द से शायद रेशम का बोध होता हो। इसी सूत्र के वस्त्रों की तालिका में चीनांसुय या चीन के बने रेशमी वस्त्र का भी उल्लेख है। चीन शब्द के आने से इस तालिका की प्राचीनता पर संदेह किया जा सकता है पर अभी तक यह प्रश्न विवादास्पद है कि चीन शब्द भारतीय साहित्य में कब से आया। जैसा हम चौथे अध्याय में देखेंगे चीन के बने रेशमी वस्त्रों का उल्लेख कौटिल्य अर्थशास्त्र में भी आया है, और महाभारत के सभापर्व में वाह्लीक और चीन के बने कीटज और पट्टज[१८] वस्त्रों का उल्लेख है। वाह्लीक और

८—जातक, भाग ६, पृ० ४७
९—जातक, भाग ३, पृ० २८६
१०—जातक, भाग ६, पृ० ३३६
११—जातक, भाग ६, पृ० ४१
१२—जातक, भाग ६, पृ० ३३६
१३—अष्टाध्यायी, ४।३।४२
१४—रामायण, २।४०।९
१५—जातक, भा० ६, पृ० ४७
१६—महावग्ग, ८।१।३६
१७—आ० सू०, २।५।१।४
१८—महाभारत, २।४७।२२

चीन के उल्लेख से शायद मध्य एशिया के उस बड़े रास्ते की ओर इशारा है जिससे होकर चीन से रेशम भारत और शाम आता था।

क्षौम

दूसरे अध्याय में हम देख चुके है कि पिछले वैदिक काल में अतसी की छाल के रेशे से बने हुये कपड़े का व्यवहार होता था । पाणिनि ने रेशेदार पौदों मे उमा[१९] यानी अतसी के पौदे का भी वर्णन किया है । उमा धान्य विशेष है या नही इस प्रश्न को लेकर वार्तिककार कात्यायन और महाभाष्यकार पतञ्जलि के मतों में भेद है। कात्यायन उमा और भंगा को धान्य नहीं मानते और पतञ्जलि उन्हे धान्य मानते हैं। बौद्ध और जैन ग्रंथों के आधार पर तो कात्यायन की राय ठीक मालूम पड़ती है क्योंकि इनमें भंगा और उमा का व्यवहार अन्न विशेष के लिए नही वरन् रेशों के लिये किया गया है जिनसे कपड़े बनते थे। रामायण में क्षौम के बहुत से उल्लेख आये है राम की माता क्षौम (क्षौमवासिता)[२०] पहनती थीं, एक विमल क्षौम पहने ब्राह्मण का वर्णन है[२१] और राम के नगर दर्शन के अवसर पर क्षौम और पट्ट के पांवड़े सड़कों पर बिछाए जाने का उल्लेख है[२२]। जातकों में क्षौम का उल्लेख आया है[२३] और महावग्ग में[२४] बुद्ध ने भिक्षुओं को क्षौम के चीवर बनाने की आज्ञा दी है। जैनों के आचारांग सूत्र मे[२५] जैन साधुओं को क्षौम पहनने की आज्ञा दी गयी है। आचारांग सूत्र में[२६] कीमती वस्त्रों की तालिका में भी क्षौम आया है जिसे टीकाकार शीलांक ने सामान्य सूत का बना कपड़ा कहा है। यह अर्थ ठीक नहीं है क्योंकि क्षौम का व्यवहार कहीं भी कपास से बने कपड़े के लिए नहीं हुआ है । संभव यह है कि मोटे सूत के क्षौम साधारण रूप से जैन साधु व्यवहार कर सकते थे लेकिन बहुत बारीक सूत के कीमती क्षौम का व्यवहार उनके लिए वर्जित था ।

कंबल

हम दूसरे अध्याय में देख चुके हैं कि अथर्ववेद में कंबल शब्द का प्रयोग ऊनी

१९—अष्टाध्यायी, ५।२।४; डा० वासुदेवशरण, यू० पी०, हि० सो० ज० (जुलाई १९४८), पृ० १०५

२०—रामायण, २।६।२८

२१—रामायण, २।८।७

२२—रामायण, २।१८।५

२३—जातक, भा० ६, पृ० ४७

२४—महावग्ग, ८।१।३६

२५—आचारांग सू० १।७।४।१; २।५।१।१

२६—आचारांग सू० २।५।१।४; निशीथ चूर्णि, भा० ७, पृ० ४६७ में क्षौम का अर्थ रूई का कपड़ा (पोण्डमया) अथवा वृक्ष विशेष की छाल से बना वस्त्र दिया है ।

वस्त्रों के लिए हुआ है । महावग्ग[२७] में भी कंबल शब्द का व्यवहार ऊनी वस्त्रों के लिए ही हुआ है। जातकों में[२८] गंधार के रक्त पंडु कंबल (इंदगोपक वण्णाभा गंधारा पंडुकंबला) की तारीफ की गयी है। महावणिज जातक[२९] में बहुमूल्य वस्तुओं की तालिका मे उड्डीयान के कंबल भी शामिल है । शिवि लोगों का देश ऊनी शालो के लिए, जिन्हे बौद्ध साहित्य में सीवेय्यक दुस्स[३०] कहा है, प्रसिद्ध था। सिवि जातक[३१] में इसका उल्लेख है कि कोशल राज ने दशबल नाम के एक व्यक्ति को सिवि देश का वस्त्र (सीवेय्यक वत्थं) जिसका दाम एक लाख कार्षापण था, उपहार में दिया। दुस्स शब्द अब भी पंजाबी और हिन्दी में धुस्सा के रूप में चला आता है लेकिन धुस्से की चादर मामूली कीमत की होती है । लगता है कि प्राचीन दुस्स दुशाले की तरह कोई कीमती ऊनी चादर थी। दुस्स प्राचीन वैदिक तूष जिसके अर्थ कपड़े मे बटी या अनबटी छीर है, निकला है । दुशाले में बराबर छीर छोड़ी जाती है इसलिए उसका नाम महाजनपद युग में दुस्स पड़ा।

रामायण और महाभारत के अध्ययन से भी ऐसा पता चलता है कि गंधार और पंजाब ऊनी वस्त्रों के लिये प्रसिद्ध थे । रामायण मे कहा गया है कि कैकय देश (आधुनिक शाहपुर-झेलम) के राजा ने अपने भांजे भरत को विदाई में उपहार स्वरूप अलंकृत कालीन (चित्रांकुथान्) शुभ्र कंबल और बकरों की खालें दीं[३२]। महाभारत के सभापर्व के उन अध्यायों से जिनमें राजसूय यज्ञ के अवसर पर देश के विभिन्न भागों से आये उपायनों का वर्णन है यह पता चलता है कि पंजाब, उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त और पूर्वी अफगानिस्तान से ऊनी कपड़े और अधिकतर खालें आयीं। कंबोज (आधुनिक ताजिकिस्तान) से कदली मृग की खालें, कीमती कंबल, [३३]भेडों की खालें (ऐडान्स्चैलान्) और वृषदंश पशु के समूर और बकरों की खाले आयी[३४]। परिसिधु[३५] प्रदेश से भी तरह तरह के कंबल आये। चीनियों हूणों, शकों, ओड्रों और पर्वतांतर में रहने वाले कबीलों ने भी तरह तरह के ऊनी वस्त्र उपहार में

२७—महावग्ग, ८।३।१
२८—जातक, भा० ६, पृ० ५००
२९—जातक, भा० ४, पृ० ३५२
३०—महावग्ग, ८।१।२९
३१—जातक, भा० ४, पृ० ४०१
३२—रामायण, २।७६।२०
३३—महाभारत, २।४५।१९
३४—महाभारत, २।४७।३
३५—महाभारत, २।४७।११

भेजे। वे वस्त्र प्रमाण और रंग में पक्के तथा वाह्लीक और चीन के बने हुए थे। उनमें ऊनी (और्ण), पश्मीने (रांकवम्) नमदे तथा भेड़ों और बकरों की खाले भी थी[३६]।

काशी के वस्त्र

पालि साहित्य में काशी के बने वस्त्रों के अनेक उल्लेख आये है। इन्हें काशीकुत्तम[३७] और कही कहीं कासीय[३८] कहते थे। बनारस का बना कपड़ा इतना प्रसिद्ध था कि महापरिनिर्वाण सूत्र[३९] का टीकाकार विहितकप्पास पर टीका करते हुए कहता है कि बुद्ध का मृत शरीर बनारस के बने कपड़े से लपेटा गया था और वह इतना महीन और गंठ कर बुना गया था कि तेल तक नहीं सोख सकता था। बनारसी वस्त्र का उसी सूत्र में एक दूसरी जगह वर्णन करते हुए कहा गया है[४०] कि वह कपड़ा हर तरफ से नीली झलक मारता था। इसके सिवाय वह पीला, लाल और सफेद भी हो गया था[४१]। बनारसी कपड़े (वाराणसेय्यक)[४२] के बारीक पोत का उल्लेख मज्झिमनिकाय में भी आया है। टीकाकार इसलिए बनारसी कपड़े की प्रशंसा करता है कि उसके अनुसार बनारस में अच्छी कपास होती थी, वहां की कत्तिने और बुनकर होशियार होते थे, और वहां का नरम पानी धुलाई के लिये बहुत अच्छा पड़ता था। बनारसी कपड़े ऊपर नीचे दोनों ओर से मुलायम और चिकने होते थे। बनारस में सूती कपड़े के सिवाय रेशमी कपड़े क्षौम और शायद ऊनी कपड़े भी बनते थे। बनारस के रेशमी वस्त्र का एक जगह उल्लेख है[४३]। बनारस में क्षौम मिश्रित कंबल भी बनते थे। जीवक कुमारभृत्य को एक ऐसा ही कंबल काशिराज से उपहार में मिला था[४४]। महावग्ग में एक दूसरी जगह कहा गया है[४५] कि एक समय काशी के राजा ने जीवक की सेवाओं से प्रसन्न होकर उसे अड्ढकासिक कंबल उपहार में भेजा। श्री र्हाइस डेविड ने इसका अनुवाद आधे बनारसी कपड़े से बना हुआ ऊनी वस्त्र किया है लेकिन उनके कथनानुसार भी यह माने अटकल से लगाया गया है। बुद्धघोस ने अड्ढकासीयं में कासी का अर्थ एक हजार कार्षापण किया है, और अड्ढकासीय का पांच सौ और इस तरह अड्ढकासीय का अर्थ पांच

३६—महाभारत, २।४७।४२-४३
३७—जातक (अंग्रेजी अनुवाद), ६, पृ० ४७; ६, १५१; १, ३३५
३८—जातक, ६, ५००
३९—महापरिनिब्बाण सुत्त, ५।२६
४०—वही, ३।२९
४१—वही, ३।३०-३२
४२—म० नि०, २।३।७
४३—जा० (अनुवाद), ६, पृ० ७७
४४—महावग्ग, ८।१।४
४५—वही, ८।२

सौ कार्षापण मूल्यवाला कपड़ा किया है। हमारा अनुमान है कि अड्ढकासीय कोई बहुत बारीक कपड़ा रहा होगा क्योंकि आज दिन भी बारीक सूती कपड़े को अद्धी कहते हैं। लगता है बनारस में कसीदे का काम भी बनता था। इसे कासिक सूचीवस्त्र कहते थे[४६]।

कोटुंबर—बौद्ध युग में इसकी गणना अच्छे कपड़ों में होती थी[४७]। अगर कोटुंबर देश की ओदुंबर देश से पहचान ठीक है[४८] तो यह कपड़ा अमृतसर के पास पठानकोट के इलाके में बुना जाता था, और शायद यह ऊनी कपड़ा होता था।

शाण—सन की काफी खेती होती थी[४९]। सन से सूत (शाणसुत्तं) काता जाता था और उसकी ठीक तरह से गंडियां (सुसनद्धो) बनायी जाती थीं। इस सूत से सन्नी कपड़ा (साणिय) बुना जाता था। इसी तरह से क्षौम और कपास के कपड़े भी बनते थे।

भांगिक—भांग वृक्ष की छाल से भी कपड़े बनते थे[५०]। आज दिन भी युक्तप्रान्त के कुमायूं जिले में ऐसा कपड़ा बनता है जिसे भंगेला कहते हैं।

फलक चीर[५१]—लगता है यह वस्त्र किसी विशेष लकड़ी की पतली फराटियों से बनाया जाता था। इसका उपयोग बौद्ध भिक्षुओं के लिए निषिद्ध था। इसका अर्थ फल के रेशों से बना वस्त्र भी हो सकता है।

कुश चीर[५२]—कुश के बने कपड़ों का बौद्ध भिक्षुओं के लिए निषेध था।

बल्कल[५३]—छाल के बने वस्त्र। ऐसे वस्त्र भी बौद्ध भिक्षुओं के लिए अविहित थे।

तृण के बने हुए वस्त्र विशेष—मध्य देश में एरगु, मोरगु और मज्जारु[५४] नाम के तृणों से बने कपड़े व्यवहार में लाये जाते थे। वहां जाकर बौद्ध भिक्षु भी ऐसे वस्त्र पहन सकते थे। तृण के बने वस्त्रों का व्यवहार किसी सुदूर प्राचीन काल की ओर हमारा ध्यान खींचता है।

हिरण्य वस्त्र—किंखाब का भी कभी कभी उल्लेख हुआ है[५५]।

४६—जा० ६, १४४, १४५, १५४
४७—जा० ६, ४७
४८—बागची, प्री आर्यन एंड प्रीड्रवीडियन, पृ० १६०
४९—पायासि-सुत्त, २९; दीघनिकाय, भा० २, पृ० ३४९-५०
५०—महावग्ग, ८।३।१
५१—वही, ८।२८।२; चुल्लवग्ग, ५।२९।३
५२—महावग्ग, ८।२८।२-३
५३—वही, ८।२८।२-३
५४—वही, ५।१३।६
५५—महापरिनिब्बाण सुत्त, ४।४४

वस्त्रों के लिए चमड़े का व्यवहार

जातकों में अजिन की वस्त्र की तरह उपयोग में लाने का उल्लेख है[५६]। ऐसा लगता है कि बहुत प्राचीन काल में सिंह, व्याघ्र, चीते, तेंदुए, गाय और हिरन के चमड़ों का उपयोग बिछावन और वस्त्रो के लिए होता था[५७]। दक्षिणापथ मे भी बकरों, भेड़ों और हिरन की खालों का उपयोग आस्तरण और वस्त्र के लिए होता था[५८]। बौद्ध भिक्षुओं को चमड़े के वस्त्र पहनने की अनुमति नही थी, पर दक्षिणापथ मे वे इनका उपयोग कर सकते थे।

ऊनी और सूती वस्त्रों का व्यवहार पहनने के सिवाय चांदनी, कालीन, पर्दो और मेजपोश इत्यादि के लिए भी होता था। सज्जा के लिए ऐसे कपड़ों के उल्लेख बौद्ध साहित्य में काफी आये है और इनकी तालिकाएं भी महावग्ग और ब्रह्मजाल सुत्त में दी हुई है जिनमें बिछाने ओढ़ने के निम्नलिखित वस्त्र है।

गोणक—टीका में इसका अर्थ लंबेबाल वाले बकरे के बाल से बना हुआ आस्तरण है[५९]। यह शब्द भारतीय साहित्य में बहुत ही कम आया है और संभव है कि यह ईरानी भाषा से लिया गया हो। इस सम्बन्ध में मै पाठकों का ध्यान सुमेर और अक्काद के प्राचीन निवासियों के पहरावे की ओर दिलाना चाहता हूं। यह एक तहबंदनुमा वस्त्र होता था जो घुटनों तक पहुंचता था और जिसे लोग कमर में लपेट लिया करते थे। यह तहबंद एक टुकड़े में होता था, इस पर उभरी हुई धारियां होती थी और हर धारी के अंत में झालर। यूनानी लोग इस वस्त्र को कौनकेस (Kaunkes) कहते थे और अरिस्तोफानेज के समय में यह एकबातना में बुना जाता था[६०]। इस कौनकेस का व्यवहार दुंगी के समय में तिपाइयों के ढकने के लिये भी होता था[६१]। गोणक और कौनकेस एक ही शब्द मालूम पड़ते है। भारत में गोणक का व्यवहार आस्तरण रूप में ही होता था, कपड़े के रूप में नही। अब प्रश्न यह उठता है कि भारतवर्ष में यह शब्द कहां से और कैसे आया। इसका सर्वप्रथम उल्लेख जहां तक मुझे मालूम है ब्रह्मजाल सूत्र में हुआ है। लगता यह है कि लगभग ५०० ई० पू० में ईरानी भाषा से यह शब्द पालि में आया।

५६—जा० ६, ५००

५७—महावग्ग, ५।१०।५-७

५८—वही, ५।१३।६

५९—ब्र० सु०, १५, डायलाग्स ऑफ बुद्ध, पृ० ११ इत्यादि

६०—एल० देलापोर्त, मेसोपोटामिया, पृ० १९४, लंडन, १९२५

६१—वही, पृ० १९६

चित्तक[६२]—बिस्तर ढांकने के लिए अनेक वस्त्र खंडों से बनी रंग बिरंगी कालीन।

पलिका[६३]—सफेद ऊनी कालीन

पटलिका[६४]—खूब पास बने हुए फूलों वाले कालीन।

तूलिका[६५]—रूई भरी रजाई।

विकटिका[६६]—ऐसे आस्तरण जिन पर सिंह, व्याघ्र इत्यादि के चित्र कढ़े हों।

उद्दलोमी[६७]—दोनों ओर रोएं वाले कंबल। यह ऊदबिलाव की खाल भी हो सकती है।

एकंतलोमी[६८]—एक रुखा रोएंदार कंबल।

कट्टिस[६९]—जवाहरातों से सजे आस्तरण।

कोसेय्य[७०]—रेशमी कालीन।

कुत्तक[७१]—इतना बड़ा ऊनी कालीन जिस पर सोलह नर्तकियां एक साथ नाच सकती थीं।

हत्थत्थर और अस्सत्थर[७२]—हाथी, घोड़े और रथ पर बिछाये जाने वाले आस्तरण।

अजिनपवेणी[७३]—मृगचर्मों को जोड़ कर बनाया गया कंबल।

कदलीमिगपवरपच्चत्थरण[७४]—कदलीमृग के चमड़ों से बना हुआ कंबल। कदलीमृग कौन सा पशु था यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता। सुमंगलविलासिनी के अनुसार यह केले के पेड़ों के झुरमुट में रहने वाला एक पशु था। लेकिन महाभारत[७५] और अर्थशास्त्र[७६] तो इसे पहाड़ों पर रहने वाला एक मृग मानते हैं, इसलिए कदलीमृग केले के पेड़ों के झुरमुट में रहने वाला पशु नहीं हो सकता।

चिलिमिका[७७]—साफ सुथरे फर्श की शोभा की रक्षा के लिए एक विशेष प्रकार का कालीन।

६२—ब्र० सू० १५; महावग्ग, ५।१०।३

६३—वही, उन्नामयो सेतत्थरको, ब्र० जा० सूत्र पर टीका

६४—वही, शायद वह बाद के पटोले का सर्व प्रथम उल्लेख है।

६५—७४, वही

७५—महाभारत, २।४५।१६

७६—अर्थशास्त्र (गणपति शास्त्री), भा० १, पृ० १६१-१६२

७७—महावग्ग, ६।२।६, परिकम्मकताय भूमिया छविसमरक्खनत्थाय अत्थरणं वुच्चति।

वाहीतिक[७८]—यह एक सोलह हाथ लंबी और आठ हाथ चौड़ी एक ऊनी चादर होती थी। एक ऐसी ही चादर राजा अजातशत्रु ने प्रसेनजित् के पास उपहार में भेजी थी। प्रसेनजित् ने इसे आनंद को भेंट कर दी।

नमतक[७९]—भेड़ों या पहाड़ी बकरों के रोएं से कूट कर जमाया हुआ नमदा। कश्मीर में आज दिन भी सादे या कामदार नमदे बहुतायत से बनते हैं।

कोजव[८०]—लंबे रोएं वाला कंबल । शायद यह आधुनिक थुलमे की तरह कोई कंबल था ।

वस्त्रों की धुलाई और रंगाई

कपड़े धोने की रीति का वर्णन बौद्ध साहित्य में तो नहीं मिलता लेकिन जैन ग्रंथ ज्ञाताधर्म कथा[८१] में उसका पूरा वर्णन है। पहले वस्त्र में सज्जीखार लगा कर फिर उसे उबालते थे और बाद में साफ पानी से धो लेते थे । अभी तक धोबी इसी रीति से कपड़े धोते हैं। रंगने के पहले भी कपड़ा अच्छी तरह से धो लिया जाता था[८२]। कपड़े नीले, पीले, लाल, मजीठ, काले और हल्दी के रंग में रंग लिये जाते थे[८३]। भिक्षुओं को रंगीन कपड़े पहनने की आज्ञा नहीं थी ।

भिक्षु, श्रमणों और जैन साधुओं के पहनने के वस्त्र

बौद्ध और जैन साहित्यों में भिक्षुओं और साधुओं के विहित वस्त्रों का बड़ा सविस्तर वर्णन हुआ है । प्रसंगवश श्रमण ब्राह्मणों के वस्त्रों का इसलिए उल्लेख हुआ है कि उनका व्यवहार बौद्ध और जैन साधु न करें । अपने अपने संघों की ब्राह्मण धर्मानुयायी संघों से विभिन्नता दिखलाने के लिए ऐसा आवश्यक भी था

ब्राह्मण और श्रमणों के वस्त्र

सीहनाद सुत्त[८४] में इनके वस्त्रों का पूरा पूरा वर्णन हुआ है। ये सन के बने वस्त्र (शाणानि), सन और दूसरी तरह के सतों के मेल से बुने कपड़े, मृत शरीर से अलग किये

७८—मज्झिम निकाय, २।४।८

७९—चुल्लवग्ग, १०।१०।४

८०—महावग्ग, ८।१।३६

८१—ज्ञाता धर्मकथा, ३। ६०

८२—महावग्ग, ५।१। १०

८३—महावग्ग, ८।२९। १

८४—कस्सप सीहनाद सुत्त, १४, डायलॉग्स् ऑफ बुद्ध, पृ० २३०-२३१, पाठ दीघनिकाय, भा० १, पृ० १६६-१६७

हुए कपड़े (छवदुस्स), घूर पर फेंके हुये चीथड़ों से बने कपड़े (पांसुकुकूलानि), तिरीट की छाल से बने कपड़े (तिरीटानि), मृगचर्म (अजिमानि), कृष्णमृग के चर्म की पट्टियों से बने कपड़े (अजिनक्खिपं), कुश के बने कपड़े (कुशचीरं), बल्कल के बने कपड़े (वाकाचीरं), लकड़ी की फराटियों या टुकड़ों से बने कपड़े (फलकचीरं), मनुष्य के बालों से बने कंबल (केसकंबलं), घोड़े की दुम के बालों से बने कंबल (बालकंबलं) और उल्लू के पंखों से बने कंबल (उलूकपक्खं) पहनते थे। ब्राह्मणों और श्रमणों के वस्त्रों का वर्णन देखकर यह पता चलता है कि उनके भिन्न भिन्न वर्गों में भिन्न भिन्न तरह के कपड़े प्रचलित थे। सन, तिरीट, मृगचर्म और वल्कल के बने कपड़े तो ब्राह्मण पहनते थे। छवदुस्स एरक नाम की घास की चटाई शव के लपेटने के लिए होती थी[८५] और पांसुदुकूल लगता है कापालिक क्रिया साधने वाले पहनते थे। केसकंबल भी एक तरह के श्रमणों का वस्त्र था। बुद्ध के समकालीन एक आचार्य का नाम केसकंबली था। लगता है फलकचीर, बालकंबल और उलूकपक्ख पहनने वाले श्रमणों के वर्ग भी रहे होंगे।

बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियों के वस्त्र

बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियों के वस्त्र प्रायः एक से होते थे। पीले रंग में रंगे इनके वस्त्रों की संख्या तीन होती थी यथा संघाटी अर्थात् कमर में लपेटने की दोहरी तहमत, अंतरवासक अर्थात् शरीर के ऊपरी भाग ढकने का वस्त्र और उत्तरासंग अर्थात् चादर[८६]। इनके सिवाय बैठने के लिए आसन (प्रत्यस्तरण), खुजली होने पर पहनने के लिए चार बित्ता लंबा और दो बित्ता चौड़ा कोपीन (कंडूक प्रतिच्छादन)[८७] वर्षा काल में पहनने के लिए एक वस्त्र (वार्षिक साटिक)[८८] जो छः बित्ता लंबा और ढाई बित्ता चौड़ा होता था, उनके लिए विहित थे। भिक्षु आयोगपट्ट[८९] (बैठने पर दोनों घुटनों और पीठ के जोड़ने के लिए एक पट्टी) भी व्यवहार में लाते थे। इनके कमरबंद (कायबंध)[९०] सादी और फेरदार बुनावट की पट्टियों से बनते थे। इन कायबंधों के किनारे फटने के डर से उलट कर सी दिये जाते थे। इनके किनारों पर लगी पट्टियों को शोभक कहते थे, और इन पर की हुई बरफीदार तगनी को गुणक[९१]। कायबंधों में हुक (वीठ) भी लगते थे पर ये वीठ सदा हड्डी, शंख और डोरे के बने होते थे, भिक्षुओं के लिए सोने चांदी के वीठ वर्जित थे[९२]। भिक्षु अपने वस्त्रों में तुक (पासक) और मेख (घुंडी) लगा सकते थे। मेख हड्डी, सूत और शंख के बने होते थे सोने चांदी के नहीं[९३]।

८५—कस्सप सीहनाद सुत्त, १५, टीका
८६—महावग्ग, ८।१३।४-५
८७—भिक्खु पातिमोक्ख, ५।३९।९०; महावग्ग, ८।१८।१
८८—भि० पा०, ५।३९।९१; म० व०, ८।५।६
८९—चुल्लवग्ग, ५।२०।२
९०—वही, ५।२९।२
९१—९३—चुल्लवग्ग, ५।२९।२

भिक्षु कंचुक नहीं पहन सकते थे[९४]। वे लहरियादार लंबे, कसीदेदार सर्प फणाकार, तथा पंजक युक्त किनारों का वस्त्र नहीं पहन सकते थे क्योंकि ऐसे वस्त्र केवल सर्वसाधारण ही पहन सकते थे

करघे और उनके भाग

ऐसा मालूम पड़ता है कि बौद्ध युग के आरंभिक युग में बौद्ध भिक्षुओं को कपड़े बिनने की स्वतंत्रता थी। इसी प्रकरण में करघा (तंतक), ढरकी (व्रेमक), टट्टी (शलाका) और डोर (वट्ट) के नाम आये हैं[९५]। जहां तक मुझे पता है कम से कम किसी भारतीय धर्म ने साधुओं और भिक्षुओं को कपड़े बुनने की स्वतंत्रता नहीं दी है। बुनाई की आज्ञा देकर बौद्ध धर्म अपनी प्रगतिशीलता का परिचय देता है।

बौद्ध भिक्षुणियों के वस्त्र

बौद्ध भिक्षुणियाँ संघाटी, अंतरवासक और उत्तरासंग के अतिरिक्त कंचुक भी पहन सकती थीं। एक जगह इस बात का उल्लेख है कि बिना कंचुक पहने गांव में जाने वाली भिक्षुणियों के लिए प्रायश्चित्त का विधान था[९६]। यह कहना कठिन है कि इस युग में कंचुक का आकार चोली जैसा होता था या कुरते जैसा, पर शुंग काल की मट्टी की मूर्तियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शायद कंचुक कुरते जैसा था। भिक्षुणियाँ एकांत में कटिसूत्र से बंधा लंगोट जैसा एक वस्त्र पहनतीं थीं[९७]। यह लंगोट डेढ़ फुट लंबे और छः इंच चौड़े एक तिकोने कपड़े से बना होता था और कमर से बाँधने के लिए एक डोरी लगती थी ।

जैन साधुओं के वस्त्र

आचारांग सूत्र[९८] के अनुसार जैन साधु केवल तीन वस्त्र ग्रहण कर सकते थे, इनमें दो तो क्षौम की धोतियाँ (क्षौम कल्प) होती थीं और एक ऊनी चादर (और्णिक कल्प)। शीलांक अपनी टीका[९९] में कहते हैं कि जाड़ों में जैन साधु ढाई हाथ वर्ग गज की दो कोपीनें और एक ऊनी वस्त्र ग्रहण कर सकते थे। जिस अवस्था में कपड़े साधुओं को मिलते थे उसी

९४—महावग्ग, ८।२९।१
९५—चुल्लवग्ग, ५।२०।२
९६—भिक्खुनी पातिमोक्ख, ४।४०।९६
९७—चुल्लवग्ग, १०।६।२
९८—आ० सू०, १।७।४।१
९९—टीका, पृ० २५१ अ

अवस्था में वे उन्हें पहन सकते थे। जैन साधु अपने कपड़े धो, रंग नहीं सकते थे। जाड़ा बीत जाने पर साधु क्षौमसाटी भी पहन सकते थे[१००]। जिनकल्पधारी साधु हमेशा नंगे रहते थे।

साधारण लोगों की वेश-भूषा

गृहस्थों के पहरावे में तीन कपड़े होते थे यथा धोती (अंतरवासक), दुपट्टा (उत्तरासंग) और पगड़ी (उष्णीष)। स्त्रियाँ[१०१] और पुरुष[१०२] कंचुक पहनते थे। शायद यह कुरता जैसा कोई वस्त्र रहा हो, लेकिन यह कहना मुश्किल है कि यह वस्त्र आगे से खुला रहता था अथवा बंद।

स्त्रियाँ साड़ी भी पहनती थी जो काफी मजबूत होती थी (बलित्थग साटको)[१०३]। रानियाँ अमूमन साड़ियाँ पहना करती थीं और इसे सट्ट-साट्टक कहते थे[१०४]। बौद्ध साहित्य से यह पता नहीं चलता कि उस समय साड़ी पहनने का क्या तरीका था।

आकर्षक ढंग से कपड़े पहनने की प्रथा

बौद्ध साहित्य से पता चलता है कि लोग अपने कपड़े बड़े शौक से सँवार बना कर पहनते थे। वैशाली के नागरिक कपड़ों के बड़े शौकीन थे। महापरिनिब्बाण सुत्त[१०५] में कहा गया है कि यह समाचार पाकर बुद्ध अंबपालिका के यहां पधारने वाले हैं वैशाली के नागरिक आतुरतापूर्वक उनसे मिलने चले। उन्होंने अपने शरीर के रंगों से मेल खाते हुए वस्त्र और आभूषण धारण कर रक्खे थे। साँवले रंग के आदमी गहरे रंग का वस्त्राभूषण पहिने थे, साफ रंग के लोग हल्के कपड़े और गहने पहने थे। स्त्रियाँ भी अपने बनाव श्रृङ्गार में रंगों के मिलान पर बड़ा ध्यान देती थीं। जातकों में एक जगह कहा गया है[१०६] कि विरूपाक्ष की पुत्री कालकण्णी ने सुचिपरिवार नाम सेट्ठी से मिलते समय नीले रंग का वस्त्र, नील विलेपन और नील मणियों से अपना श्रृङ्गार कर रक्खा था। लेकिन श्रेष्ठी को यह रंगविन्यास पसंद नहीं आया और उसने अपनी राय कालकण्णी से साफ साफ कह दी।

१००—आचारांग सूत्र, १।७।५।१

१०१—भिक्खुनी पातिमोक्ख, ४।४०।१६

१०२—चुल्लवग्ग, ५।२६।२

१०३—जातक (३२४), ३, पृ० ५५

१०४—जातक, (४३१), ३, २६६

१०५—महापरिनिब्बान सुत्त, २, १८

१०६—जातक (३८२), ३, पृ० ५५

धोती पहनने के तरीके

इस युग में भारतीयों का पहिरावा सादा तो अवश्य होता था लेकिन उसे वे बड़े आकर्षक ढंग से पहनते थे । धोती वे निम्नलिखित तरीकों से पहिनते थे[१०७]

हस्तिशौंडिक--अट्ठकथा के अनुसार धोती की चुन्नट वैसी ही होती थी जैसी कि चोल देश की स्त्रियों की साड़ी में । लगता ऐसा है कि धोती का एक सिरा चुन कर कमर में खोंस लिया जाता था और लटकती हुई चूनन का आकार कुछ हाथी के सूंड़ की तरह भासित होता था।

मत्स्यवालक--धोती में लंबान और चौड़ान के किनारे मछली की पूंछ के आकार में सज्जित किये जाते थे ।

चतुष्कर्णक--इस प्रकार के वस्त्र विशेष में चार कोने होते थे । शायद यह दुपट्टे ऐसा कोई वस्त्र रहा हो। भरहुत में चौकोने दुपट्टे पहने (आ० २१) मनुष्य दिखलाये गये हैं। अथवा यह चाकदार जामा ऐसा कोई सिला हुआ वस्त्र था या धोती के चार छोर इसमें दिखलाई देते थे।

तालवृन्तक--इसमें वस्त्र या धोती का चुन्नटदार छोर ताल के पंखे के आकार का होता था। पंखे के आकार के शिरोवस्त्र बहुधा अर्धचित्रों में आते हैं।

शतवल्लिक--इस प्रकार की धोती में बहुत सी चूंननें और सिलवेंट पड़ती थीं।

धोती या साड़ी पहनने में लांग पीछे बांध ली जाती थी, लेकिन भिक्षुओं के लिए लांग बाँधना अविहित था।

कमरबंद

कायबंध[१०८] कमरबंद बांधने के भी अनेक तरीके थे तथा आकार के अनुसार इसके अनेक नाम भी थे । कलाबुक नाम का कमरबंद बटी रस्सियों से बना होता था। डेड्डुभक की शकल जल में रहने वाले डेढ़े साँप की तरह होती थी, मुरज ढोल के आकार का होता था और मद्दवीन नामक कमरबंद से एक अलंकार लटका करता था।

कलात्मक ढंग से कमरबंद और पटके बांधने की रीति स्त्रियों में काफी प्रचलित थी, लेकिन बुद्ध की आज्ञानुसार भिक्षुणियाँ अपने कमरबंद सादे तौर से ही बांध सकती थीं।

१०७--चुल्लवग्ग, ५।२९।४
१०८--वही, ५।२९।२

उनके कमरबंदों में एक ही फेंटा लगता था। पटके बांस के रेशे (विलीव) चर्मपट्ट, ऊनी पट्टी (दुस्सपट्ट) गुथे हुए ऊन (दुस्सवेणी), बटे हुए ऊन (दुस्सवट्टी), बटे हुए चोलवस्त्र (चोलवट्टी) गुथे हुए चोल वस्त्र (चोलवेणी) और गुथे हुए सूती कपड़े (चोलवट्टी) के बनते थे[१०९]।

जूते

मनुष्य के पहिरावे में जूतों और पादुकाओं का एक विशेष स्थान होता था। एक जातक में कहा गया है कि शरीर की रक्षा और आराम के लिए जूतों का खरीदना आवश्यक था[११०]। जूते आकार और रंग में भिन्न भिन्न प्रकार के होते थे। जूते एकतल्ले (एक चलांसिक), दोतल्ले (द्विपटल), तिनतल्ले (तिपटल) और चौतल्ले होते थे[१११]। जूते नील, लोहित, मंजीठ, कृष्ण, नारंगी (महारंग) और पीले (कुरुंदिय) चमड़ों से बनाये जाते थे। जूतों में रंग बिरंगे किनारे भी लगाये जाते थे[११२]। ऐसे रंग बिरंगे तथा अनेक तल्ले वाले जूते केवल गृहस्थ पहन सकते थे। भिक्षु केवल एक तल्ले जूते पहन सकते थे[११३] लेकिन अनेक तल्ले वाले पुराने जूते पहने जा सकते थे[११४]।

जूते निम्नलिखित आकारों के होते थे[११५] —

(१) पुटबद्ध—घुटने तक चढ़े हुए जूते। बुद्धघोस के अनुसार ये जूते यवनों के होते थे और ये जंघों से लेकर सब पैर को ढंक लेते थे। सांची के एक अर्धचित्र में इसी तरह का जूता चित्रित किया गया है। बाद में वृहद् कल्पसूत्र भाष्य में इस जूते को जंघा अथवा खपुसा कहा गया है।

(२) पालिगुंठिम—ये जूते केवल पैर ढकते थे और जंघे खुले रहते थे। सांची के अर्धचित्रों में एक जगह इस जूते की आकृति बतलायी गयी है।

(३) खल्लकबद्ध—बुद्धघोस के अनुसार इस जूते के तले में एँड़ी ढांकने के लिए खल्लक लगा होता था। लगता है इस जूते का आकार आधुनिक पेशावरी चप्पल जैसा रहा होगा (आ० ११०)। वृहद् कल्पसूत्र भाष्य[११६] में पूरे पैर ढंकने वाले जूते को खल्लक कहते थे।

१०९—चुल्लवग्ग, १०।१०।१

११०—जातक (२२७), २, पृ० १५५

१११—महावग्ग, ५।१।२९

११२—महावग्ग, ५।२।२

११३—महावग्ग, ५।२।१

११४—महावग्ग, ५।३।२

११५—महावग्ग, ५।२।२३

११६—वृहदकल्प सूत्रभाष्य, ४,३८४७

(४) मेण्डविषाण बद्धिक—बुद्धघोस के अनुसार इस जूते की नोक पर अलंकार स्वरूप मेंढ़े के सींग लगाये जाते थे।

(५) अजविषाण बद्धिक—इस जूते की नोक (कर्णिका) पर बकरे के सींग लगाये जाते थे।

(६) वृश्चिकालिक—इस जूते की नोक पर बिच्छू की पूंछ का अलंकरण होता था।

(७) मोरपिंछ परिसिब्बित—बुद्धघोस के अनुसार इस जूते के तले या बंदों में मोरपंख सिला हुआ होता था।

(८) तूलपुण्णिक—लगता है यह जूता रूई से भरा हुआ होता था।

(९) तित्तिरपट्टिक—इस जूते की बनावट तीतर के पंखों जैसी होती थी।

उपरोक्त किस्म के जूते केवल गृहस्थ पहन सकते थे। भिक्षुओं को इनके पहनने की मनाही थी। लेकिन उन प्रत्यन्त देशों में जहां बौद्ध धर्म घुस नहीं सका था उन्हें वहां के बने हर एक प्रकार के जूते पहनने की आज्ञा थी[११७]

भिक्षु धार्मिक शिक्षा ग्रहण करते समय चप्पल नहीं पहन सकते थे[११८]। आराम में प्रवेश करते हुए भिक्षुओं को आदेश था कि वे अपनी चप्पलें अथवा पादुकाएं उतार दें और उनसे गरदा पीट कर निकाल दें। बाद में वस्त्र मांग कर चप्पलें पोंछें। पहले सूखे कपड़े से और बाद में गीले कपड़े से जूते पोंछने का आदेश मिलता है[११९]।

जिन जूतों का वर्णन हम ऊपर कर आये हैं उनके अलावा भी सिंह, व्याघ्र, मृग, चीते, ऊदबिलाव, बिल्ली, गिलहरी और उल्लू के चमड़ों से भी जूते बनाये जाते थे[१२०]। उन दिनों इस देश में जूतों का इतना अधिक चलन था कि चर्मकार के व्यवसाय से ली गयी उपमाओं का प्रयोग कहीं कहीं पालि साहित्य में हुआ है। काम जातक[१२१] की एक गाथा में कहा गया है कि जिस तरह चर्मकार जूता बनाने में चमड़े के कोने काट कर उसमें रूप पैदा करता है (रथकारो व चम्मस्स परिकन्तं उपाहनं) उसी तरह इच्छाओं के नाश होने पर सुख की प्राप्ति होती है।

११७—महावग्ग, ५।१३।६

११८—पातिमोक्ख, ६१

११९—चुल्लवग्ग, ८।२

१२०—महावग्ग, ५।२।४

१२१—जातक, ४,१७२

चप्पल और पादुकाएं

जूतों के सिवाय गृहस्थ काठ की पादुकाएं तथा तालपत्र और बांस की बनी चप्पलें भी पहनते थे[१२२]। पर इनका व्यवहार भिक्षुओं के लिए वर्जित था। चप्पले तृण, मूंज, हिंताल की लकड़ी, कमल, बल्वज नाम की घास और कंबल की बनती थी। आज दिन भी भारत के ऐसे इलाकों में जहां आधुनिक सभ्यता पूरी तरह से नही घुस सकी है, घास और मूंज की बनी चप्पलें काम में लायी जाती है।

कुछ शौकीन और पैसे वाले अपनी पादुकाएं सोने, चांदी, स्फटिक, वैडूर्य, कांसा, कांच, रांगा और तांबे के अलंकारों से सजाते थे[१२३] पर साधारण गृहस्थ ऐसा नही करते थे। भिक्षुओं को भी ऐसी अलंकृत पादुकाएं पहनने की आज्ञा नहीं थी।

एक धनुर्धारी की वेश-भूषा

पालि साहित्य मे कहीं कही जन समाज की वेश-भूषा के प्रकरण भी आ गये है। एक जगह एक धनुर्धारी के पहिरावे का सजीव वर्णन है। कथा यह है कि एक समय बोधिसत्व धनुर्धारी के रूप में उत्पन्न हुए और एक शस्त्र प्रतियोगिता मे अपने कौशल का परिचय दिया। एक परदे की आड़ मे पहले उन्होने अपने सफेद कपड़े उतार कर बदन से सटा हुआ एक लाल कपड़ा पहन लिया, काछ कस लिया, और लाल फेंटे में तलवार खोंस ली। सब के ऊपर एक सुनहला कंचुक पहन लिया। उसके ऊपर चापनाली धारण कर के, मेढे के सींग से बनी धनुष कसा और अंत में धनुष टंकार करते हुए परदे के बाहर निकल आये[१२४]।

दुकूल चुंबट—एक जातक में एक राजा के दुकूल चुंबट पहनने का उल्लेख है[१२५]। यह कहना कठिन है कि दुकूल चुंबट का क्या रूप था।

सिलाई और उसके उपकरण

कंचुक इत्यादि के उल्लेखों से यह तो निश्चय हो गया है कि बौद्धकालीन भारत में या उसके पहले भी लोग सीना-पिरोना बहुत अच्छी तरह जानते थे। इससे कुछ अंग्रेज विद्वानों का यह विचार भ्रमात्मक सिद्ध होता है कि भारतीयों में सिले वस्त्रों की परंपरा का आरंभ मुसलमानों के भारत विजय के बाद से आरंभ होता है। महावग्ग में तो सिलाई

१२२—महावग्ग, ५।७।१
१२३—वही, ५।८।३
१२४—जातक, (१८१), २,६१
१२५—जातक, १,१६

का विशद वर्णन आया है जिससे पता चलता है कि कम से कम २५०० बरस पहले लोग सीने की कला में पूरी तौर से प्रवीण हो चुके थे । सिलाई संबंधी जो कुछ भी ज्ञान हमें बौद्ध साहित्य से प्राप्त होता है उसका वर्णन नीचे दिया जाता है ।

सूची—सूई लोग व्यवहार में लाते थे और सुइयां सूचीनालिका में रक्खी जाती थीं। सूइयों में मोरचा लगने के भय से सूचीनालिका में मोम का एक अस्तर दे दिया जाता था[१२६] ।

पहले भिक्षुगण अपने कपड़े परगजे और बांस के बने सूजे से सीते थे लेकिन बाद में उन्हें लोहे की सूई से अपने कपड़े सीने की आज्ञा मिल गई।

सूचिक और सूचिक नाली के उल्लेख चुल्लवग्ग में[१२७] भी आते हैं। सूई की धार भोथरी न होने देने के लिए खाने में चूना, जौका आटा, बालू तथा सिपिटक गोंद मिली हुई मोम का प्रयोग होता था।

जातकों में एक स्थान पर एक सूई बनाने वाले की कथा दी हुई है जिससे पता चलता है कि सूचिकार अपने व्यवसाय में काफी निपुण होते थे। कथा यह है[१२८] कि बोधिसत्व एक सूचिकार के चोले में उत्पन्न हुए और उनकी इच्छा गांव के एक लुहार की कन्या से विवाह करने की हुई। उन्होंने बहुत ही अच्छे किस्म के लोहे से एक सूई बनाई जो इतनी हल्की थी कि पानी पर तैर सकती थी । इस सूई को उन्होंने एक कोश में (सत्थकोश) रखा और उस कोश को एक नाली में, और फिर इस नाली को एक पेटी में रख कर (ओवट्टिथायकत्वा) वे लोहार के गांव में जाकर फेरी लगा कर आवाज देने लगे । "मेरी सूई सीधी और चिकनी है इसमें डोरा जल्दी पिरोया जा सकता है । कोरण्ड से इस पर पालिश की गयी है, इसकी नोक तेज है, सूई कौन लेगा।" "जल्दी पिरोई जाने वाली सीधी और मजबूत ठीक तरह से गोल की हुई मेरी सूई लोहे तक को छेद सकती है, बताओ मेरी सुई कौन लेगा।" लोहार की लड़की ने जब एक बाहरी को अपनी सूई को इस तरह प्रशंसा करते सुना तो उसे एक आदमी की मूर्खता पर इसलिए आश्चर्य हुआ कि उस लोहारों के गांव की सुइयां इतनी अच्छी बनती थीं कि चारों ओर से आदमी उन्हें खरीदने आते थे। लड़की ने बोधिसत्व को उत्तर दिया—

"हमारी हुकें (वलिसानि) चारों ओर बिकती हैं, और आदमी हमारे गांव में बनी सुइयों से भली भांति अवगत हैं, फिर यहां सुइयां कौन बेंच सकता है।" "लोहे के काम में

१२६—चुल्लवग्ग ५।११।२
१२७—चुल्लवग्ग, ५।११।२
१२८—जातक (३८७), भा० २, पृ० १७८-१७९

हमारी ख्याति है, हमारे हथियार सब से अच्छे बनते हैं, हम इस गांव के लोहार हैं, फिर यहां सुइयां कौन बेच सकता है।"

ऊपर की गाथाओं से, जो तत्कालीन लोकगीत के सुन्दर नमूने हैं, यह पता चलता है कि सुइयों की यथेष्ट मांग थी और इस व्यवसाय में काफी प्रतिस्पर्धा भी थी।

कैंची—इसे सत्थक कहते थे और इसके रखने का खाना (आवेसनवित्थक) से बनाया जाता था[१२९]। कैंची की मूठें कभी कभी सोने चांदी की होती थीं लेकिन भिक्षु केवल हड्डी, हाथी दांत, सींग, बेंत, बांस, कड़ी लकड़ी, कांसा और शंख के बनी मूठ ही व्यवहार में ला सकते थे।

प्रतिग्रह[१३०] (अंगुश्ताना)—सूई से अंगुलियों की रक्षा के लिए प्रतिग्रह या अंगुश्ताने का व्यवहार होता था। रईस सोने चांदी के अंगुश्ताने बनवाते थे पर भिक्षु केवल हड्डी या शंख इत्यादि के।

कठिन—यह एक प्रकार का फ्रेम या पट्टा होता था जिस पर दरजी सीने के कपड़े फैला देता था। कपड़ा पट्टे पर फैला कर इधर उधर रस्सियों से बांध दिया जाता था और इसके बाद कठिन को घास की चटाई पर रख देते थे। कठिन की दोनों बगलें मजबूती के लिए या तो दुहरी कर दी जाती थीं या उन्हें कस कर बांध दिया जाता था (अनुवातं परिभण्डं) कठिन के पायों या डंडों को दंड कठिन कहते थे, खूटों को पिदलक, बांस की खपच्चियों को शलाका और बांधने की रस्सियों को विनन्धन रज्जु या विनन्धन सुत्तक कहते थे।[१३१]

सीयन की पंक्तियों के बीच की चौड़ाई में कमी-वेशी न आने देने के लिए कपड़े पर ताड़पत्र अंकित कर दिये जाते थे। कपड़े की सिलाई या कटाई के लिए ठीक जगह पर पहले लंगर (मोघसुत्तकम्) डाल दिये जाते थे। बुद्धघोस के अनुसार ये लंगर हरे डोरे से उसी प्रकार डाले जाते थे जैसे बढ़ई काले डोरे से तख्ता काटने के लिए निशान बनाते थे।[१३२]

दरजी की दूकान में खानेदार पेटियाँ (आवेसनवित्थक) होती थीं। कठिन एक मंडप या छप्पर के नीचे रक्खा जाता था। यह मंडप चबूतरे (चय) पर इसलिए होता था जिससे पानी दूकान के अंदर न घुस सके। चबूतरे में ईंट, पत्थर या लकड़ी का मुखौटा (facing) तथा ईंट, पत्थर या लकड़ी की सीढ़ियाँ जिनमें रेलिंग (आलंबनबाह) लगी

१२९—चुल्लवग्ग, ५।११।१
१३०—चुल्लवग्ग, ५।११।५
१३१—चुल्लवग्ग, ५।११।३
१३२—वही, ५।११।३

होती थी, दीवारें और छत पहले चमड़े से ढाँक दी जाती थीं और बाद में उन पर भीतर बाहर से पलस्तर कर दिया जाता था। इसके बाद दुकान की छुहाई होती थी और उसमें काले लाल रंग (गेरुपरिकम्मं) रग लगाये जाते थे। इसके बाद माला और बेलों से वह अलंकृत की जाती थी और उसमें खूटियाँ, टांड़े (पचपटिकं) तथा कपड़े टाँगने के लिए बांस और रस्सियाँ लगायी जाती थीं[१३३]।

कठिन में घुन लगने के भय से उसे गोचर्म (गोघसिका) से मढ देते थे। और काम न होने पर उसे एक खूंटी (नागदन्त) से लटका देते थे[१३४]।

महावग्ग में काटने, सीने और रफू करने के संबध मे बहुत से शब्द दिये गये है जिनसे पता चलता है कि प्राचीन भारत के लोग कटाई और सिलाई के प्रत्येक अंगों से भली भांति परिचित थे। इन पारिभाषिक शब्दों के अर्थ समझने में काफी कठिनाई पड़ती है क्योंकि शब्द इतने प्राचीन है कि उनके अर्थ प्राय: लुप्त हो गये हैं। शब्द और परिभाषाएं नीचे दी जाती हैं—

(१) उल्लिखित—कपड़े की लंबाई चौड़ाई पर नाप के लिए नख या खड़ी से निशान बना देते थे[१३५]।

(२) बन्धन—सिलने के पहले कपड़े के टुकड़ो को आपस मे लंगर से जोड़ना[१३६]। पक्की सिलाई होने पर लंगर तोड़ दिये जाते हैं।

(३) ओवट्टियकरण—लंबान में मोड़ कर लंगर के सहारे सिलाई[१३७]।

(४) कंडुसकरण—बुद्धघोस इसका अर्थ करते है मुद्दियपट्टबन्धनमत्तेन जिसका अर्थ ठीक ठीक नहीं लगता। हो सकता है इसका अर्थ कपड़े के छोटे टुकड़े से बड़े कपड़े का जोड़ हो[१३८]।

(५) दढिकरण—बुद्धघोस इस शब्द के निम्नलिखित अर्थ करते है (अ) दो चिमिलिकाओं (परतों) को दोहरा कर के सीना, (आ) एक परत के फट जाने पर दूसरी परत लगा कर उसे मजबूत करना, (इ) पट्टचीवर, कुक्षि इत्यादि के फट जाने पर उनमें

१३३—चुल्लवग्ग, ५।११।६
१३४—चुल्लवग्ग, ५।११।७
१३५—महावग्ग, ७।१।५
१३६—वही
१३७—वही, ८।१४।२; चुल्लवग्ग ५।१।२
१३८—महावग्ग, ७।१।५

प्योंदे लगा कर उसे मजबूत करना[१३९]। यहां हमने बुद्धघोस की परिभाषाओं का केवल आशय दिया है।

(६) अनुवातकरण[१४०] —मजबूती के लिए बटाईदार सिलाइ, पिट्ठि अनुवात-आरोपण-मत्तेन, बुद्धघोस।

(७) परिभण्डकरण[१४१] —बगल और पीछे की सिलाई, कुच्छिअनुवातआरोपण मत्तेन, बुद्धघोस।

(८) ओवट्ठेयकरण[१४२] —कुछ जगहों मे दोहरी सिलाई—कठिन या दूसरे पट्ट को लेकर अकठिन चीवर से सीना।

(९) कुसि[१४३] —तिरछेबल दो सिले हुए कपड़े—आयामतो दीघ च वित्थरतो च अनुवातादीनां दीघपट्टानं एतो अधिवचन—बुद्धघोस।

(१०) अड्ढकुसी[१४४] —तिरछे बल आधी दूर तक सिले हुए दो कपड़े। अन्तरन्तरारस्स पट्टानं नामम्, बुद्धघोस।

(११) मंडल[१४५] —पाँच टुकड़े वाले वस्त्र में एक खंड में गोल सिलाई।

(१२) विवट्ट[१४६] —भीतरी मोड। मंडलों को एक कर के सीने मे इस मोड़ की जरूरत पड़ती है।

(१३) अनुवट्ट[१४७] —मोड़ों में लगा हुआ अस्तर। उभेसु पस्सेसु द्वे खण्डानि अथवा विवट्टस्स एक पस्सतो द्विन्नंपि चतुरपि खंडानं एतं नामम्, बुद्धघोस।

(१४) जांघेयक[१४८] —घुटने पर सिला हुआ विशेष वस्त्र।

(१५) गिवेय्यक[१४९] —कालर। ग्रीवास्थान पर दृढ़ता लाने के सूत से सिला हुआ टुकड़ा।

(१६) बहन्त[१५०] —केहुनी पर लगे हुए कपड़ों के टुकड़े। अनुवट्टानं बहि एक खण्डम्, अथवा सुप्पमाणं बहाय उपरि ठपिता उभो अन्तो बहिमुखा तिट्ठन्ति तेसं एतं नामम्।

१३९—वही

१४०—महावग्ग, ७।१।५; ८।२१।१

१४१—महावग्ग, ७।१।५

१४२—वही

१४३-१५०—महावग्ग, ७।१२।२

चौथा अध्याय

मौर्य, शुंग और शक-सातवाहन काल के वस्त्र

(ई० पू० तीसरी सदी से पहली सदी तक)

चन्द्रगुप्त मौर्य ने ३२० ई० पू० नंदवंश का उन्मूलिन कर के मगध साम्राज्य की शासनडोर संभाली। इस युग की राज्यव्यवस्था और सामाजिक दशा का सुन्दर चित्रण चन्द्रगुप्त के मंत्री कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में किया है। चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक (ई० पु० २७२-२३२) भारतवर्ष के महान् शासकों में अपना ऊँचा स्थान रखते है। अशोक बौद्ध थे और बौद्धधर्म के प्रचारार्थ उन्होंने बौद्ध भिक्षुओं को इस देश के बाहर भेजा। उनके शिलालेख प्रजा को धर्मपालन की शिक्षा देते हैं। अशोक ने अपने साम्राज्य में बहुत से बौद्ध स्तूप भी बनवाये। अशोककालीन मौर्य साम्राज्य का विस्तार तमाम उत्तर भारत, पूर्वी अफगानिस्तान, कश्मीर तथा दक्षिण तक फैला हुआ था। मौर्यों का शासन काल ई० पू० १८४ तक रहा। इसके बाद शुंगों ने और बाद में कण्वों ने राज्य किया। इस युग में सातवाहनों ने जिनके पास कृष्णा गोदावरी के घाटियों में बहुत से किले थे अपना विस्तार पूना से उज्जैन तक बढ़ाया और उनके वंशवाले करीब ४५० वर्ष तक राज्य करते रहे। ई० पू० ७०-२० के बीच में पंजाब और मथुरा में शक राज्य करते थे।

इस काल की वेश-भूषा के अध्ययन के लिए जो सामग्री उपलब्ध है उसमें अधिकतर शुंगकाल और बाद के अर्धचित्र हैं। इसीलिए मौर्यकाल की वेश-भूषा के इतिहास के लिए हमें साहित्य का ही सहारा लेना पड़ता है। इस युग के वस्त्रों के इतिहास के लिए हमें अर्थ-शास्त्र, मेगस्थनीज की इंडिका और महाभारत के सभापर्व के कुछ अंशों से काफी सहायता मिलती है। उपरोक्त ग्रंथों के अध्ययन से पता चलता है कि जातक कथाओं और विनय-पिटक में वर्णित भारतीय वेश-भूषा इस युग में भी चालू रही। लेकिन इस युग की वेश-भूषा में हम कुछ बाहरी पहरावों को भी देखते है जिनसे पता चलता है कि भारतीयों का इस युग में विदेशियों से काफी संपर्क रहा। इस युग में एसे वस्त्रों के भी उल्लेख आये हैं जो बलख, ताजिकिस्तान और चीन से आते थे। इन सब से यह पता चलता है कि भारतीयों का विदेशियों से राजनैतिक और व्यापारिक दोनों संबंध था और इस युग में भारतीय अपने देश की चहारदीवारी से बाहर निकल कर अपनी सभ्यता और व्यापार का प्रसार कर रहे थे।

समूर और चमड़े

कौटिल्य अर्थशास्त्र मे तरह तरह के चमड़ों और समूरों का विशद वर्णन दिया हुआ है। ये समूर और चमड़े हिमालय से आते थे और इतने कीमती समझे जाते थे कि राजभंडार में रत्नों तथा और सुगंधित द्रव्यों के साथ रक्खे जाते थे। निम्नलिखित समूरों और चमडो की परिभाषाएँ श्री गणपति शास्त्री द्वारा संपादित अर्थशास्त्र से ली गयी हैं। श्री शामा शास्त्री के अंग्रेजी अनुवाद का भी संकते इसलिए कर दिया गया है कि उनके अनुवाद और श्री गणपति शास्त्री की टीका में काफी अंतर ह।

(१) कान्तानावक[१] —इस समूर का रंग मोर की गरदन की तरह हरा होता था और यह कान्तानावक प्रदेश से आता था। इस देश की स्थिति का पता नही है।

(२) प्रैयक[२] —यह समूर सफेद और नीले रंग का होता था और इस पर बुंदकियाँ और धारियां (लेखा विंदुचित्र) पड़ी होर्ती थीं। न० १-२ के चमड़ों की लंबाई आठ अंगुल होती थी।

इन समूरों के नाप से पता चलता है कि शायद वे छोटे जानवरों के समूर रहे हों अथवा एक बड़े चमड़े के आठ अंगुल के बराबर टुकड़े रहे हों।

द्वादशग्राम में तैयार किये हुए चमड़े

(३) बिसी[३] —इसका कोई खास रंग नहीं होता था और यह बालदार और चित्तीदार होता था। गणपति शास्त्री की टीका के अनुसार इस समूर में बहुत से रंगों के मेल होते थे और इसलिए यह कहना कठिन है कि उसका खास रंग क्या होता था। इस पर रोएं (दुहिलिका या दुहिलितिका) और चित्तियां होती थीं।

(४) महाबिसी[४] —यह समूर खुरखुरा और प्रायः सफेद होता था ३-४ नं० के चमड़े १२ अंगुल लंबे होते थे और हिमालय पर्वत पर बसे म्लेच्छों के द्वादशग्राम से आते थे।

निम्नलिखि समूर आरोह से आते थे जो टीका के अनुसार हिमालय प्रदेश में स्थित था[५]।

१—गणपति शास्त्री, अर्थशास्त्र, १, पृ० १६१; शामा शास्त्री, अ० शा० पृ० ९८

आगे हम गणपति शास्त्री द्वारा संपादित अर्थशास्त्र के लए ग० शा० और शामा शास्त्री के अर्थशास्त्र के अनुवाद के लिए शा० शा० का लघुप्रयोग करेंगे।

२—वही

३—वही

४—वही; शा० शा०; पृ० ८८, फु० नो० ५

५—शा० शा०, पृ० ८८, फु० नो० ६

(५) श्यामिका[६] —यह भूरे रग का बुंदीदार बिदुचित्रा समूर था।

(६) कालिका[७] —यह भूरे और फाख्तई रंग का समूर था।

नं० ५-६ के चमड़े ८ अंगूल लंबे होते थे।

(७) कदली[८] —यह खुराखुरा समूर दो हाथ चौड़ा और २४ अगुल लंबा होता था। महाभारत के अनुसार[९] कदली मृग के समूर, काले, भूरे और लाल रंग के होते थे। कम्बोज (आधुनिक ताजिकिस्तान) के निवासी राजसूय यज्ञ के अवसर पर कदली मृगचर्म युधिष्ठिर को भेंट देने लाये थे।

(८) चन्द्रोत्तरा[१०]—इस समूर पर गोल चित्तियाँ पड़ती थीं और इसका नाप कदली जैसा ही होता था।

(९) शाकुला[११]—इस पर गोल चित्तियाँ (कोठमंडल-चित्रा) पड़ती थी और इसमें कर्णिकाएं (कृतकर्णिकाजिनचित्रा) भी रहती थी। गणपति शास्त्री की टीका के अनुसार इसकी चौड़ाई तीन हाथ अथवा आठ अंगुल होती थी।

वाल्हीक देश (आधुनिक बलख) के समूर

(१०) सामूर[१२]—इसका रंग काला (अञ्जनवर्ण) होता था और यह ३६ अंगुल चौड़ा होता था। लगता है यह कोई रोएंदार समूर रहा होगा, क्योंकि आजदिन भी ऐसे चमड़े को हिंदी में समूर कहते हैं।

(११) चीनासि[१३]—चीन देश से आया हुआ समूर, यह लाली लिये हुए काले अथवा सफेदी मायल काले रंग का होता था।

६—ग० शा० १, पृ० १६१; शा० शा०, पृ० ८८

७—वही

८—ग० शा०, १, पृ० १६१-६२

९—महाभारत, २, ४५, १६

१०—ग० शा०, १, पृ० १६२

११—वही

१२—वही

१३—वही, प्रोफेसर नीलकंठ शास्त्री ने चीन और भारत के प्राचीनतम संबंध के उद्धरणो को इसलिए भली भांति जांचा है क्योकि इस जांच पड़ताल से अर्थशास्त्र के, जिसमें चीन का उल्लेख है, समय

(१२) सामूल[१४]—इसका समूर गेंहूं के रंग का होता था और इसकी लंबाई ३६ अंगुल होती थी।

ऊदबिलाव के चमड़े

(१३) सातीन[१५]—यह काले रंग का होता था।

(१४) नलतूला[१६]—इसका रंग नल नाम की घास के रेशों की तरह होता था।

(१५) वृत्रपुच्छ[१७]—चमड़ा भूरे रंग का होता था और उसमें ऊदबिलाव की गोल पूंछ भी रहती थी।

समूरों के चुनाव में कौटिल्य की राय है कि मुलायम चिकने और गझिन समूर ही सब से अच्छे होते हैं[१८]।

वनों के प्रकरण में[१९] और तरह के साधारण चमड़ों का उल्लेख अर्थशास्त्र में आया है। इनमें गोह, सेरक (एक विशेष प्रकार की गोह), चीता, सूंस, सिंह, व्याघ्र, हाथी, भैंसा, सुरा गाय और गयाल के चमड़े मुख्य थे। इन चमड़ों का बहुत से कामों में उपयोग होता था।

कंबल और शाल

इस प्रकरण के आरंभ में भेंड़ के ऊन से बने कंबल और शालों का वर्णन दिया गया है। भेंड़ के ऊन से बने शाल (आविकं) सफेद, गहरे लाल (शुद्धरक्त) या मिश्रित लाल (पक्षरक्त) रंग के होते थे[२०]।

अलंकार और कारीगरी के हिसाब से अर्थशास्त्र में शालों का अच्छा वर्णन आया है। शालों पर सुईकारी और अमलकारी रीति से अलंकार बनाने के निम्न लिखित तरीके दिये गये हैं—

(१) खचित[२१]—टीका में इस कारीगरी का अर्थ दिया हुआ है—

पर काफी प्रकाश पड़ता है, नीलकंठ शास्त्री, आई० एच० क्यू (१४), १९३८ (पृ० ३८० इत्यादि)। प्रो पलियो प्राचीन चीनी सबूतों के आधार पर (बी० ई० एफ० ई० ओ०, ४, पृ० १४६) इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि चीन नाम प्रथम त्सिन राजवंश से (ई० पू० २४९-२०७) निकला। अर्थशास्त्र के छपने पर विद्वानों में काफी बहस चली और जो विद्वान अर्थशास्त्र को मौर्य काल के बाद रखने के पक्ष में थे उन्होंने अपने मत के पक्ष में चीनपट्ट का उल्लेख किया है। याकोबी और लाउफर इस सिद्धान्त को नहीं मानते। प्रो० शास्त्री ने कुछ चीनी प्रमाण दे कर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि कम से कम ई० पू० दूसरी शताब्दी में चीन और भारत में संबंध था।

१४—१८—ग० शा० १, पृ० १९२

१९—ग० शा० १, पृ० २४८; शा० शा० पृ० ११९

२०—ग० शा० १, पृ० १९३, शा० शा० पृ० ८९

२१—वही

सूचिवान कर्म निष्पादितम्—सुइकारी और बुनाई से बना हुआ। इस संबंध में मैं पाठकों का ध्यान, कश्मीर की पुरानी शाल बीनने की पद्धति की ओर आकर्षित करना चाहता हूं क्योंकि अर्थशास्त्र में शाल बिनने की पद्धति और आधुनिक कश्मीर में शाल बिनने की पद्धति प्रायः एक सी है। कश्मीर में शाल बुनने के दो तर्के हैं तीली या कनीकार और अम्लीकार। तीलीकार में नक्काशियां करघे पर बुन ली जाती हैं। सुईकारी में बेल बूटियां सूई से काढ़ी जाती है। तात्पर्य यह है कि एक में बेल बूटियां बुनी जाती हैं और दूसरी में काढ़ी जाती है। लेकिन वास्तव में करघे पर फूल पत्तियां केवल बहुत ही महंगे जामेवारों पर बनती हैं, और उनमें भी थोड़ी बहुत कढ़ाई सूई की करनी ही पड़ती है। सत्य तो यह है कि कश्मीरी शाल कनीकार और अम्लीकार के संयोग से बनते हैं, केवल एक ही पद्धति से बने शाल बहुत कम मिलते हैं[२२]। अर्थशास्त्र में वर्णित खचित शाल में फूल पत्तियां या और अलंकार बुने अथवा काढ़े भी जाते थे। इसलिए प्राचीन खचित पद्धति आधुनिक कनीकार और अम्लीकार के मेल की द्योतक थी।

(२) वानचित्र[२३]—टीका में इसका अर्थ दिया हुआ है, 'वान कर्मणाकृत वैचित्र्यम्' 'करघे पर ही अलंकार बुनना'। इसमें कोई संदेह नहीं कि वानचित्र आधुनिक तिली या कनीकार पद्धति का ही प्राचीन संस्कृत नाम है।

(३) खंडसंघात्य[२४]—जुड़े हुए टुकड़ों पर बना शाल। टीका में दूसरी व्याख्या इस प्रकार की गयी है—खचितानां उतानां वा बहूनां खंडानां संघातेन निष्पादितम्—'बिने हुए अथवा काढ़े हुए टुकड़ों को जोड़ कर बना हुआ शाल, खंडसंघात्य का यह वर्णन कश्मीरी पट्टीदार रूमालों के वर्णन से बहुत मिलता है। इस पद्धति में जब अलंकार करघे पर बिनने होते हैं तब कई १२ से १८ इंच चौड़े टुकड़े ले लिए जाते हैं और उन पर फूल पत्तियों की नक्काशियां बुन दी जाती हैं। इन पट्टियों को मनचाहे नाप में काट लेते हैं और फिर जोड़ कर एक पूरी नक्काशी का रूप दे देते हैं और रूमाल के बीच में इसे साट देते हैं। किनारे की पट्टियां रेशमी होती हैं जिनमें बहुधा एक ताना पश्मीने का होता है। ये पट्टियां भारी और मजबूत होती हैं। शाल की रफल बहुत बढ़िया पश्मीने की होती हैं। ये शाल अम्लीकार भी होते हैं। इसके लिए बढ़िया पश्मीने के टुकड़े नकशे के मुताबिक काट लिये जाते हैं और फिर इन पर बेल बूटे काढ़ दिये जाते हैं। अम्लीकार और तीलीकार शालों में इतनी समानता होती है कि इनमें से एक दूसरे को अलग करना कठिन होता है[२५]।

(४) तंतुविच्छिन्न[२६]—टीकाकार ने इसकी परिभाषा दी है—अनुतविसृष्टैः तंतुभिः

२२—जार्ज वाट, इंडियन आर्ट एट देहली, १९०३, पृ० ३४४, कलकत्ता, १९०२

२३-२४—गणपति शास्त्री, वही, १, पृ० १९३; शा० शा० पृ० ८९

२५—जार्ज वाट, वही, पृ० ३४४-४५

मध्ये कृतविच्छेद्यं जालकोपयोगि च—'बिना बुने किनारे को बांध कर जाली बनाना।' लगता है वहां शाल के जालीदार झालर की ओर संकेत है । जाली अनबुने किनारे को बांध कर बनायी जाती है ।

दस तरह के ऊनी कपड़े

इनमें विशेषकर पशुओ के बिछाने के आस्तरणों का उल्लेख है । कंबल, केचलक, वारबाण भी ऊनी होते थे ।

१—कंबल[२७]—कंबल अथवा और तरह के ऊनी कपड़ों के लिए एक साधारण शब्द।

२—केचलक[२८]—अर्थशास्त्र की टीका में इसे कुचेलक भी पढ़ा गया है। श्री शामा शास्त्री ने कौचपक पाठ ठीक माना है। उनके अनुसार यह वस्त्र ग्वालों का कंबल था। शायद इसकी घोघी बना कर वे पहनते थे । गणपति शास्त्री की टीका में इसका अर्थ वन्य शिरस्त्राण अर्थात् जंगलियों के सिर ढाकने का वस्त्र किया है ।

३—कलमितिका[२९]—इस शब्द के पाठभेद कुलमितिका और कथमितिका भी हैं। गणपति शास्त्री इसका अर्थ गजास्तरण करते है । पर इस अर्थ तक वे कैसे पहुंचे यह कहना कठिन है । शायद कुथं और कुल या कल मे समानता मान लेने से यह भ्रम हुआ हो । अगर यह अर्थ ठीक है तो क(कु)लमितिका का शुद्ध पाठ कुथ होना चाहिए। इस दृष्टि से शामा शास्त्री का दिया हुआ कथमितिका शुद्ध पाठ के बहुत पास है । शायद ठीक पाठ कुथमितिका था जिसके अर्थ होते हैं ठीक नाप वाला गजास्तरण। लेकिन अगर कलं-कुलं पाठ ही ठीक मान लिया जाय तो इस शब्द की समानता फारसी कुलाह से की जा सकती है जिसके अर्थ टोपी होते है और इसी अर्थ में शामा शास्त्री द्वारा उल्लिखित टीकाकार ने इस शब्द के अर्थ किये हैं।

४—सौमितिका[३०]—शामा शास्त्री वाली टीका ने इसे बैल की पीठ पर बिछाने वाला एक आस्तरण माना है, लेकिन गणपति शास्त्री की टीका में इसका अर्थ दिया है 'कृष्णवर्णा गजपर्याणोपर्यास्तरणम्' अर्थात हाथी के हौदे पर बिछाने वाला आस्तरण।

५—तुरगास्तरण[३१]—घोड़े की जीन पर बिछाने वाला आस्तरण।

६—वर्णक[३२]—शामा शास्त्री की टीका में इस शब्द का अर्थ रंगीन कंबल दिया हुआ है।

२६-२८—गणपति शास्त्री, वही, १, पृ० १९३

२९—ग० शा०, १, पृ० १९३; शा० शा० पृ० ८५, फु० नो० ५

३०—शा० शा०, पृ० ८६, फु० नो० ६; ग० शा०, १, पृ० १९३

३१—वही, फु० नो० ७

३२—वही, फु० नो० ८

७—तलिच्छक[३३]—शामा शास्त्री की टीका में इसका अर्थ कंबल या पलंगपोश दिया हुआ है ।

८—वारबाण[३४]—शामा शास्त्री की टीका मे इसका अर्थ कोट दिया हुआ है ।

९—परिस्तोम[३५]—शामा शास्त्री की टीका में इसका अर्थ एक बड़ा कंबल है । गणपति शास्त्री की टीका में इस शब्द का विस्तारपूर्वक अर्थ दिया हुआ है। 'कंबलभेदो विस्तारचित्रः यो विस्तृतवदवभासस्ते निर्माणवैचित्र्याद् स इति व्याचक्षते, कुथ इति त्वेके' 'नक्काशीदार बड़ा कंबल, निर्माण वैचित्र्य से बड़ा लगने वाला कंबल, कोई इसे कुथ भी कहता है।' लगता है कि परिस्तोम का व्यवहार भूल के लिए होता था ।

(१०) समंतभद्रक[३६]—शामा शास्त्री की टीका के अनुसार यह हाथी के पीठ पर डाले जाने वाला कोई आस्तरण विशेष था । गणपति शास्त्री अपनी टीका मे इस शब्द का अर्थ करते हैं समंतभद्रकं सन्नाहपट्ट, गजादिघनत्राणं इत्यपरे—'समंतभद्र रुईदार बख्तर है, दूसरों के अनुसार हाथी की जांघों की रक्षा के लिए एक विशेष वस्त्र' ।

उपरोक्त दस तरह के आस्तरणों को आविक कहा गया है जिससे पता चलता है कि वे भेड़ के ऊन से बनते थे । कौटिल्य के अनुसार अच्छे कंबल चिकने सूक्ष्म और मुलायम होते थे[३७] ।

नैपाल देश में बने ऊनी कपड़े[३८] (नैपालकम्)

(१) भिङ्गिसी—यह कंबल आठ टुकड़ों को मिलाकर बनता था (अष्टप्लोति संघात्या)। इसका रंग काला होता था और यह बरसाती (वर्षबारणं) की तरह काम देता था ।

(२) अपसारक—गणपति शास्त्री की टीका में इसे काण्डपट कहा गया है जिससे पता चलता है कि आधुनिक पट्टी की तरह यह कोई ऊनी कपड़ा रहा हो ।

जंगली जानवरों के बालों से बने हुए कपड़े[३९]—यहां पर मृग शब्द से ठीक ठीक क्या तात्पर्य है यह नहीं कहा जा सकता । क्या इसका तात्पर्य हरिन के बालों अथवा ऐसे ही

३३—वही, फु० नो० ९
३४—वही, फु० नो० १०
३५—वही, फु० नो० ११
३६—वही, फु० नो० १२
३७—ग० शा०, १, पृ० १९३
३८—शा० शा० पृ० ९०; ग० शा० १, पृ० १९३
३९—शा० शा० पृ० ९०; ग० शा० १, पृ० १९४

और किसी जंगली जानवरों के बालों से है? जो भी हो इतना तो निश्चित सा है कि जंगली पशुओं के बाल से अब ऊनी कपड़े नहीं बनते ।

पाजामा, चादर, गद्दे इत्यादि

(१) संपुटिका[४०]—गणपति शास्त्री की टीका के अनुसार इसके अर्थ होते हैं:—संपुटिका जंघात्राणां सुक्थणाभिधानमिति क्वचिट्टीकादर्शे लिखितं, सन्थनमित्यन्यत्र लिखितं दृष्यते—'संपुटक जंघों को रक्षा के लिए एक वस्त्र विशेष होता था, कोई कोई टीकाकार इसे सुथना या संथन मानते हैं।' यह ध्यान देने योग्य बात है कि पाजामे के लिए आज दिन भी सुथना (संस्कृत, सूत्रनद्ध) शब्द का प्रयोग होता है ।

(२) चतुरश्रिका[४१]—गणपति शास्त्री की टीका इसका अर्थ देती है—चतुरश्रिका दशारहिता नवांगुलचिन्हित कोणा—बिना किनारे वाली चादर जिसमें नौ अंगुल नाप के कोनों पर काम किया होता था ।

(३) लंबरा[४२]—एक विशेष प्रकार की चादर (प्रच्छदपट विशेषः) ।

(४) कटवानक[४३]—गणपति शास्त्री की टीका के अनुसार इसकी व्याख्या है—कटवानकं स एवं स्थूलसूत्रो भाष्यक तद्देशीयानां प्रसिद्ध इति स्वामी—'कटवानक मोटे सूत से बनी एक चादर है जिसे देशी भाषा में भाष्यक कहते हैं, ऐसा स्वामी नाम के टीकाकार का कथन है' ।

(५) प्रावरक[४४]—गणपति शास्त्री की टीका में इस शब्द की व्याख्या है—पूर्वोक्त एवान्यतरतो दशो रोमावर्तकइति तद्देश प्रसिद्ध इति स्वामी, 'पूर्वोक्त तरह की शायद किनारे वाली चादर, 'स्वामी का कथन है कि देशी में इसे रोमावर्तक कहते थे।'

(६) सत्तलिका[४५]—शामा शास्त्री इसका अर्थ कालीन करते हैं। गणपति शास्त्री के अनुसार इसका अर्थ—तूलिकाख्य आस्तरण विशेषश्च—अर्थात् रुईदार गद्दा है।

दुकूल, क्षौम, पत्रोर्ण, कौशेय तथा सूती कपड़े

दुकूल वस्त्र—दुकूल एकजगह वंग देश में पैदा हुई रुई के लिए व्यवहार में आया है[४६] गो कि और जगह इसका अर्थ दुकूल वृक्ष की छालों के रेशे से बना वस्त्र है । अर्थशास्त्र से हमें दुकूल के बारे में निम्नलिखित बातों का पता चलता है[४७] ।

४०—ग० शा०, १, पृ० १९४

४१-४५—ग० शा०, १, पृ० १९४

४६—आचारांग सूत्र, १, ७, ५, १—टीकाकार कहता है गौडविषय विशिष्टकार्पासिक

४७—ग० शा०, १, पृ० १९४

दुकूल से कपड़ा बंगाल में बनता था (वाङ्गकं)। यह वस्त्र सफेद और मुलायम होता था। पौंड्रदेश[४८] में बने दुकूल वस्त्र नीले और चिकने होते थे और सुवर्णकुड्य[४९] में बने दुकूल ललाई लिए होते थे। निम्नलिखित तरीकों से दुकूल बिना जाता था—

१. मणिस्निग्धोदकवान—पहले सूत में (साधनद्रव्यं) नर्मी देकर फिर उसपर घोंटे (?) से पालिश करते थे और इसके बाद बुनते थे।

२. चतुरस्रकवान—इसकी बुनावट बराबर होती और कपड़ा बिना किसी रंग के होता था।

३. व्यामिश्रवान—सूत और रेशम मिलाकर बुना दुकूल। इस शब्द की दूसरी व्याख्या के अनुसार यह कपड़ा रंग बिरंगे सूत से बुना जाता था (वर्णान्तिराससृष्ट)।

बुनावट के अनुसार कपड़ों के निम्नलिखित भेद होते थे—

(१) एकांशुक—गणपति शास्त्री के अनुसार इसके ताने बाने में एक तार लगता था।

(२) अध्यर्धांशुक—इसमें ताना एक तार का होता था और बाना दो तारों का। बिनावट उलटी भी जा सकती थी।

(३) द्व्यंशुक—इसमें ताना बाना दो तार के होते थे (द्विगुणतन्यते द्विगुणमूयते)।

(४) त्र्यंशुक—ताने बाने में तीन तार लगते थे।

क्षौम[५०]—काशी और पुंड्र क्षौम के लिए प्रसिद्ध थे। गणपति शास्त्री की टीका के अनुसार दुकूल की तरह क्षौम की किस्में होती थीं पर टीकाकार की यह बात ठीक नहीं है कि क्षौम दुकूल का ही एक बहुत घटिया रूप था।

पत्रोर्ण[५१]—पत्रोर्ण से बने वस्त्रों के नाम भिन्न भिन्न देशों के नाम पर जहां वे बनते थे अवलंबित है। मगध में बना कपड़ा मागधिका पुंड्र में बना पौंडरीक और सुवर्णकुड्या में बना सौवर्णकुड्यका कहलाता था। पत्रोर्ण नाग, लिकुच, बकुल और वट वृक्षों की छालों से निकले रेशे से बनता था। नाग वृक्ष से बने पत्रोर्ण का कपड़ा पीला होता था, लकुच का गेहुएं रंग का, बकुल का सफेद रंग का तथा दूसरे वृक्षों के रेशों से बना कपड़ा मक्खन के रंग का होता था। इन सब में सुवर्णकुड्या में बना पत्रोर्ण सब से अधिक अच्छा होता था।

रेशमी कपड़े[५२]—अर्थशास्त्र में दो तरह के रेशमी कपड़ों का वर्णन है यथा—

४८—आधुनिक महास्थान से प्राचीन पौंड्रवर्धन की समानता मानी जाती है एपि० इंडि० २१, पृ० ८८

४९—सुवर्णकुड्या की पहचान सिल्वा लेवी चीनी किन-लिन से करते है जो कंबुज में दो हजार ली दूरी पर एक खाड़ी पर स्थित था। इस तरह यह देश मलयद्वीप पुंज में पड़ता है, एतूद आशियातीक, भा० २, पृ० ३६।

५०-५२—ग० शा०, १, पृ० १६५

१—कौशेय—टीका के अनुसार कोशकार देश में पैदा हुए रेशम से बना वस्त्र।

२—चीनपट्ट—चीन देश में बना रेशमी कपड़ा। टीका के अनुसार रेशमी कपड़ों के रंग पत्रोर्ण से बने कपड़ों के रंग जैसे होते थे।

सूती वस्त्र[५३]—अर्थशास्त्र में निम्नलिखित प्रकार के सूती वस्त्रों का उल्लेख है। इन सूती कपड़ों के नाम भिन्न भिन्न देशों के नाम पर जहां वे बुने जाते थे पड़े।

(१) माधुर—टीका का कहना है कि यह कपड़ा पांड्यों की राजधानी मधुरा (आधुनिक मदुरा) में बनता था।

(२) आपरांतक—आधुनिक कोंकण का बना कपड़ा।

(३) कलिंगक—कलिंग देश में बना कपड़ा। तामिल साहित्य से भी पता चलता है कि कलिंग के नाग बुनकर बहुत अच्छा कपड़ा बनाते थे।

(४) काशिक—काशि जनपद में बना सूती कपड़ा। जातकों और बौद्ध साहित्य में काशिकवस्त्र के बहुत से उल्लेख आये हैं लेकिन प्राय: सब अनुवादकों ने इसे रेशमी वस्त्र माना है। अर्थशास्त्र से यह बात निश्चित हो जाती है कि काशी अपने क्षौम और सूती वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध थी न कि रेशमी वस्त्रों के लिए।

(५) वांगक—पूर्वी बंगाल मे बना सूती कपड़ा। अर्थशास्त्र से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पूर्वी बंगाल में दुकूल और कपास दोनों से कपडे बनते थे।

(६) वात्सक—वत्सदेश (इलाहाबाद के आसपास) का बना सूती कपड़ा।

(७) माहिषक[५४]—महिषदेश का बना सूती कपड़ा। टीकाकार के अनुसार माहिषक कुतल देश की राजधानी थी।

वस्त्रों के संबंध में कोषाध्यक्ष के कर्तव्य तथा राजकीय कारखाने

सब तरह के चमड़ों, समूरों, ऊनी, सूती, रेशमी और रेशों से बने कपड़ों के वर्णन के बाद कौटिल्य कोषाध्यक्ष के, जिसके अधिकार में कपड़े रहते थे, कर्तव्यों पर प्रकाश डालता है। कौटिल्य के अनुसार कोषाध्यक्ष को भिन्न भिन्न ऋतुओं और अवसरों पर पहने जाने वाले (देशकालपरिभोग) कपड़ों का तथा कीड़े मकोड़ों और चूहों से उनकी रक्षा का ज्ञान होना आवश्यक था।[५५]

५३—वही

५४—वही, नर्मदा के किनारे महेसर से माहिषक की पहचान की जाती है।

५५—ग० शा०, १, पृ० १६६

हम ऊपर देख आये हैं कि इस देश के भिन्न भिन्न भागों में कौन कौन से कपड़े मौर्य काल में बनते थे । इन कपड़ों के सिवाय राज्य का निज का बुनने का कारखाना सूत्राध्यक्ष के जिम्मे होता था । वह कारखाने में अच्छे सूत कातने वाले, वर्म बनाने वाले, कपड़े और रस्सियां बनाने वाले कारीगर रखता था । विधवाएँ, अपाहिज, लड़कियाँ, भिखमगिने, वृद्धा वेश्याएं, जुर्माना अदा करने के लिए काम करती हुई स्त्रिया, वृद्धा राजपरिचारिकाएँ, तथा देवदासियां ऊन, वल्क, कपास, तूल, सन और क्षौम कातने के लिए रक्खी जाती थी[५६]।

कातने वालों का पारिश्रमिक उनके सूत की अच्छाई पर निर्भर होता था। जो कारीगर महीन सूत अच्छी तायदाद मे कात सकते थे उन्हें तेल, हर्रें की टिक्कियां और अंजन आंख और दिमाग को तर रखने के लिए तथा दूसरो में काम करने के उत्साह को बढ़ाने के लिए दी जाती थीं । छुट्टी के दिनों मे काम करने वाले कतकों को विशेष पारिश्रमिक मिलता था साथ ही साथ अच्छे साधन होते हुए भी उपयुक्त परिमाण में सूत न कातने वाले को पारिश्रमिक काट कर दंड भी दिया जाता था[५७]।

राज्य के कारखाने बुनकरों के अलावा कपड़ा बुनने का काम और दूसरे बुनकरों को भी ठीके पर (कृतकर्मप्रमाण) नियत पारिश्रमिक (कालवेतन) और कारीगरी के अनुसार (फलनिष्पत्तिभिः) दिया जाता था । कारीगरों के हस्तलाघव से अवगत होने के लिए अर्थ शास्त्र मे उनसे मित्रता बढ़ाने का भी आदेश है[५८] ।

सुगंधित द्रव्य, मालाएं तथा और बहुत से उपहार उत्साह बढ़ाने के लिए क्षौम, दुकूल, रेशम (कृमितान) पश्मीना (रांकवः) और सूती कपड़े बिनने वालों को दे दिये जाते थे[५९] ।

बुनाई के कारखाने में कपड़े, आस्तरण तथा परदे (प्रावरण) भी बनते थे[६०] ।

सूती जिरह बख्तर (कंकट) बनाने का काम चतुर कारीगरों के सुपुर्द किया जाता था[६१]। जो जन घर से बाहर निकलने में असमर्थ होते थे यथा प्रोषित विधवा (जिस स्त्री का

५६—ग० शा०, १, पृ० २७६; शा० शा० पृ० १३६

५७—ग० शा०, १, पृ० २७९; शा० शा० पृ० १३६

५८—वही

५९—ग० शा०, १, पृ० २८०, शा० शा०, पृ० १३७

६०—वही

६१—वही

पति विदेश गया हो), अपाहिज तथा वे लड़कियां जिन्हें स्वयं अपनी जीविका उपार्जित करनी पड़ती थी उन्हें कताई का काम उनके घर पर ही देने का प्रबंध था[६२]।

जो स्त्रियां प्रातःकाल सूत्रशाला में सूत लेकर हाजिर होती थीं उन्हें कताई की मजदूरी मिल जाती थी। इस आदान-प्रदान को भांडवेतनविनिमय कहते थे। सूत्रशाला में, उस समय केवल इतनी ही रोशनी होती थी जिससे सूत्राध्यक्ष सूत देख सके। स्त्रियों के देखने या बात करने पर सूत्राध्यक्ष दंड का अधिकारी होता था। काम की मजदूरी न देने पर अथवा अधबने काम की मजदूरी देने पर भी सूत्राध्यक्ष दंड का भागी होता था।[६३] कारखाने म काम न करने वालों को गहरा दंड दिया जाता था। जो स्त्रियाँ मजदूरी लेकर भी काम नहीं करती थीं उनके अँगूठे काट दिये जाते थे। माल-मसाला लेकर भाग जाने वालों को भी यही दंड मिलता था[६४]। अपराध के छुटाई बड़ाई के अनुपात में बुनकरों की मजदूरी जुरमाने के रूप में काट ली जाती थी[६५]।

शुल्काध्यक्ष के कर्त्तव्यों के वर्णन के प्रसंग में हमें उन वस्त्रों का उल्लेख मिलता है जिन पर मौर्ययुग में चुंगी लगती थी। ये वस्त्र क्षौम, दुकूल और रेशम के बने होते थे। इनके सिवाय दुकूल, क्षौम, आस्तरण, प्रावरण, रेशम (कृमिजात), ऊनी कंबल और पश्मीना बनाने के साधनों पर भी उनके मूल्य की १/१० से लेकर १/१५ तक चुगी लगती थी[६६]।

वस्त्र, सूत, बल्कल, चमड़ा और कपास पर चुगी उनके मूल्य की १/२० से १/२५ तक होती थी[६७]।

कपड़े रंगने के लिए रंग किंशुक, कुसुंभ और कुंकुम से बनते थे। गणपति शास्त्री की टीका में इन पुष्पों को वस्त्रादिरंजनसाधन कहा है।[६८]

विदेशों से आने वाले कपड़े

हम ऊपर कह आए हैं कि मौर्य काल मे भारतवर्ष में वस्त्रों के नाम उनके प्राप्ति स्थान पर भी पड़ जाते थे। पर कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इस बात का कम उल्लेख है कि भारतवर्ष की आधुनिक सीमा के बाहर से यहाँ कौन से कपड़े आते थे। महाभारत के सभा पर्व से इस प्रश्न पर काफी प्रकाश पड़ता है। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के अवसर पर

६२—वही

६३—शा० शा० १, पृ० २८०-८१

६४-६५—ग० शा० १, पृ० २८१; शा० शा०, पृ० १३६

६६-६७—ग० शा० १, पृ० २७६-२७७, शा० शा० पृ० १३५

६८—ग० शा० १, पृ० २४७

भारतवर्ष के अनेक गणतंत्र और राजे तथा उसके सीमा पर बसने वाली जातियां उपहार लेकर आयीं। इन उपायनों में उन प्रदेशों के बने वस्त्र भी थे जिनसे पता चलता है कि ई० पू० भारत में विदेशों से अच्छे से अच्छे कपड़े आते थे और भारत, चीन और अफगानिस्तान का व्यापारिक संबंध बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। अब हमें देखना चाहिए कि किन किन देशों से यहां वस्त्र आते थे।

कंबोज देश के कपड़े

प्राचीन कंबोज की पहचान सोवियट रूस में स्थित ताजिकिस्तान से की जाती है। यहां से भेड़ के ऊन और लोमड़ी के रोएं से बने और सुनहले काम किये हुए वस्त्र (ऐडांश्चैलान् वार्षदंशान्जातारूपपरिष्कृतान्)[६९], ऊनी चादरे और चमड़े (प्रावाराजिनमुख्यांश्च)[७०] बेशकीमती दुशाले (परार्ध्यानपिकंबलान्)[७१] और कदलीमृग की खाले[७२] (कदली मृगमोकानि), राजसूय यज्ञ में आयीं। कदलीमृग का उल्लेख कौटिल्य ने किया है।

परिसिंधु देश के कपड़े—बलूचिस्तान के बाशिंदे राजसूय में अपने देश से कंबल और बकरे और भेड़ों की खालें लाये[७३]।

वाह्लीक और चीन के बने वस्त्र[७४]

ये वस्त्र ठीक नाप के, खुशनुमा रंग वाले और स्पर्श करने में मुलायम होते थे (प्रमाण रागस्पर्शाढ्यं)। उपरोक्त देशों से भेड़ के ऊन, पश्म (रांकव), रेशम (कीटज) और पट्ट (पट्टज) के बने कपड़े भी आये। यहां रांकव शब्द की व्याख्या आवश्यक है। कोशों में[७५] रंकु का अर्थ एक पशु विशेष मिलता है। लेकिन यह पशु कहां होता था इस संबंध की जानकारी कोशकारों को नहीं थी। खोज करने से पता चलता है 'रकु' पामीर पर रहने वाले रंग नामके बकरे का संस्कृत रूप है। इसके पश्म से बहुत ही अच्छी चादरे बनती है[७६]। महाभारत[७७] के एक और उल्लेख से पता चलता है रंकु के पश्म से नमदे भी (रांकवकट) बनते थे।

चीन के बने रेशमी कपड़े

इस काल में भारतीय चीनी रेशम के वस्त्र से भी अवगत हो चुके थे। इतने प्राचीन

६९-७०—सभापर्व, ४७, ३
७१-७२—सभापर्व, ४५, १९
७३—सभापर्व, ४७, ११
७४—सभापर्व, ४७, २२
७५—अमरकोश, २, ६, १११
७६—वुड, ए जर्नी टुदी सोर्स ऑफ आक्सस, इंट्रोडक्शन, पृ० ५७, न्यू एडिशन १८७२
७७—महाभारत, ३, २२५, ६

काल में चीन के रेशमी कपड़े भारत में आने से हमें आश्चर्य न होना चाहिए। मध्य एशिया के प्राचीन पथ पर बने हुए एक चीनी रक्षागृह से मिला हुआ एक रेशमी थान जिस पर ई० पू० पहली शताब्दी की ब्राह्मी में एक पुरजा लगा हुआ था इस बात का द्योतक है कि चीनी रेशमी कपड़े की खोज में भारतीय व्यापारी चीन की सीमा तक इतने प्राचीन काल में पहुंच चुके थे[७८]।

मध्य एशिया और अफगानिस्तान के दूसरे कपड़े

उपरोक्त देशों से उपायनरूप में नमदे (कुट्टीकृत)[७९],कमल के रंग के हजारो ऊनी कपड़े, मुलायम रेशमी कपड़े तथा मेमनों की खालें भी आयीं। आज दिन भी पूर्वी अफगानिस्तान की मेमनों की खालें मशहूर हैं। चीनी चमड़े और समूरों की ख्याति ईसा की पहिली शताब्दी तक थी। पेरिप्लस[८०] के अनुसार सिंध नदीपर बाब्रिकन नाम के बंदरगाह से चीनी चमड़े और समूर बाहर भेजे जाते थे। प्लिनी[८१] के अनुसार चीन के रंगीन चमड़े काफी कीमती होते थे और आराइश के काम में इनका काफी उपयोग होता था। कंबलों का रंग कमल जैसा कहने से प्रतीत होता है कि लेखक का संकेत शायद ऊपरी स्वात के बने कंबलों से है। महावणिज-जातक में[८२] उड्डीयान के बने कंबल काफी कीमती माने गये हैं। आज दिन भी तोरवाल में ठोक कर बिने चटक रंग कंबल सीमाप्रान्त और पंजाब में स्वाती कंबल नाम से मशहूर हैं।[८३]

वंग (पूर्वी बङ्गाल), कलिंग (आधुनिक ओड़ीसा में वैतरणी नदी के दक्षिण विजगापतन तक फैला हुआ प्रदेश), ताम्रलिप्ति (आधुनिक तामलुक) और पुंड्र (मालदह, पुर्निया, दिनाजपुर और राजशाही के कुछ भाग) के बने कपड़े।

दुकूल[८४]—शायद रोमन लेखकों का बाइसास ही दुकूल था[८५]।

कौशिक[८६]—ऐसा पता चलता है कि बहुत प्राचीन काल में भी बंगाल में रेशम पैदा होने लग गया था। रामायण[८७] (कश्मीरी पाठ) में कोशकार देश का उल्लेख है। टीकाकार

७८—सर ऑरल स्टाइन, एशिया मेजर, हर्थ एनिवर्सरी वॉलुम १९२३, पृ० ३६७-३७२

७९—सभापर्व, ४७, २३

८०—शोफ, दि पेरिप्लस ऑफ दि एरीथ्रियन सी, ३९, ६

८१—प्लिनी, नेचुरल हिस्ट्री, १२, ३१; ३४, १४५

८२—जातक (४९३), ४, पृ० ३५२

८३—स्टाइन, ऑन अलक्जेंडर्स ट्रेक ट इंडस, पृ० ८९

८४—महाभारत, २।४८।१७

८५—वार्मिंगटन, कामर्स बिटवीन इंडिया एंड रोमन एंपायर, पृ० २१२

८६—महाभारत, २।४८।१७

८७—सिल्वँ लेवी, जून लि असिआतीक, जनवरी-फरवरी, १९१८, पृ० २१२

राम के मत से इस देश का नाम इसलिए पड़ा कि वहां रेशम के कोश काफी तादाद में पैदा होते थे। किष्किधाकांड के बंगाली पाठ के अनुसार कोशकार देश लौहित्य नदी (ब्रह्मपुत्र) के बाद पड़ता है और इसलिए इस बात की पूरी संभावना है कि कोशकार देश कहीं पूर्वी बगाल या आसाम में था।

पत्रोर्ण[८८]—कोश मे इस शब्द का अर्थ रेशमी या सूती कपड़ा दिया हुआ है। अगर पत्रोर्ण का अर्थ सूती कपड़ा ठीक है तो पेरिप्लस का यह कथन ठीक है कि पहली सदी में गेजेटिक नाम की सब से अच्छी मलमल ढाका के आसपास बनती थी[८९]। पर इसमें शक है कि पत्रोर्ण सूती कपड़ा था।

कलिग देश के नाग बुनकर अपने बढ़िया कपड़ो के लिए प्रसिद्ध थे। उनकी ख्याति इतनी बढ़ी हुई थी कि तामिल में कलिग शब्द कपड़े का पर्यायवाची बन गया[९०]।

प्रावर[९१]—इस शब्द का प्रयोग दुपट्टे अथवा चादर के अर्थ में होता था। सांची के एक लेख[९२] से ऐसा पता चलता है कि दुपट्टे बेचने वालों का (पारिवारिक) अपना स्वतंत्र व्यवसाय होता था।

यूनानी लेखकों के अनुसार भारतीय वेश-भूषा

हम अनेक प्रकार के वस्त्रों का वर्णन अर्थशास्त्र के आधार पर कर आये है, पर उस समय की वेश-भूषा क्या थी इसका उल्लेख हमे यूनानी ऐतिहासिकों से मिलता है। एरियन[९३] का कहना है कि भारतवासी सूती कपड़े पहनते थे और उनकी धोती आधे पैर तक पहुंचती थी। उनके सिर पर पड़ी चादर उनके कंधों को ढकती थी। स्त्राबो[९४] के अनुसार भारतीय क्षौम और कपास के बने सफेद कपड़े पहनते थे। भारतीयों के वस्त्र हमेशा सादे नही होते थे इसका पता स्त्राबो के एक दूसरे उल्लेख से, जिसमें कहा गया है कि भारतीयों के वस्त्र सुनहरे काम वाले और रत्नजटित भी होते थे, लगता है।

८८—वही,
८९—शोफ, वही, पृ० ४६
९०—कनकसभाई, दि तामिलस् एट्टीन हंड्रड इयर्स एगो, पृ० ४५
९१—महाभारत, २।४८।१७
९२—मार्शल, सांची, १, पृ० ३१३
९३—इंडिका, १६
९४—जियोग्राफी, १५।१।७१

पाँचवाँ अध्याय

शुंगयुग की वेश-भूषा

(ई० पू० दूसरी सदी)

मौर्ययुग के अंत और शुगयुग के आरंभिक वेश-विन्यास पर परखम और बरोदा (मथुरा म्यूजियम) से मिली यक्षमूर्तियो और दीदरगंज की यक्षिणी मूर्ति से काफी प्रकाश पड़ता है । इन मूर्तियों का समय विवादास्पद है पर ऐसा माना जाता है कि शायद ये मूर्तिया मौर्य युग के अंतिम चरण अथवा शुग युग के आरंभ मे बनी हों। ई० पू० पहली दूसरी शताब्दियों की वेश-भूषा पर पूरा प्रकाश भरहुत और सांची के अर्धचित्रों से पड़ता है।

परखम की यक्षमूर्ति (आ० १३)[१] एक धोती पहने है जो आगे चुन्नटदार है। धोती कमरबंद से बंधी है जिसके दोनों छोर घुटनो पर लटकते दिखलाये गये है। एक दुपट्टा छाती पर बंधा है जिसका फंदेदार छोर पेट पर लटक रहा है। बड़ोदे की यक्ष मूर्ति भी ऐसा ही दुपट्टा पहने दिखलायी गयी है[२] ।

इंडियन म्यूजियम की यक्षमूर्तियां जिन्हें श्री मजूमदार ने[३] मौर्यकाल की ठहराया है परखम यक्ष जैसा ही कपड़ा पहने हैं। धोती फंदेदार कमरबंद से बंधी है जिसके दो फूंदनेदार छोर सामने लटक रहे हैं। पिछली ओर धोती जमीन तक पहुंचती है लेकिन अगली ओर नंगे पैर दिखलाने के लिए वह जरा उठी हुई दिखलायी गयी है । एक चौड़ा दुपट्टा (वैकक्ष्य) बांएं कंधे से हो कर दाहिने चूतर तक पहुंचता है। कंकण के पास यह फंदेदार है और पीछे लहराता हुआ है (आ० १४)।

उपरोक्त यक्ष मूर्तियां पगडी नही पहने है लेकिन इसी काल का सारनाथ से मिला एक शिर मुगलो जैसी अटपटी पगड़ी पहने है (आ० १५)[४] ।

मौर्य युग के अंतिम युग मे स्त्रियों की वेश-भूषा का पता बेसनगर और दीदारगंज से मिली यक्षिणियों की मूर्तियों से लगता है। दीदारगंज की यक्षी एड़ियों तक पहुंचती एक

१-२—कुमारस्वामी, हिस्ट्री ऑफ इंडियन एंड इंडोनेशियन आर्ट, प्ले० ५, १५

३—मजूमदार, ए गाइड टु दि स्कल्पचर्स इन इंडियन म्यूजियम, पृ० ६

४—कुमारस्वामी, वही, प्ले० ६, चि० १८

साड़ी, जिस पर एक पंचलड़ी करधनी है पहने है। साड़ी से खोंसे हुए पटके का जिसे बौद्ध साहित्य मे फासुका कहा गया है, एक छोर फदेदार हैं। एक बटा हुआ दुपट्टा लटक रहा है (आ० १६)। बेसनगर[५] की यक्षिणीमूर्ति घुटने के जरा नीचे पहुंचती हुई साड़ी और उसके ऊपर एक पंचलड़ी करधनी और फदेदार कमरबद जिसका एक फंदा नीचे लटक रहा है, पहने हुए है। साड़ी में खुंसे हुए पटके में चूंदन पड़ी हुई है[६] (आ० १७)।

शुंगयुग में पुरुषों की वेश-भूषा

भरहुत (ई० पू० १३५-१५०) के अर्ध चित्रों में हमें तत्कालीन भारतीय वेश-भूषा का एक अच्छा चित्र मिलता है। आदमी धोती पहनते थे जिसका एक छोर कमर में लपेट लिया जाता था और लांग पीछे खोंस ली जाती थी। भरहुत के अर्धचित्रों में धोती, घुटनों के जरा नीचे और पैरों के मध्य भाग तक पहुंचती दिखलायी गयी है। धोती बिना किसी अलंकार के सादी होती थी। धोती के साथ लोग दुपट्टे, कमरबद, पटके और पगड़ियां भी पहनते थे। नीचे के विवरणों से ई० पू० दूसरी शताब्दी मे भारतीयों की वेश-भूषा स्पष्ट हो जायगी—

१—कामदार साफा, घुटने के नीचे लटकती हुई चपकी धोती, बटी हुई रस्सियों से बना कमरबंद जिसके दोनों छोर लटक रहे हैं (चुल्लवग में ऐसे कमरबंद को कलावुक कहा गया है); पटका जो पट्टियों पर सिली गुरियों से बना मालूम पड़ता है; बदन का ऊपरी भाग नंगा है; बांयें कन्धे पर पड़े हुए दुपट्टे का एक छोर पीछे लटक रहा है[७] (आ० १८)।✓

२—घुटने की नीचे तक लटकती धोती, सकरमुद्धीदार कमरबंद जिसके दोनों छोरों में छीरें हैं; चुननदार एंड़ियों तक लटकता हुआ पटका; दुपट्टा खिसक कर कमर पर आ गया है[८] (आ० १९)।

३—कामदार पगड़ी, दुपट्टा, पट्टी का बना कमरबंद, पटका (आ० २०)[९]।

४—पगड़ी, गले में ढीला दुपट्टा जिसके लटकते हुए छोर तिकोने कटे हैं, कमरबंद के दोनों छोर एक बकसुए से निकलते दिखाये गये[१०] (आ० २१)।

५—वही, प्लें० ५, १७
६—वही, प्लें० ३, २
७—कनिघम, भरहुत, प्लें० २२
८—वही, प्लें० २१
९—वही, प्लें० १४
१०—वही, प्लें० २२, २

१६
१७
१८
२०
२१
२२
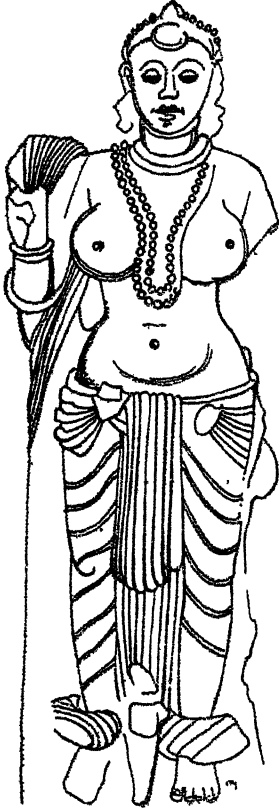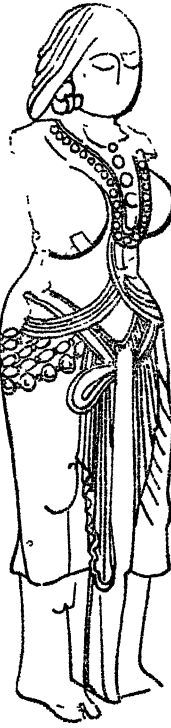
दक्षिण भारत में पुरुषों की वेश-भूषा

ई० पू० दूसरी सदी मे दक्षिण भारत के लोगों की वेश-भूषा मध्यभारत वालो जैसी ही थी केवल उसमें कुछ स्थानिक भिन्नताएं अवश्य थी। नीचे लिखे विवरणों से दक्षिणी पोशाक का पता चल जायगा—

१—अटपटी, पेंचीदार पगड़ी, घुटने तक पहुंचती चूननदार धोती, कमर फेटे से लिपटा हुआ पटके का कुछ भाग (आ० २२)[११]।

२—यक्ष (अमरावती), धोतो, रस्सी का बना कमरबंद जिसके दोनों छोरों पर फुंदने हैं कमरपेटी से लिपटा है[१२]।

शुंगयुग की पगड़ियां

शुंग युग में पगड़ियां दो तरह से बांधी जाती थी। एक में[१३] (आ० २३) बाल का सिर पर जूड़ा बांध दिया जाता था और पगड़ी के दो फेटे मस्तक के ठीक बीच से ले जाकर जूड़ा ढक दिया जाता था और उसके दोनों छोर खोंस दिये जाते थे। भारी पगड़ी में पूरा सिर ढक दिया जाता था।

भरहुत के अर्ध चित्रों में हम निम्न लिखित तरह की पगड़ियां देख सकते हैं

१—लट्टूदार साफा, बुंदकी और पत्तियों का काम, लट्टू में बेल बनी है (आ० २४)[१४]।

२—भरभरा साफा जिसमें पेंची और झालर है (आ० २५)[१५]।

३—लट्टूदार भारी साफा जिसमें शायद झालर लगी थी (आ० २६)[१६]।

४—लट्टू के ऊपर चूनट, पीछे की ओर उभार (आ० २७)[१७]।

५—अटपटा साफा, ऊपर उठती झालर (आ० २८)[१८]।

६—हलका साफा, बांयीं ओर की तहें कान तक आ गयी है (आ० २९)[१९]।

७—झालरदार सादा साफा[२०]।

११—बर्जेस, बुद्धिस्ट स्तूप ऑफ अमरावती एंड जगय्यपेट, प्ले० ५३

१२—शिवराममूर्ति, अमरावती स्कल्पचर्स इन मद्रास म्यूजियम, प्ले० १८, १

१३—कनिंघम् भरहुत, प्ले० १५

१४—वही, प्ले० ३३, ३

१५—वही, प्ले० ३३, ४

१६—वही, प्ले० २४

१७—वही, प्ले० २१

१८—वही, प्ले० ५७

१९-२०—वही
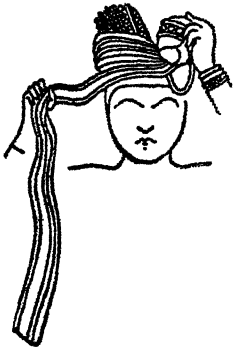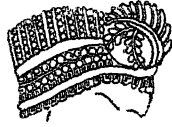
२३
२४
२५
२६
२७
२८
२९
३०
३१
३२
३३
३४
३५
३६
३७
३८
३९
४०
४१
४२

८—अटपटी लट्टूदार पाग जिसपर चौफुलिया बनी है[२१]।

९—छोटा झालरदार साफा, बायीं कनपटी के ऊपर तीन पेंच (आ० ३०)[२२]।

१०—अटपटी लट्टूदार पगड़ी (आ० ३१)[२३]।

११—अटपटी पगड़ी, छोर ऊपर निकला हुआ (आ० ३२)[२४]।

१२—पगड़ी की झालर कान ढक रही है (आ० ३३)[२५]।

१३—पेंची से सजी चूनरदार पगड़ी (आ० ३४)[२६]।

१४—कामदार साफा, जिसपर फूल पत्तियां बनी हैं (आ० ३५)[२७]।

१५—कामदार साफे की दूसरी तरह (आ० ३६)[२८]।

१६—आभूषणयुक्त पगड़ी (आ० ३७)[२९]।

१७—झालरदार पगड़ी, एक छोर पंखानुमा है (आ० ३८)[३०]।

१८—लंबोतरा साफा पीछे गरारीदार अलंकार (आ० ३९)[३१]।

१९—सादे साफे पर वृत्ताकार और पुष्पालंकार (आ० ४०)[३२]।

२०—पगड़ी जिसका ऊपरी भाग पान के आकार का है (आ० ४१)[३३]।

२१—साफा जिसके किनारे पर बेल बनी है (आ० ४२)[३४]।

२२—भारी कामदार साफा (आ० ४३)[३५]।

२१—वही, प्ले० ४८
२२-२३—वही, प्ले० ४४
२४—वही, प्ले० ३४
२५—वही, प्ले० २५, ३
२६—वही
२७—वही, २५, १
२८—वही, प्ले० २४, २
२९—वही, प्ले० २१
३०—वही, प्ले० २०
३१—वही, प्ले० १४
३२—वही, प्ले० १७
३३—वही, प्ले० ३०
३४—वही, प्ले० ३२, ४
३५—वही, प्ले० २२

२३—एक तरफ उभरा कामदार साफा (आ० ४४)[३६]।

२४—चौखूटा साफा जिसके दोनों कोर कान पर आ गये हैं (आ० ४५)[३७]।

शुंगयुग के सिले वस्त्र

यह तो निश्चित है कि शुगयुग में सिले कपड़े पहने जाते थे, लेकिन सिले कपड़े इस युग के अर्ध चित्रों मे कम दिखलाये गये हैं। इसका यह कारण भी हो सकता है कि सिले कपड़ों से अंग ढक देने से उसकी गठन खूबी से नही दिखलायी जा सकती थी। भरहुत के अर्ध चित्रों में कोटनुमा वस्त्र दो जगह दिखलाया गया है। एक जगह वटवृक्ष की पूजा करते हुए राजा का अनुचर कोट पहने दिखाया गया है[३८]। कोट का छोर गुलाई लिये है और उसका गला, बाहें, मोरियां और किनारे किसी फीते से अलंकृत हैं। कोट के साथ अनुचर धोती और साफा भी पहने है। एक द्वारपाल जिसकी तुलना डा० बरुआ उत्तरापथ के देवता पिहिर से करते हैं[३९] (आ० ४६) आधी जंघा तक पहुंचता एक पूरी बांह का कोट पहने है। कोट में दो जगह बंद लगे हैं। गले के बंद में एकहरी सकरमुद्धी और पेट के बंद पर दोहरी सकरमुद्धी लगी है। इसका बाल ललाट पर एक चौड़ी पट्टी से बंधा है। धोती से पटका नीचे लटक रहा है। पैरों में पूरे बूट है। बायीं ओर परतले से एक कटार लटक रही है। कम से कम पोशाक से तो यह द्वारपाल गंधार का निवासी लगता है।

कुछ शुंग कालीन मिट्टी के खिलौनों से यह भी पता चलता है कि उस युग में कोट जैसे कपड़े पहनने की चलन किसी न किसी रूप में थी। भीटा से मिली एक मिट्टी की मनुष्य मूर्ति (आ० ४७)[४०] चुगे की तरह पूरे बांह का एक कोट पहरे है जो सामने से खुला है और जिसमें बांधने के लिए सकरमुद्धी लगी है।

शुग युग मे कंचुक पहनने की भी प्रथा थी। सांची के स्तूप नं० २ पर एक सिह से लड़ते हुए सिपाही की आकृति है। यह सिपाही आधे बांह का घुटनों तक लटकता कंचुक पहने है जो कमरबंद से बधा है। इसके सिर पर फुलनेदार टोपी और पैरों में बूट हैं (आ० ४८)[४१]। इसी स्तूप के आलंबनबाह पर एक मनुष्य चूननदार कंचुक पहने दिखाया गया है[४२]।

३६—वही, प्ले० २२

३७—वही, प्ले० २०

३८—बरुआ, भरहुत, २, प्ले० २०

३९—वही, प्ले० ६२, ७१

४०—ए० एस० आर०, १९११-१२, पृ० १-७४, प्ले० २३, १९

४१—कुमारस्वामी, वही, प्ले० १४, ५१

४२—मार्शल, सांची, भा० ३, प्ले० ७८, १३ बी

स्त्रियों की वेश-भूषा

भरहुत के अर्धचित्रों मे स्त्रियाँ पुरुषो की तरह धोती अथवा साड़ी पहरे दिखलायी गयी है। आधुनिक साड़ी तो एंड़ी तक पहुंचती है पर भरहुत के अर्धचित्रों मे शायद ही कभी वह घुटनों के नीचे पहुंचती है; इसमे चूनन भी होती है। साड़ी भारी भरकम करधनी और कमरबंद से बंधी होती है। इस कमरबंद के फूदनेदार किनारे एक ओर लटकते है। कमरबंद से खुसे दोनों पैरो के बीच मे लटकते पटके पहनने की भी प्रथा थी। पटका साधारणतः लहरियादार होता, पर भारी पटका मनके पिरो कर भी बनता था। स्त्रियो के शरीर का ऊपरी भाग खुला हुआ दिखलाया गया है पर यक्षिणी चंदा के दाहिने स्तन के नीचे एक मलमली चद्दर की तह के निशान है। उनके सिर कामदार ओढ़नी से ढंके होते थे जो कामदार होती थी। स्त्रियां कभी कभी लीलावश पगड़ी भी पहन लेती थी।

यक्षिणी चंदा की वेश-भूषा (आ० ४९)[४३]

चंदा की वेश-भूषा से शुंग युग की एक संभ्रांत नारी की वेश-भूषा का पता चलता है। उसकी धोती कमर तक पहुंचती है। इस पर खरबुजिया मनकों और चौखूटी तख्तियों से बनी एक सतलड़ी करधनी है। कमरबंद फुल्लों और पजकों से सजा है और इसके किनारों पर दानेदार बेल बनी है। पटका लहरियादार है। उसके शरीर का ऊपरी भाग अनावृत है पर दाहिने स्तन के नीचे की रेघारियां शायद पतले चादर की द्योतक है, बाएं कंधे से मोती की बद्धी छाती पर जनेऊ की तरह पड़ी है। गले में छलड़ी तौक है जिसकी पहली लड़ में पत्र, अंकुश और श्रीवत्स के आकार के टिकरे हैं। दूसरी लड़ गोल मनकों की है। और लड़ें गोल तथा लंबोतरे मनकों से बनी है। गले में स्तनों के बीच लटकती हुई टिकरेदार मोहनमाला है। कानो में वप्रकुंडल (घुमावदार) है तथा मांग में सीसमांग। सिर एक झीनी ओढ़नी से, जिसके दोनों पल्ले एक दूसरे को पार करते है, ढका है। इस ओढ़नी में चौड़े किनारे है जिन पर चौफुलिया और सहरेसा की बेलें बनी हैं। हाथों मे कड़े और चूड़ियां हैं। चोटी बेलदार फीते से गुथी है।

यक्षी (आ० ५०)[४४]। इस यक्षी के आकार की कल्पना भी शुग कालीन नारी मूर्ति को लेकर हुई है। यक्षी के कमर में एक पतली साड़ी है जिसपर मुद्धीदार कमरबंद, करधनी और योगपट्ट हैं। कमरबंद फुल्ले और पंजकों से सजा है और उसके किनारे बुंदकीदार हैं। इसके छोर पर चौड़ी छीर है। चौलड़ी करधनी की प्रत्येक लड़ियाँ भिन्न हैं। एक चौखूटी तख्तियों से बनी है, दूसरी मौलसरी के फूल के आकार वाले दानों से, तीसरी खरबूजेदार मनकों से

४३—कनिघम, वही 22.

४४—कनिघम, भरहुत, प्ले० ५२
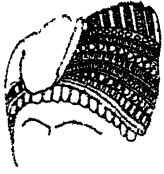
४३ ४४ ४५ ४७ ४६ ४८ ४९

और चौथी गोल मनकों से। कमर पर कमनीयता के लिए एक बटा हुआ तिरछा दुपट्टा बांध लिया गया है। पैर में चूड़ियाँ पड़ी हैं। दाहिने कंधे से होती हुई बद्धी की लड़ें छाती के आर-पार जाती हैं। बद्धी खड़े और पड़े मनकों से बनी मालूम पड़ती है। गले में चौलड़ा कंठा है। एक दूसरे माला की लटकन खारदार मणियों और त्रिरत्न से बनी है। कानों में तख्तीदार दोहरे कुंडल हैं। हाथ में कंगन और अंगुलियों में अंगूठियाँ हैं। ललाट पर फुल्ले के आकार की टिकुली है। गालों पर पत्रभंग बना है। चोटी सहरेसा और मौलसरी के फूलों के अलंकारों से सुसज्जित पतले फीते से गुथी है।

यक्षी चूलकोका (आ० ५१)[४५]—इसकी साड़ी घुटने तक की है। कमर पर गोल तख्तियों की बनी करधनी और मुद्धीदार कमरबंद है, जिसके दोनों सिरों पर छीरें हैं। पटका कड़े खानेदार कपड़े का बना मालूम पड़ता है। सिर ओढ़नी से ढका है।

सुदर्शना यक्षी—सिर पर ओढ़नी, घुटने के नीचे तक पहुंचती धोती, फूलदार पेटी, चूननदार पटका (आ० ५२)[४६]।

यक्षी—सिर पर ओढ़नी, हाथों पर सरकता दुपट्टा, बटा कमरबंद, मनकों से बना पटका (आ० ५३)[४७]।

सिरिमा देवता—पंजक से सजा कमरबंद, सतलड़ी करधनी, चूननदार करीने से पहनी गयी साड़ी (आ० ५४)[४८]।

नर्तकी की वेश-भूषा

सिर पर साफा, साड़ी मुद्धीदार कमरबंद में बंधी है (आ० ५५)[४९]।

एक साधारण स्त्री की पोशाक

सादी साड़ी पर कमरबंद और करधनी (आ० ५६)[५०]।

क्षुद्रघंटिका—कभी कभी स्त्रियां साडी पर घंटियों से बनी मेखलाएं पहनती थीं (आ० ५७)[५१]।

४५—कनिंघम, वही, प्ले० २३
४६—वही, प्ले० २३
४७—वही, बटनमारा का खंभा
४८—कनिंघम, वही, प्ले० ५१, २
४९—वही, प्ले० १५
५०—वही, प्ले० ८
५१—वही, प्ले० ५१
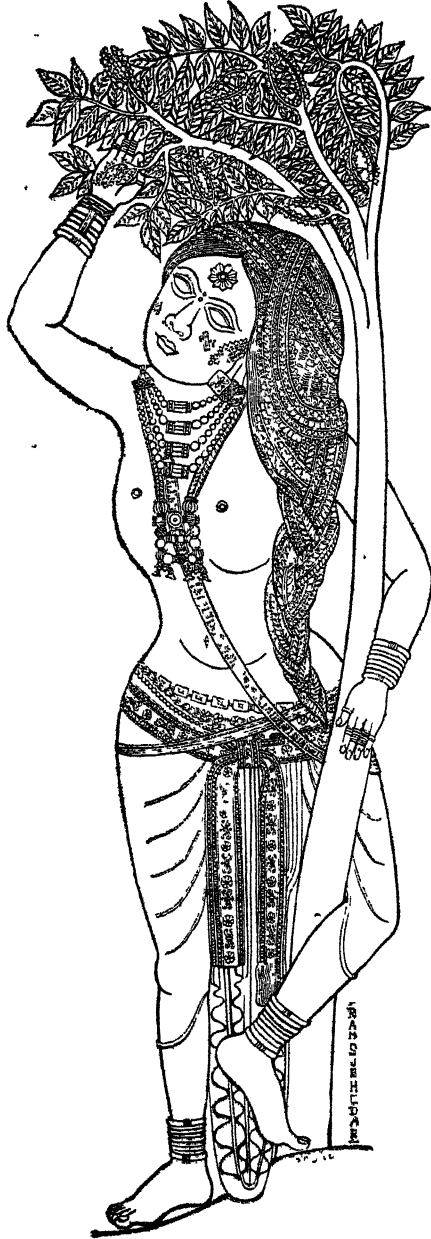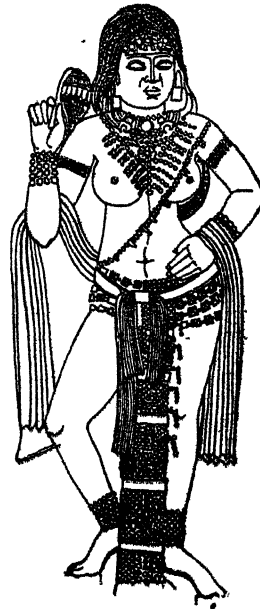
५१
५२
५०
५३

साधुओं की वेश-भूषा

साधु चादर और कोपीन पहनते थे (आ० ५८)[५२]। उनकी स्त्रियां चादर, साड़ी और एक शिरोवस्त्र पहनती थीं (आ० ५९)[५३]।

स्त्रियों के शिरोवस्त्र

भरहुत के एक अर्धचित्र में दो स्त्रियां रूमालों से अपने सिर ढके हैं (आ० ६०-६१) एक तीसरी स्त्री पगड़ी पहरे है (आ० ६२)[५४]।

शुंगयुग में दक्षिणी स्त्रियों की वेश-भूषा

दक्षिण भारत में एक उच्च कुलीन नारी की ई० पू० दूसरी सदी की वेश-भूषा का पता हमें जगय्यपेट (गुंटूर जिला) से मिली एक यक्षी की मूर्ति से मिलता है[५५]। साड़ी केवल घुटने तक पहुंचती है। पैरों में भारी पाजेब है। करधनी लंबोतरे और चिपटे मनकों के दो लड़ों से बनी है। कमरबंद दो बक्सुओं के बीच से ऐसे निकाला गया है जिससे एक ओर तो फंदेदार छोर लटक रहा है और दूसरी ओर कमरबंद के दोनों छूट्टे सिरे जिनमें लंबी छीरें पड़ी हुई हैं। गले में केवल तौक है और कानों में कुंडल। चारखानेदार ओढ़नी से सिर ढका है। इसके किनारे पर खानों में फुल्ले बने हैं जो एक दूसरे से बेड़ी धारियों से अलग होते हैं (आ० ६३)।

५२—वही, प्ले० ५१, १
५३—वही, प्ले० ५१, ५
५४—वही, प्ले० १५
५५—बर्जेस, दि बुद्धिस्ट स्तूप्स ऑफ अमरावती एंड जगय्यपेट, प्ले० ५
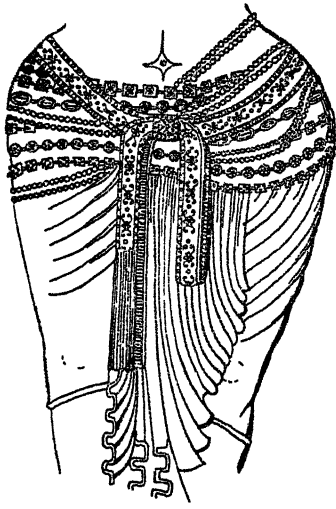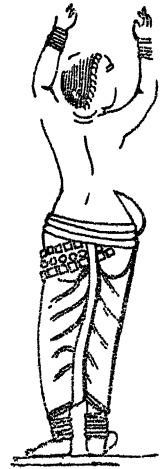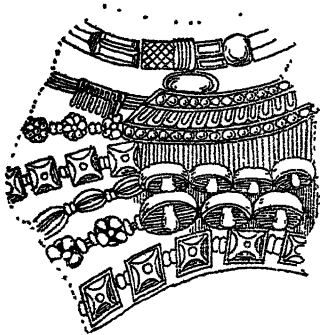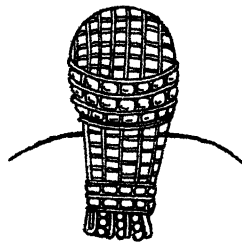
५४
५५
५६
५७
५८
५९
६०
६१
६२

छठां अध्याय

सातवाहन युग की वेश-भूषा

(ई० पू० प्रथम शताब्दी)

सातवाहन युग (करीब ई० पू० पहली शताब्दी) की वेश-भूषा शुंग युग की वेश-भूषा से बहुत कुछ मिलती है, लेकिन उसमें अंतर भी आ जाता है । उदाहरणार्थ पुरुषों की वेश-भूषा ही लेलीजिए। वे घुटने तक की धोती तो पहनते हैं पर उनके पहरावे में भारी भरकम कमरबंद और पर्यस्तकों का अभाव सा है । सातवाहन युग में पगड़ियाँ भी सादे कपड़े की होती थीं और उन्हें लोग अनेक तरह से बांधते थे । दुपट्टे ओढ़ने की भी प्रथा थी। सैनिक, अनुचर और विदेशी सिले कपड़े भी कभी कभी पहनते थे । स्त्रियां साड़ी और ओढ़नी पहनती थीं। ओढ़नी सजाने के बहुत से तरीके थे । सांची के अर्धचित्रों में भारतीय वेश-भूषा के अध्ययन से यह पता लगता है कि भारी भरकम कपड़ों की ओर लोगों का सुझाव कम हो गया था पर साथ ही साथ लोग सादे कपड़े बड़े चाव से और अनेक ढंगों से सजा कर पहनते थे । इस युग में दक्षिणी वेश-भूषा कुछ टीमटामदार होती थी । साफे भारी भरकम और आभूषणों से सजे होते थे और धोतियां भी भारी फेंटे वाली होती थीं। सातवाहन युग की वेश-भूषा के इतिहास के लिए हमें प्रचुर सामग्री सांची भाजा के अर्धचित्रों और अजंता के ९-१० नंबर की गुफाओं के भित्ति चित्रों से मिलती हैं। मथुरा और कौशांबी से मिली मट्टी की मूर्तियों से भी तत्कालीन वेश-भूषा पर प्रकाश पड़ता है। मथुरा, कौशांबी, बसाढ़ और भीटा में इस युग की मट्टी की स्त्री मूर्तियां लंबे कंचुक और गहने पहने हुए मिलती हैं। इनकी वेश-भूषा में एक विदेशीपन झलकता है और यह संभव है कि उस पर शकों का प्रभाव पड़ा हो।

सांची के अर्धचित्रों में पुरुषों की वेश-भूषा

सांची के अर्धचित्रों में आदमी धोती पहने दिखाये गये हैं जो घुटनों के कुछ नीचे पहुंचती है और जिसमें लांग और पटका होते हैं (आ० ६४)[१] । कभी कभी धोती का एक हिस्सा कमर से लपेट लिया जाता था और दूसरा हिस्सा बायीं कुहनी पर होता हुआ नीचे लटका रहता था (आ० ६५)[२] । धोती कमरबंद से बंधी रहती थी। शरीर का ऊपरी भाग दुपट्टे के सिवा अनावृत होता था । दुपट्टा निम्नलिखित तरीकों से पहना जाता था : (१) कंधों से होता हुआ यह कांखों के तले से निकाल दिया जाता था (आ० ६४)[३] । (२) दुपट्टा

१—फर्गुसन, ट्री एंड सर्पेंट वर्शिप, प्लेट २५३

२—मोतीचन्द्र, भारतीय विद्या, नवम्बर, १९३९, आ० १३

३—फर्गुसन, वही, २५, २
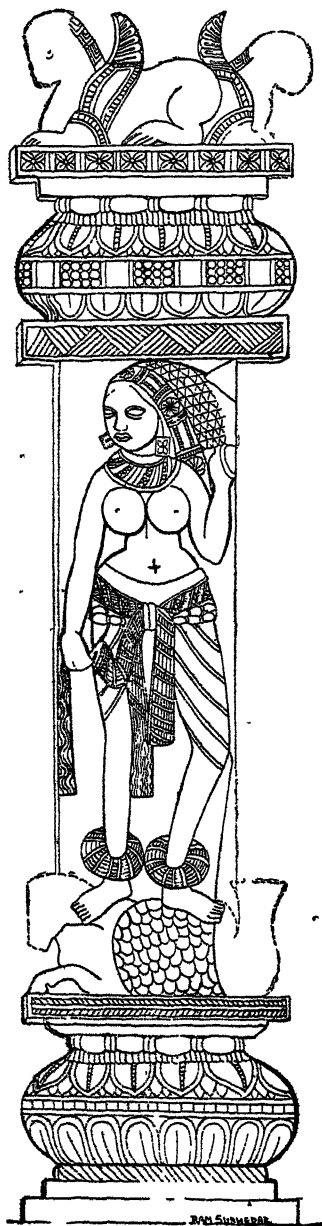
६४ ६५
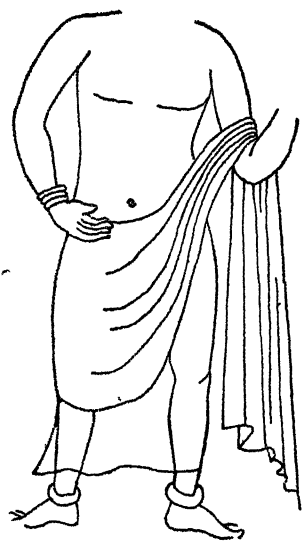
६६ ६७ ६८

६३ ६९ ७० ७१

पीछे ओढ़कर उसके सिरे बगल से निकाल कर पीछे फेंक दिये जाते थे[४]। (३) बदन को ढकता हुआ दुपट्टा बायें कंधे पर रख लिया जाता था[५]।

साफे और पगड़ियाँ

प्रायः सभी पुरुष पगड़ी पहनते थे। ऐसा लगता है कि पगड़ी के फेंटे लंबे केशों से लपेटे जाते थे। पगड़ी बांधने की अनेक विधियां थीं जिनसे पगड़ियों की अनेक आकृतियाँ बन जाती थीं। साधारणतः भरहुत की तरह पगड़ी के आगे एक लट्टू होता था। पगड़ी के एक छोर से वह ढंक जाता था और तीन चार लपेटों के बाद पगड़ी बंध कर तैयार हो जाती थी (आ० ६६)[६]। इस पगड़ी में निम्नलिखित भेद पाये जाते हैं।

१—पगड़ी की दो फेंटे कुछ नीची बंधी हैं (आ० ६७)[७]।

२—पगड़ी पतले कपड़े की है जिसके अंदर से बाल झलक रहे हैं। दाहिनी तरफ की निचली फेंट का कुछ हिस्सा चूननदार है (आ० ६८)[८]।

३—पगड़ी मोती की लड़ों से सुशोभित है (आ० ६९)[९]।

४—पगड़ी का लट्टू लंबोतरा है और कपड़ा धारीदार है (आ० ७०)[१०]।

एक दूसरी तरह की पगड़ी में कपड़े की तह गोल लपेट कर लट्टू के सीध में रख दी जाती थी। इसके बाद कई फेंटे बांध कर पगड़ी का छोर फेंटों के नीचे से निकालकर दूसरी तरफ खोंस दिया जाता था (आ० ७१)[११]। इसी पगड़ी के एक भेद में पगड़ी का कुछ गोलुवां हिस्सा सिर पर तिरछा पड़ता था और उसी के चारों ओर पगड़ी लपेट ली जाती थी (आ० ७२)[१२]। इसी पगड़ी से एक दूसरे भेद में आगे का लट्टू ढोल के आकार का होता था (आ० ७३)[१३]।

सांची के अर्धचित्रों में हमें एक तरह की पगड़ी मिलती है जिसे हम 'शंखाकार'

४—फर्गुसन, ट्री एंड सर्पेंट वर्शिप, प्ले० २७, १
५—वही
६—मोतीचंद्र, वही, प्ले० ४, १४
७—वही, प्ले० ५, १५
८—वही, प्ले० ५, १६
९—वही, प्ले० ५, १७
१०—वही, प्ले० ५, १८
११—वही, प्ले० ५, १९
१२—वही, प्ले० ५, २०
१३—वही, प्ले० ५, २१
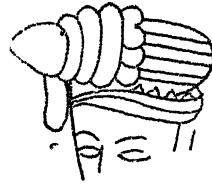
७२
७३
७४
७५
७६
७७
७८
७९
८०
८१
८२
८३
८४
८५
८६
८७
८८
८९
९०
९१
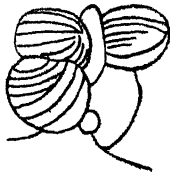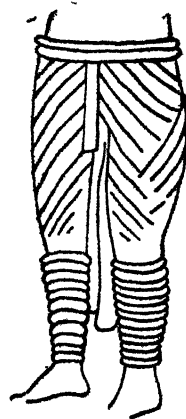
कह सकते हैं। मूल सर्वास्तिवादियों के विनय में इस तरह की पगड़ी को कंबु कहा गया है (गिलगिट टेक्स्टस्, भा० ३, २, पृ० ९५-९६)। एक में लट्टू शंख के आकार का है और उसके पीछे वृत्ताकार अलंकार है (आ० ७४)[१४]। दूसरे में शंखाकार लट्टू पर पगड़ी का एक छोर कई कई फेर लपटा है (आ० ७५)[१५]। एक तीसरी भांति में शंख का अग्रिम भाग पेचक के आकार का है (आ० ७६)[१६]। सांची के अर्धचित्रों में निम्नलिखित प्रकार की और भी पगड़ियां देख पड़ती हैं।

१—इस पगड़ी में लट्टू चक्करदार है (आ० ७७)[१७] और एक फेंटा कान ढकता हुआ जाता है।

२—इसमें लट्टू का आकार फिरहरी जैसा है (आ० ७८)[१८]।

३—इसमें फेंटे ढीले हैं और लट्टू लंबोतरा है (आ० ७९)[१९]।

४—इसमें लट्टू पंखे के आकार का है, दाहिनी ओर पगड़ी में एक खूंटी सी वस्तु खुंसी देख पड़ती है (आ० ८०)[२०]।

५—इसमें लट्टू बेलन के आकार का है (आ० ८१)[२१]।

६—इसमें तीन लट्टुओं के योग से पगड़ी बंधी देख पड़ती है (आ० ८२)[२२]।

सांची के अर्धचित्रों में टोपियां भी आयी हैं। लगता है शकों द्वारा ऐसी टोपियां इस देश में आयीं। निम्नलिखित प्रकार की टोपियां देख पड़ती हैं—

१—शकों द्वारा स्तूप पूजा के दृश्य में कुलाहनुमा टोपी देख पड़ती है (आ० ८३)[२३]।

२—चौकस गोल किनारे वाली टोपी, आगे एक बड़ा फूंदना लगा है (आ० ८४)[२४]।

३—पेशानी के ठीक बीचोबीच कटी हुई टोपी, ऊपर पान के आकार का फूंदना जिसके चारों ओर सकरमुद्धी के आकार का मंडल है (आ० ८५)[२५]।

१४—वही, प्ले० ५, २२
१५—वही, प्ले० ५, २३
१६—वही, प्ले० ६, २४
१७—वही, प्ले० ६, २५
१८—वही, प्ले० ६, २६
१९—वही, प्ले० ६, २७
२०—वही, प्ले० ६, २८
२१—वही, प्ले० ६, २९
२२—वही, प्ले० ६, ३०
२३—वही, प्ले० ६, ३१
२४—वही, प्ले० ७, ३३
२५—वही, प्ले० ७, ३४
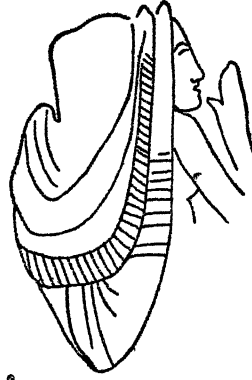
९२
९३
९४
९५
९६
९७
९८
९९
१००
१०१
१०२
१०३
१०४
१०५

४—नीचे बारों वाली तुर्की टोपीनुमा टोपी; इसके छत पर फूंदना है और किनारों पर मनकों अथवा फंदनों की झालर (आ० ८६)[२६]।

५—कुलाहनुमा टोपी जो सामने और बगल में पंजको से सजी है (आ० ८७)[२७]।

सांची के अर्धचित्रों में सारथी चोटीदार टोपी पहनते थे (आ० ८८)[२८]। विदेशी अक्सर अपना सिर पुछल्लेदार फीते से बाधते थे (आ० ८९)[२९]।

स्त्रियों की वेश-भूषा

सांची के अर्धचित्रों मे स्त्रियां दो तरह की साड़ियाँ पहने दिखलायी गयी हैं। एक म साड़ी घुटनों तक पहुंचती थी और चूनन की लांग पीछे खोंस ली जाती थी, फीतेदार पर्यस्तक दोलड़ी करधनी मे खोंस दिया जाता था (आ० ९०)[३०]। दूसरी तरह की साड़ी में एक भाग तो कमर में लपेट लिया जाता था और चूनन की लांग पीछे खोंस ली जाती थी (आ० ९१)[३१]। साड़ी पहनने की यह रीति आधुनिक सकच्छ साड़ी पहनने की रीति से मिलती है और इसकी चलन मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र में है। एक तीसरी जगह चूनन बगल में खोंसी दिखलायी गयी है (आ० ९२)[३२]।

स्त्रियों के सिर किनारदार ओढ़नियों से ढंके रहते थे। ओढ़नियों में निम्नलिखित प्रकार देख पड़ते है:—

(१) सिर को ढकती दोहरे किनारे वाली ओढ़नी (आ० ९३)[३३]।

(२) सिर और चोटी को ढकती हुई घोघी के आकार की ओढ़नी (आ० ९४)[३४]।

(३) बालों की सजावट को ढकती हुई दो तहों वाली ओढ़नी (आ० ९५)[३५]।

(४) सिर पर ओढ़नी दोलड़ी पेंची से बंधी है (आ० ९६)[३६]।

२६—वही, प्ले० ७, ३५
२७—वही, प्ले० ७, ३६
२८—वही, प्ले० ८, ३८
२९—वही, प्ले० ८, ३९
३०—वही, प्ले० ८, ४०
३१—वही, प्ले० ८, ४२
३२—वही, प्ले० ९, ४३
३३—वही, प्ले० ९, ४४
३४—वही, प्ले० ९, ४५
३५—वही, प्ले० ९, ४६
३६—वही, प्ले १०, ४७

(५) सिर पर पड़ी नुकीली ओढ़नी चौलड़ी पेंची से बंधी है (आ० ९७)[३७]।

(६) कभी कभी ओढ़नी की चोटी पंखे के आकार की होती थी (आ० ९८)[३८]।

(७) ओढ़नी में पंखे का आकार चोटी के पीछे दिखाया गया है (आ० ९९)[३९]।

(८) पेशानी के चारों ओर टिकरेदार बद्धी है, बद्धी को ढकती हुई किनारेदार ओढ़नी है। ओढ़नी के ऊपर एक बोर अथवा चूड़ामणि है जिसमें पंखे के आकार में पर लगे हुए हैं (आ० १००)[४०]।

स्त्रियां विशेषकर साधुनियां कभी कभी पगड़ी भी पहनती थीं। एक जगह यह पगड़ी अटपटी पगड़ी का रूप ग्रहण करती है (आ० १०१)[४१] और दूसरी जगह साफे का (आ० १०२)[४२]।

स्त्रियां कभी सिर से सटी गोल टोपी पहनती थीं (आ० १०३)[४३]। एक जगह इस टोपी में लटकनदार झालर लगी हुई हैं (आ० १०४)[४४]। एक जगह जुलूस में घोड़े पर सवार राजा के पीछे एक स्त्री शिरस्त्राण पहने हुए है (आ० १०५)[४५]। क्या यह यवनी है जो प्राचीन भारत में राजा के अंगरक्षक का काम करती थी?

हम ऊपर कह आये हैं कि ई० पू० पहली शताब्दी में कुछ ऐसी मट्टी की स्त्री मूर्तियां कौशांबी, मथुरा इत्यादि से मिली हैं जिनकी वेश-भूषा में कंचुक, भारी भरकम शिरोवस्त्र और भारी गहने हैं। स्त्रियों की यह पोशाक भरहुत और सांची के अर्धचित्रों में नहीं मिलती। ये मट्टी की मूर्तियां शुंगकाल की कही जाती हैं पर ध्यान देने से पता चलता है कि यह ई० पू० पहली शताब्दी की है। लगता है इनके वेश पर शक प्रभाव पड़ा है पर गहने भारतीय हैं। कौशांबी से मिली हुई एक ऐसी ही अखंडित मूर्ति का जो अब इंडियन इंस्टिटयूट म्यूजियम आक्सफर्ड[४६] में है वर्णन नीचे दिया जाता है। श्री जांस्टन की राय में इस मूर्ति का

३७—वही, प्ले० १०, ४८
३८—वही, प्ले० १०, ५०
३९—वही, प्ले० १०, ५१
४०—वही, प्ले० १०, ५२
४१—वही, प्ले० ११, ५३
४२—वही, प्ले० ११, ५४
४३—वही, प्ले० ११, ५५
४४—वही, प्ले० ११, ५६
४५—वही, प्ले० ११, ५७
४६—ई० एच० जांस्टन, ए टेराकोटा फिगर एट आक्सफोर्ड, जे० आई० एस० ओ० ए०, १९४२, प्ल० ६, पृ० ९४-१०२

समय ई० पू० २०० का है[४७] और शायद मूर्ति मायादेवी की है[४८]। लेकिन डा० गॉर्डन का मत है कि ऐसी मूर्तियां ई० पू० दूसरी शताब्दी के अंत की और अधिकतर ई० पू० पहली शताब्दी की हैं[४९]।

मूर्ति की (आ० १०६) पृष्ठिका जो खाली बच गयी है फुल्लों से सजी है। मूर्ति का शिरोवस्त्र खूब सजा हुआ है। बाल दो लट्टूदार जूड़ों में सिर के अगल बगल में हैं। बालों को हटने बढ़ने न देने के लिए ललाट पर चौलड़ी मोती की बद्धी है; जिसके दोनों अंत के फूंदने साफ दिखलायी देते हैं। ललाट के दोनों कोनों में समानान्तर रेखाओं में पत्र भंग है और ललाट के बीचोबीच तिलक, दाहिनी ओर लट्टूदार जूड़े पर कामदार पतली पट्टी बँधी हुई है। बायीं ओर का जूड़ा एक चार टिकरों वाले शिखाजाल से बँधा है। और जूड़ा एक सिरे से दूसरे सिरे तक, निम्नलिखित आकार के टीकरों से सजा है यथा—सब से निचला अंकुश है, उसके बाद वाला त्रिरत्न, जिस पर कोई आवरण है, उसके बाद परशु है, उसके बाद फिर त्रिरत्न है जिसपर कुलाहनुमा कोई आवरण है और फिर है गंड़ासा। इन सब के सिरों से मोती की लड़ें लगी हुई हैं। जूड़ों के बीच फुल्लों से सुसज्जित ढालनुमा गोल टिकरा है जिसका मतलब शायद चूड़ामणि से हो। कानों में गोल तकियां हैं जिन पर सितारों और फुल्लों का काम बना हुआ है, इनके नीचे मनकों या मोती की कई लड़ें लटक रही हैं। शरीर एक बिना बांह वाले और पैर तक लटकते हुए कंचुक से ढका है। यह कंचुक कमर पर पेटी से बंधा हुआ है। गले के नीचे किनारेदार गोल कालर है। कंचुक में एक विशेषता यह है कि दाहिना कंधा तो खुला है और कंचुक का किनारा बायें स्तन के मध्य से होकर जाता है। कंचुक की चूननें समानान्तर रेखाओं द्वारा दिखायी गयी हैं। कमर से जरा नीचे खिसकी हुई एक तीन लड़वाली करधनी है। लड़ें खारदार और गोल मनकों से बनी हैं। निचली लड़ से दो फुंदनेदार झुमके लटक रहे हैं। इन झुमकों के ऊपरी लड़ों में दोनों ओर दो कुंभांडों की बैठी हुई मूर्तियां हैं। छाती पर दाहिने कंधे से लेकर कटि तक एक पट्टी है जिसमें चार जंतर यथा दो मछलियां, एक चिड़िया जिसका सिर टूट गया है, एक सोती हिरनी और मकर हैं। इन जंतरों से मनकों की लड़ें लटक रही हैं। मूर्ति एक या उससे अधिक दुपट्टे पहने है जो दायें और बायें बाहुओं और बायें कन्धे और स्तन पर होते हुए घुटनों पर खतम होते हैं। उनके ठीक ठीक घुमावों का पता नहीं चलता। हर कलाइयों पर चार चार कंकण हैं।

४७—वही, पृ० ९९

४८—वही, पृ० १०१

४९—डी० एच० गॉर्डन, अर्ली इंडियन टेराकोटाज़, जे० आई० एस० ओ० ए०, १९४३, पृ० १५७

सिले वस्त्र

सांची के अर्धचित्रों से तत्कालीन सिले वस्त्रों पर भी प्रकाश पड़ता है। इनमे सारथि[५०], सिपाही[५१], राजा के अंगरक्षक अथवा ध्वजवाहक[५२], तथा स्तूप पूजा करते हुए विदेशी[५३] कंचुक पहने दिखलाये गये है। सिपाही दो भागों में बांटे जा सकते हैं, धनुर्धारी और पदाति। धनुर्धारी पूरे बांह वाला कंचुक पहने दिखलायी पड़ते है (आ० १०७)[५४] बाण छोड़ते समय केहुनियों तक बहोलियां उलट ली जाती थीं[५५]। इसके अलावा वे तहमतनुमा कपड़ा कमर पर बांधते थे जो कई फेंटों के कमरबंद से कमर पर मजबूती से बंधा होता था। छाती पर दोहरे परतले और सिर पर पगड़ी होती थी। पैदल सिपाही धनुर्धारियों की तरह ही कपड़े पहनते थे लेकिन वे दोहरे परतलों का व्यवहार नहीं करते थे। कुछ स्थानों मे पैदल सिपाही (आ० १०८)[५६] कमरबंद से बंधी जांघिया पहने दिखलाये गये है। कमरबंद से लटकता पटका भी वे पहनते थे। स्तूप की पूजा करते हुए विदेशियों की पोशाक भी ध्यान देने योग्य है (आ० १०९)[५७] वे पूरी बांह का घुटनों के नीचे लटकता कंचुक, कमरबंद, पीछे फड़फड़ाता हुआ गळे में बधा रूमाल पहने हैं। कुछ अपने सिर फीतों से बांधते थे जो सिर के पीछे बंधा हुआ होता था, कुछ कुलाहनुमा टोपियां पहनते थे और कुछ नंगे सर रहते थे। सब के पैरों में पूरा बूट होता था। सांची के स्तूप नं० ३ में एक जगह[५८] एक मकर पर चढ़ा हुआ विदेशी आधे बांह का कंचुक जांघिया और बूट पहने है।

सांची के अर्धचित्रों में केवल विदेशी पूरा बूट पहने दिखलाये गये ह, कहीं कहीं यह बूट यूनानी चप्पल का रूप ग्रहण करता है (आ० ११०)[५९]। इससे यह न समझ लेना चाहिए कि भारतीय जूते पहिनते ही नहीं थे क्योंकि तत्कालीन बौद्ध साहित्य में तरह तरह के जूतों का वर्णन है। भरहुत और सांची के अर्धचित्रों मे जूते न पाये जाने से केवल यही माना जा सकता है कि भारतीय सभ्यता के अनुसार पूजा के स्थानों में जूते आज दिन की तरह वर्जित

५०—फर्गुसन, वही, प्लें० ३३

५१—वही, प्लें० ३६, १, २; ३८, १

५२—वही, प्लें० ४०

५३—मोतीचंद्र, वही, प्लें० ७, ३२

५४—वही, प्लें० १२, ६०

५५—वही, प्लें० १२, ६१

५६—वही, प्लें० १२, ६२

५७—वही, प्लें० १२, ६३

५८—मार्शल, सांची, भा० ३, प्लें० ६७

५९—फर्गुसन, ट्री एंड सर्पेंट वर्शिप, प्लें० २८; मोतीचंद्र, वही, प्लें० १३, ६४

११२
११३
११४
११५
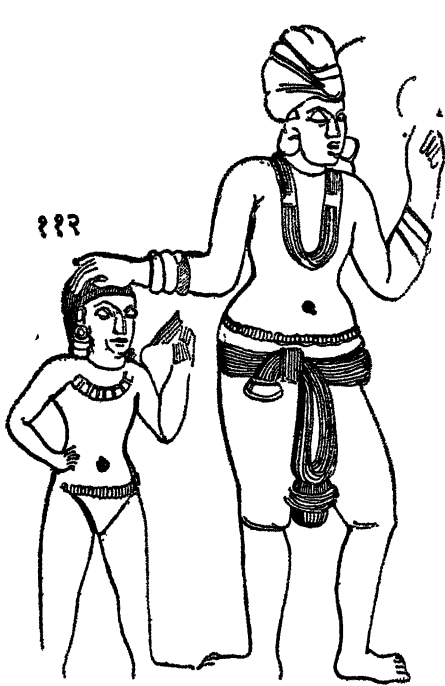
थे। इन अर्धचित्रों में या तो मनुष्य मूर्तियां पूजा करती दिखलायी गयी हैं अथवा वे पवित्र जातकों में पात्रों का काम करती हैं और इसीलिए उनके पैरों में जूते नहीं हैं

ब्राह्मणों के वस्त्र

ब्राह्मण और साधु कोपीन पहनते हैं पर जैसा अर्धचित्रों से पता चलता है यह अनसिला वस्त्र तहमतनुमा न होकर घाघरेनुमा होता था[६०]। वे चादरनुमा वैकक्ष्य भी पहनते थे जो बायां कंधा और छाती ढांकता हुआ दाहिनी छाती खुला छोड़ देता था। ऋषि-पत्नियां लहंगेनुमा (आ० १११)[६१] एक कपड़ा और वैकक्ष्य पहनती थीं। उनके और ऋषियों के वैकक्ष्यों में अंतर केवल इतना होता था कि ऋषियों का वैकक्ष्य केवल कंधा ढंकता था लेकिन स्त्रियों का वैकक्ष्य बाहु का भी कुछ भाग ढक लेता था।

दक्षिणी वेश-भूषा

अर्धचित्रों और भित्तिचित्रों क आधार पर यह कहा जा सकता है कि उत्तर और दक्षिण भारत की वेश-भूषा में अधिक अंतर नहीं था फिर भी दोनों में कुछ स्थानिक अंतर तो था ही। दक्षिण भारत की वेश-भूषा के अध्ययन के लिए पर्याप्त साधन हमें अमरावती के प्रथम युग के अर्धचित्रों, कार्ले और भाजा के लेणों के अर्धचित्रों में और अजंटा की नं० ९ और १० लेणों के भित्तिचित्रों से मिलते हैं। अमरावती में एक सद्‌गृहस्थ की वेश-भूषा करीव करीब वैसी ही है जैसे सांची के अर्धचित्रों में एक सद्‌गृहस्थ की। वे कुछ लंबोतरा साफा बांधते थे, धोती घुटनों तक पहुंचती थी और कई लड़ रस्सियों से बने कमरबंद के अंत में एक झब्बा लटका करता था (आ० ११२)[६२]। कार्ले की लेण के अर्धचित्रों में धोती जरा फटी दिखलायी गयी है और उमेठे कपड़े का बना कमरबंद बगल में लटकता दिखलाया गया है[६३]। कार्ले में पगड़ी छोटी और कसकर बंधी दिखलायी गयी है।

भाजा के के अर्धचित्रों से दक्षिण की वेश-भूषा पर काफी प्रकाश पड़ता है और उनमें दक्षिणी झलक भी साफ देख पड़ती है। भाजा की वेश-भूषा के आकार प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम में भाजा अर्धचित्रों के प्लास्टर की प्रतिकृतियों से लिये गये हैं।

हाथी पर बैठे राजा और ध्वजवाहक की वेश-भूषा (आ० ११३)

राजा के शीश पर गुंबददार पगड़ी बंधी है जो मोती या मनकों की लड़ों स सजी है। हाथों में मनकों की लड़ी से भर बांह के कंगन और गले में मनकों की बनी छलड़ी माला है।

६०—मोतीचंद्र, वही, प्ले० ११, ५८

६१—वही, प्ले० १२, ५६

६२—शिवराममूर्ति, अमरावती स्कल्पचर्स इन दि मद्रास गवर्नमेंट म्यूजियम, प्ले० १८,१

६३—बर्जेस, रिपोर्ट आन दि बुधिस्ट केव टॆंपल्स, प्ले० २५, २

११६ ११७ ११८

११९
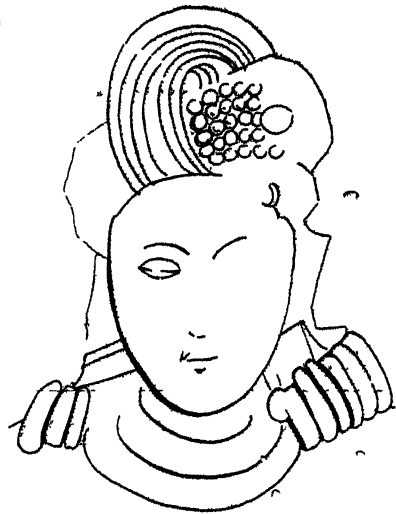
१२०

राजा के कमर में एक सिला हुआ लहंगानुमा वस्त्र है जिसकी चूंदनें साफ साफ देख पड़ती हैं। राजा के पीछे बैठे हुए ध्वजवाहक के सिर पर एक अटपटी सी बंधी पगड़ी है जिससे तीन फेरे निकलते दिखलाये गये हैं। पगड़ी का एक छोर गालों को घेरता हुआ और ठुड्डी के नीचे से होकर दूसरी तरफ पगड़ी में खोंस दिया गया है। वह एक पूरे बांह का कंचुक भी पहने हैं जिसका दामन लहरिये के आकार में कटा हुआ है।

द्वारपाल (आ० ११४)

सिर पर मोती या मनकों की लड़ों से सजी हुई गुंबददार पगड़ी है, गले में खारदार और चपटे मनकों के कंठे हैं। दाहिने कंधे से होता हुआ एक परतला है जिसके छोर से कृपाण लटक रही है। धोती के एंड़ी के कुछ ऊपर पहुंचती है और कमरबंद कमर मे लपेट लिया गया है। कमरबंद से पटका लटक रहा है।

सिपाही (आ० ११५)

हल्की एक लट्टू वाली पगड़ी जिसके बाहर कुछ बाल की लटें निकली हैं बायें कंधे से होता हुआ दुपट्टा, कछाड़ेदार धोती और कमरबंद।

पगड़ी

पगड़ी (आ० ११६) अनेक पेंचो वाली घुमावदार पगड़ी (उष्णीषरत्न) जिसमें तीन पर जैसे निकले हैं।

स्त्रियों के शिरोवस्त्र

(१) ओढ़नी के ऊपर सिरपेंच जैसा आभरण, सिरपेंच की नीचे की लड़ियां फुल्लेदार गोल तख्तियों से बनी हैं (आ० ११७)।

(२) भारी भरकम ओढ़नी जिसकी कई तहें सिर पर पड़ती हैं, सीसमांग और बद्धी बेना, सिर के मध्य में एक पहियानुमा टिकरा, ललाट पर एक गोल टीका (आ० ११८)।

(३) शीश पर पगड़ी जैसा कोई आच्छादन जिसके बायें ओर कुछ दाने से निकले हैं। गले में खारदार, ढोलकनुमा और चपटे मनकों के कंठे (आ० ११९)।

(४) सिर पर मूंगरी के आकार का गोलियाया वस्त्र (आ० १२०) जिसका एक छोर गोले के ऊपर होता हुआ दूसरी ओर खोंस दिया गया है।

(५) मस्तक पर जूट बंधी वेणी (आ० १२१) जिसमें शायद फीते लगे हैं।

(६) पगड़ी नीचे के फेटे कान तक आ जाते हैं (आ० १२२)।

अजंटा लेण ९-१० के भित्तिचित्रों में आयी वेश-भूषा की कुछ विशेषताएं

सांची अथवा भाजा के अर्धचित्रों मे हम पगड़ियों के वहुत से भेद देख चुके हैं।

अजंटा के १० नं० की लेण के भित्तिचित्रों में पगड़ी भारी भरकम नहीं होती। पहले सिर के ऊपर वालों का जूट बाँध दिया जाता था, फिर एक कटे छोर वाली पतली छीर बालों के ऊपर लपेट ली जाती थी (आ० १२३)[६४]।

दस नंबर की लेण के भित्तिचित्रों में कुछ सिले वस्त्रों के नमूने आये हैं। षड्दंत जातक के चित्र में शिकारी सोनुत्तर और उसका साथी कंचुक पहने हैं। अपने कंधे पर बंहगी लिये सोनुत्तर का साथी एक चौथाई बाहों वाला, त्रिकोणाकार कटे हुए गले वाला धारीदार कंचुक पहने है जो कमरबंद से बंधा है। सोनुत्तर का कंचुक बुंदकीदार छींट का बना मालूम पड़ता है। इसका गला गोल है और सामने तुकमेक लगाने की पट्टी है (आ० १२३-१२४)

६४—स्टेला क्रामरिश, ए सर्वे आफ पेंटिंग इन दि डकेन, प्ले० १

सातवाँ अध्याय

ईस्वी पहली शताब्दी से लेकर तीसरी शताब्दी के आरंभ तक के साहित्य में वर्णित वेश-भूषा

भारतीय इतिहास की मुख्य घटनाओं में ईस्वी प्रथम शताब्दी में इस देश में कुषाणों का आगमन है। कुषाण ऋषिक (यू० शी०) कबीले के एक अंग थे और उनका आदिम निवासस्थान चीन के उत्तर पश्चिमी भाग में था। हूणों द्वारा ई० पू० १६५ में विजित होकर ऋषिकों ने पहले तो शकों के देश पर कब्जा किया और बाद में आगे बढ़ते हुए करीब ई० पू० १० वीं सदी में उन्होंने बलख जीत लिया। कुषाण वंश के सब से प्रसिद्ध राजा कनिष्क ने पुरुषपुर (आधुनिक पेशावर) को अपनी राजधानी बनाया। कनिष्क विद्वानों का आदर करते थे और इनकी सभा में संस्कृत के प्रसिद्ध कवि अश्वघोष और प्रसिद्ध वैद्य चरक थे। कनिष्क बौद्ध थे इसलिए धर्मप्रसार के लिए इन्होंने तिब्बत, मंगोलिया और खोतान ऐसे सुदूर देशों में भिक्षु भेजे। संस्कृत बौद्ध साहित्य तथा तत्कालीन लेखों से पता चलता है कि सर्वहित कामना का इस युग में विशेष प्रचार था।

उत्तर भारत में कुषाणों के उदय होते ही सातवाहनों की सत्ता को धक्का पहुंचा और उनकी राज्य-सीमा घटकर केवल दक्खिन तक ही रह गयी। करीब ११० ई० सं० के चष्टन कुषाणों के महाक्षत्रप हुए लेकिन बाद में सातवाहनों ने उनसे यह सत्ता छीन ली। चष्टन के पोते रुद्रसिंह, जिन्होंने अपनी कन्या का विवाह राजा सातवाहन के पुत्र से किया था, अपने संबंधी को युद्ध में दो बार हराकर धीरे धीरे सिंध, मारवाड़, कच्छ, सुराष्ट्र, गुजरात, मालवा और उत्तरी महाराष्ट्र पर कब्जा कर लिया। बाद में सातवाहन अपने विजित राष्ट्र के कुछ भाग ले लेने मे समर्थ हुए।

ईसा की आरंभिक सदियों में तामिल देश पर चेर, चोल और पांड्यों की सत्ता थी और इनमें बहुधा लड़ाइयां भी होती रहती थीं। तामिलनाड का सब से प्रतापी राजा करिकाल चोल ने (करीब ई० ७०-१०० तक), जिसने सिंहल के सम्राट् गजबाहु को हराया, उरैयूर (आधुनिक त्रिचनापल्ली) में अपनी राजधानी कायम की। इस युग में कावेरी के मुहाने पर कावेरीपट्टन प्रसिद्ध बंदरगाह बन गया। चेर सेंगुट्टुवन् (करीब ई० १४०-१९२) दक्षिण देश का एक दूसरा बड़ा राजा था जिसने चोल देश के नौ सम्मिलित राज्यों को हराया। इसकी यश-गाथा हमें प्रसिद्ध तामिल काव्य सिलप्पदिकारं में मिलती है।

ईस्वी दूसरी शताब्दी के अंत में सातवाहन साम्राज्य छिन्न भिन्न होने लगा। आभीरों ने गुजरात में एक स्वतंत्र राज्य कायम किया। चुटु सातवाहन करीब सौ साल तक

अपनी राजधानी वैजयन्ती (आधुनिक बनवासी, कनारा) से उत्तर महाराष्ट्र और कर्नाटक पर राज्य करते रहे और इक्ष्वाकुवंश अपनी राजधानी शायद नागार्जुनीकोंड (धान्यकटक, गुंटूर जिला) से आंध्र देश पर। उत्तर भारत में नाग, भारशिव, और मघराजाओं ने कुषाणों को निकाल बाहर किया और यौधेयों और मालवों के गणतंत्र प्रबल हो उठे। बाद में भारशिवों की सत्ता के अंत होने पर विंध्यशक्ति ने ई० २४८-२८४ मे प्रसिद्ध वाकाटक वंश की स्थापना की और उस वंश का सबसे प्रतापी राजा प्रवरसेन (ई० स० २८४-३४४) हुआ।

भारतवर्ष के इतिहास के ये तीन सौ बरस न तो केवल लड़ाई भिड़ाई में ही बीते और न तो, जैसा कुछ ऐतिहासिकों का विश्वास है इसके पिछले युग का इतिहास (ई० स०१५६ से ३५० तक) अन्धकार मय ही है क्योंकि इस काल के इतिहास पर डा० जायसवाल प्रभृति विद्वानों ने अच्छा प्रकाश डाला है। प्लिनी और पेरिप्लस के ग्रंथों से, तथा वृहत्तर भारत और इस देश के पुरातत्व संबंधी अन्वेषणों से यह पता चलता है कि इस युग में कला और साहित्य समुन्नत थे। भारत और रोम के साथ हमारा गहरा व्यापारिक संबंध था और हम अपनी ब्रह्मविजय से मध्य एशिया से लेकर हिंदचीन तक अपनी सांस्कृतिक धाक जमा चुके थे। ई० सन् की पहिली शताब्दी में हिन्द-चीन, अनाम कंबुज तथा यवद्वीप इत्यादि में भारतीय राज्य बन चुके थे। भारतीयों का पूर्व की ओर प्रसार उन्हें चीनियों के संयोग में लाया और इन दोनों देशों में व्यापारिक संबंध बढ़ा। इसी युग में रोम साम्राज्य के उत्कर्षावस्था में भूमध्य सागर और भारत का मूल्यवान व्यापारिक संबंध और भी दृढ़ हुआ। भारतीय रत्न, मसाले, गंधद्रव्य और कीमती 'मिरहिना' की घरियां, जिनकी कीमत से घबराकर प्लिनी को रोमनों के भाग्य पर रोना पड़ा, तथा बढ़िया मलमल इस देश से रोम को जाते थे। सज्जा की इन वस्तुओं के व्यापार से देश की आमदनी इतनी बढ़ी कि व्यापार का पलड़ा हमारी ओर झुक गया और इसके फलस्वरूप बहुत बड़े पैमाने में रोमन दीनारें इस देश में आने लगी।

भारतीय वेश-भूषा की प्रचुर सामग्री हमें इस युग की मूर्तियो और अर्धचित्रों में मिलती है। उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त की गंधार-मूर्तियां, मथुरा की कुषाण मूर्तियां तथा अमरावती, नागार्जुनीकुंड और गोल्ली से मिले अर्धचित्र हमे यह बतलाते है कि धोती, साड़ी तथा पगड़ी पहनने में कौन कौन सी स्थानिक विशेषताएं थीं। उत्तर पश्चिमी भारत में शुद्ध भारतीय वेश-भूषा के सिवाय कंचुक, शलवार, टोपियां इत्यादि विदेशी वस्त्र भी काम में लाये जाते थे। ये वस्त्र प्राचीनभारत और मध्य एशिया तथा ईरान के सांस्कृतिक और व्यापारिक संबंध के प्रतीक हैं। गंधार की कला यूनानी कला से प्रभावित थी जिसके फलस्वरूप हम गंधार की कला में स्त्री-पुरुषों को कभी कभी यूनानी कपड़े पहने देखते हैं। कुषाण सिक्कों पर अंकित कुषाण राजाओं की आकृतियों से हमें शकों की वेश-भूषा का अच्छा पता लगता है। दक्षिण भारत में स्त्रियों और पुरुषों की वेश-भूषा बहुत सादी होती थी।

वे केवल मलमली धोती और कमरबंद पहनते थे कंचुक तो केवल योद्धागण, शिकारी और द्वारपाल ही पहनते थे । इस युग के अर्धचित्रों में पंजाबियों की प्रिय कुलाह भी कभी कभी दिखलायी पड़ती है ।

कुषाण युग के साहित्य से उस युग की वेश-भूषा पर विशेष प्रकाश नही पड़ता। महावग्ग और चुल्लवग्ग ऐसे ग्रथों का जिनमें ईसा के पूर्व चौथी या पांचवी शताब्दी के नर-नारियों की वेश-भूषा, पहनने के ढंग और कपड़ों का विशद वर्णन है, इस युग मे अभाव ही सा है। इस युग के साहित्य में वेश-भूषा का छिटपुट वर्णन है, और वस्त्रों और कपड़ों का नाम बिना किसी भाष्य के आते हैं। इन शब्दों के अर्थ आधुनिक कोशों मे भी नहीं मिलते और अगर मिलते भी हैं तो यह पता नही चलता कि वे वस्त्र सूती, रेशमी अथवा और किसी दूसरे रेशों से बनते थे । इस युग के कपड़ों का ज्ञान हमें "पेरिप्लस ऑफ दि एरिथ्रियन सी" नामक एक पुस्तक से, जिसे एक यूनानी नाविक ने ईसा की पहली शताब्दी में भूमध्य और हिंद-सागर के व्यापारिक संबंध पर लिखा था, मिलता है ।

कपास धुनने, कातने और बुनने की क्रिया

इस युग में सूती कपड़े का बहुत चलन हो गया था। अच्छी कपास पैदा की जाती थी और कपास के खेत (कर्पासवाट) का उल्लेख मिलता है[१] । कपास की मृदुता (कर्पास-पिचु) के लोग कायल थे। दिव्यावदान में एक जगह[२] उपगुप्त के शरीर की कोमलता की उपमा कर्पास से दी गयी है। कपास बाजार से खरीद कर धुन ली जाती थी (तं परिकर्मयित्वा, और उससे पतला एकसां सूत कात लिया जाता था[३] । बुनकर (कुविंद), कपड़े बीनते समय चीर छोड़कर (अविचीरविचीरकं) तथा अपने सिर उठाकर और अपने हाथ पैरों का संचालन करते हुए बुनना आरंभ करते थे । पास में बैठी बुनकर की स्त्री माड़ी (दिव्यसुधा) देकर ताना तानने का काम आरंभ कर देती थी (तसरिकां कर्तुमारब्धा)[४] । दो हजार वर्षों के बाद भी आज हम एक बुनकर के घर यही दृश्य देख सकते हैं। कार्पासिकों और बुनकरों (तंत्रवायक) का अपनी श्रेणियां होती थीं (महावस्तु, आ० ३, पृ० ११३)

कलिंग देश के नाग बुनकर

दक्षिण भारत में इस युग में नाग जाति बहुत सी कलाओं में और विशेषकर बुनाई में पारंगत थी। कलिंग देश के नाग बुनाई में इतने कुशल होते थे कि तामिल भाषा में कलिंग शब्द अच्छे कपड़े का बोधक हो गया । ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों में, पूर्व समुद्र के किनारे पांड्यों की राज्य-सीमा में भी, बहुत अच्छे बुनकर थे और इनकी बनायी हुई मलमल काफी

१—दिव्यावदान, पृष्ठ २१२, सतर २१
२—वही, पृ० ३८८, सतरें १४-१५ तथा पृ० २१०, १४
३—वही, पृ० २७६, स० ६, ११
४—वही, पृ० ८३, स० २१-२५

परिमाण में निर्यात होती थी । बढ़िया मलमल की तामिल काफी कदर करते थे और बाहरी देशों में भी इसका बड़ा गहरा दाम मिलता था।[५] एक प्राचीन तामिल काव्य में अय नाम के एक प्रसिद्ध राजा के नील नाग द्वारा भेंट किया हुआ एक अमूल्य मलमल का थान शिव की मूर्ति पर चढ़ाने का उल्लेख है[६]। मूल सर्वास्तिवादियों के विनय में एक जगह स्त्रीरत्न के शरीर के मृदुता की उपमा कलिंग प्रावार से दी गयी है (गिलगिट टेक्टस्, भा० ३, २, पृ० ३६)

रोम में भारतीय मलमल

भारतीय मलमल की रोम साम्राज्य में बड़ी कीमत होती थी पेरिप्लस के अनुसार सबसे अच्छी मलमल को 'मोनाचे' और कुछ घटिया रुई के बने कपड़े को जिसका व्यवहार खोल बनाने के लिए होता था 'सगमतोगेने' कहा जाता था । ये कपड़े गुजरात में बनते थे और भड़ोच से एक घटिया बैंगनी रंग के 'भोलोचीन' नामक कपड़े के साथ पूर्वी अफ्रिका के बंदरों में भेजे जाते थे[७]। इसी तरह के कपड़े भड़ोच होकर अरब, मिस्र और सोकोतरा भी भेजे जाते थे । भड़ोच की बंदरगाह मे ये कपड़े उज्जैन और तगर (आधुनिक तेर) से आते थे[८]। त्रिचनापल्ली और तंजोर में आर्गरितिक[९] नाम की मलमल बनती थी जिसका यूनानी नाम चोलों की राजधानी उरैयूर (आधुनिक त्रिचनापली का एक भाग) में बनने से पड़ा। मसालिया (आधुनिक मसुलीपतन) में भी काफी मलमल बनती थी[१०]। पर सब से अच्छी मलमल का नाम 'गेंजेटिक' था और वह शॉफ के अनुसार ढाका के आस-पास बनती थी[११]। काशी भी उस युग में कीमती मलमल बनाने का एक बड़ा केन्द्र था और हो सकता है कि गेंजेटिक से यहां काशी की मलमल का उद्देश्य रहा हो । रोम में भारत के सादे और रंगीन वस्त्रों की इतनी अधिक मांग थी कि दूसरे देशों के कपड़ों की मांग काफी गिर गयी। इस देश की सब से अच्छी मलमल का नाम रोमनों ने 'वेंटस टेक्सटाइलिस' (हवा की तरह कपड़े) और 'नेबुला' रक्खा। एरियन के अनुसार भारत में बने सूती कपड़े दूसरे देशों मे बने कपड़ों से अधिक सफेद और चमकीले होते थे तथा लूशियन के अनुसार भारतीय कपड़े यूनानी कपड़ों से भी हलके और मुलायम होते थे[१२]। संस्कृत बौद्धसाहित्य में मलमल के लिए विरली शब्द आया है। बिंदुसार द्वारा एक कीमती विरली अंबपाली को भेंट दी गयी (वही, ३, २, पृ० २०) जामदानी के काम को चित्रा विरली कहते थे (वही, पृ० २३)

५—कनकसभै, दि तामिल्स-एट्टीन हंड्रेड इयर्स एगो, पृ० ४५
७—शॉफ, दि पेरिप्लस ऑफ दि एरीथ्रियन सी, पृ० ७२-७३, १७६-१८०
८—वही, पृ० ४२
९—वही, पृ० ४६
१०—वही, पृ० ४१
११—वही, पृ० ४७
१२—वार्मिंगटन, कामर्स बिटवीन दी रोमन एम्पायर एंड इंडिया, पृ० २१२

रेशमी वस्त्र

रेशमी कपड़ों की काफी चलन थी और इस देश में काफी रेशमी कपड़े बनते भी थे। दिव्यावदान[१३] में रेशमी वस्त्र के लिए पट्टांशुक, चीन, कौशेय और धौतपट्ट शब्दों का व्यवहार हुआ है । लेकिन इन रेशमी वस्त्रों मे बनावट और नक्काशियों की दृष्टिकोण से क्या फरक था इसका पता हमें नहीं लगता। लगता है पट्टांशुक सफेद और सादा रेशमी वस्त्र था; चीन चीन देश मे बने रेशमी कपड़े को कहते थे; कौशेय शहतूत की पत्ती खाकर कोश बनाने वाले कीड़ों के रेशम से बने वस्त्र का नाम था और धौतपट्ट खारे हुए रेशम के बने वस्त्र को कहते थे। नकाशीदार रेशमी वस्त्र को कोशिकारक भी करते थे (महावस्तु, १, पृ० २३५-२३६)। विचित्रपटोलक[१४] अथवा नक्काशीदार रेशमी वस्त्र का भी उल्लेख है । इस वस्त्र का नाम गुजरात की पटोला साड़ी में जिसे विवाह के अवसर पर लड़की का मामा उसे भेंट मे देता है बच गया है। यह साड़ी बांधणी रंगने की विधि से रंगे हुए तानेबाने से बनती है । इसकी बिनावट में सकरपारे पड़ते हैं जिनके बीच में तिपतिये फूल होते हैं। कभी कभी अलंकारों में हाथियों की पक्ति, पेड़, पौधे, मनुष्य-आकृतियां और चिड़ियां भी होती हैं[१५]। लेकिन ये अलंकार नये हैं पुराने अलंकारों का हमें पता नही है। पटोलक के साथ विचित्र विशेषण से पता लगता है कि वह रंग-विरंगा कपड़ा होता था।

तामिलनाड में धनिक वर्ग रेशमी कपड़े पहनता था। सिलप्पदिकारं में एक जगह कहा गया है कि मदुरा की स्त्रियां पुष्पालंकृत लाल रंग की रेशमी साड़ियां पहनती थी[१६]।

पेरिप्लस में इस बात का उल्लेख है कि सिंध नदी पर बारबरिकोन बंदरगाह से रेशम का निर्यात होता था, और बलख के रास्ते सिंध होते हुए भड़ोच को, रेशम और कीमती रेशमी कपड़े भेजे जाते थे । रेशमी कपड़े मुजिरिस, नेलकिंडा तथा मालाबार के और दूसरे बाजारों में गंगा के मुहाने और पूर्वी समुद्र के किनारे से होकर पहुंचते थे[१७]। ईसा की आरंभिक सदियों में चीन से रेशमी वस्त्र ब्रम्हपुत्र की घाटी, असम और पूर्वी बंगाल भी हो कर आते थे[१८]। रेशमी कपड़ों के व्यापारी चोलों की राजधानी कावेरीपट्टन में भी पहुंचा करते थे[१९]। 'पेरिप्लस' के अनुसार रोमन व्यापारियों के रेशमी वस्त्र गंगा के मुहाने, खंभात की खाड़ी और त्रावंकोर के बंदरों में मिलते थे जहां इनका आयात पश्चिमी चीन के व्यापा-

१३—दिव्यावदान, पृ० ३१६

१४—ललितविस्तर, पृ० ११३, सतर १, डा० राजेंद्र लाल मित्र संपादित, कलकत्ता १८७७

१५—वाट, इंडियन आर्ट एट दी देहली एक्जिबिशन, पृ० २५६-२५९

१६—सिलप्पदिकारं, १४, पृ० २०३

१७—वार्मिगटन, वही, पृ० १७६; शॉफ, वही, पृ० २६३-२६८

१८—वाट, डिक्शनरी आफ एकोनामिक प्राडक्टस आफ इंडिया, पृ० ९९८-१०२६

१९—वार्मिगंटन, वही, पृ० १७६

रियों द्वारा होता था[२०]। चीनपट्ट के सिवाय भारतवर्ष के बने रेशमी कपड़े भी शायद ईसा की आरंभिक शताब्दियों में रोम पहुंच चुके थे।

ऊनी कपड़े और पश्मीना

ऊनी कपड़े का साधारण बोधक शब्द कंबल था[२१]। इस युग में ऊनी कपड़ों के लिए शायद दूश्य (आधुनिक धुस्सा) शब्द का भी व्यवहार होता था[२२]। दिव्यावदान में कहा गया है कि उत्तर कुरु देश में कल्पदूश्य नामक वृक्ष से तुडिचेल नाम के कपड़ों के थान पैदा होते थे, जिनसे नीले, पीले, लाल और सफेद रंग के कल्पदूश्य के छोटे बड़े टुकड़े बनते थे[२३]। यह भी कहा गया है कि मातंग स्त्रियां बिना कुदी किया हुआ दूश्य (अनाहत दूश्य) पहनती थी[२४]। कभी कभी ऊन और दुकूल के रेशों को मिलाकर बहुत अच्छे कपड़े बिने जाते थे (ऊर्णा दुकूलमयशोभनवस्त्राणि)[२५]। एशिया के ऊनों में कश्मीर, भूटान, तिब्बत और उत्तरी हिमालय में बकरों के रोयें का ऊन जिसे पश्म कहते हैं अपने चिकने पोत के लिए प्रसिद्ध है। रोम के बादशाह ऑरेलियन को ईरान के बादशाह द्वारा एक लाल रंग के पश्मीने के रूमाल के भेजने का उल्लेख है। वार्मिंगटन का कहना है कि यह रूमाल भारतवर्ष का बना था[२६]। रोमन कानून के संग्रह (३९।५।७) में मारोकोकोरम लाना भारत के उत्तरी-पश्चिमी बंदरगाहों से लाया गया पश्म था जो मिश्र देश में बुना जाता था। वार्मिंगटन का अनुमान है[२७] कि मारोकोकोरम शब्द शायद काराकोरम का अपभ्रंश है। इसमें संदेह नहीं कि आज दिन भी सब से अच्छा पश्म पामीर से आता है। रंगीन पश्म भारत से बाहर नहीं जाता था और इसलिए अरॉलियन और उसके परवर्ती राजाओं को लाल पश्मीना देखकर विस्मय होता था[२८]। प्राचीन काल में पश्म का बहुत दाम होता था। इस बात का उल्लेख है कि ससानी बादशाह हुरमुज द्वितीय (ई० ३०२-३१०) ने काबुल के राजा की कन्या से जब विवाह किया तब उसके दहेज में काश्मीर के अच्छे से अच्छे पश्मीने के बने शाल दुशाले आये, जिनकी कारीगरी देखकर सब लोग चकित हो गये[२९]।

२०—शॉफ, वही, पृ० १७२

२१—दिव्यावदान, पृ० ३१६, सतरें—२३-२७

२२—वही, पृ० २१५, स० २७-२६

२३—वही, पृ० २२१, स० १७-२०

२४—वही, पृ० ६१४, स० १७

२५—वही, पृ० ३१६, स० २३-२७

२६—वार्मिंगटन, वही, पृ० १६०

२७—वही, पृ० १६०

२८—वही, पृ० १६१

२९—वही, पृ० १६१

संस्कृत बौद्ध साहित्य मे भी ऊनी वस्त्रों के कई जगह उल्लेख हैं। ऊनी वस्त्र कभी कभी बहुत पतला होता था। कंबल सूक्ष्माणि (महावस्तु, २, पृ० ११६) तथा ऊन बिनने वालों (ऊर्णवायक) की अपनी श्रेणि होती थी (वही, ३, पृ० ११३)। साधारण और ऊंट के बाल के बने कंवलों का (कुतुप, उष्ट्रकंबल) का भी व्यापार होता था (गिलगिट टेक्स्ट, ३, २, पृ० ९५-९६)

क्षौम, शाण, पांडुदुकूल, हर्यणी, अपरांतक, फलक, फुट्टक और पुष्पपट्ट

क्षौम---क्षौम अथवा तीसी के छाल के रेशों से बने कपड़ों का काफी व्यवहार होता था।[३०]

शण---अट्ठारह गज लबे और बारह गज चार अंगुल चौड़े सन के बने कपड़े का उल्लेख है।[३१] एक दूसरी जगह सन की साडी (शण शाटिका) बिने जाने का उल्लेख है। [३२] ऐसा पता चलता है सन की बनी धोती (शण शाटिका) गरीब किसान पहनते थे।[३३]

हिरि वस्त्र---सुनहले कपड़े को हर्यणी[३४] अथवा हिरि वस्त्र[३५] कहते थे। लगता है कि इन शब्दों से आधुनिक किमखाब की तरह किसी वस्त्र की ओर संकेत है। पर इसका ठीक ठीक पता नही चलता कि आया यह कपड़ा सादा होता था या नक्काशीदार। सुनहले कलाबत्तू से बिनी गई और रत्नों से जटित (रत्न-सुवर्ण-प्रावरका) कीमती चादरे भी होती थीं। [३६]

पांडुदुकूल---दुकूल के रेशों से बना सफेद कपड़ा[३७]। इस युग के साहित्य में दुकूल का ठीक ठीक परिचय नहीं मिलता। जैन अंगों की टीकाओं मे गौड़ अथवा बंगाल की रुई को दुकूल कहा गया है पर यह व्याख्या बारहवी शताब्दी की होने से अविश्वसनीय है। दुकूल शायद दुकूल वृक्ष की छाल के रेशों से बना कपड़ा था।

काशिक वस्त्र---बनारस मे बने कपड़ों के लिए काशिक वस्त्र[३८], काशी[३९] तथा काशिकांसु[४०] इत्यादि शब्दों का प्रयोग हुआ है। बहुधा काशिक वस्त्र से लोग रेशमी कपड़े

३०---दिव्यावदान पृ० ३१६, प० २३-२० ; पृ० ५७७, प० २१-२२
३१---वही, पृ० ३४९, प० ३-५
३२---वही, पृ० ८३, प० २१-२५
३३---वही, पृ० १९४, प० ३
३४---वही, पृ० ३१६
३५---ललितविस्तर, पृ० १५८, सं० १८
३६---दिव्यावदान, पृ० ३१६
३७---ललितविस्तर, पृ० ३३३
३८---दिव्यावदान, पृ० ३६१, प० ६
३९---वही, पृ० ३८८, प० १७
४०---वही, पृ० ३१६, प० २३-२७

१२१
१२२
१२३
१२४
१२५
१२६
१२७
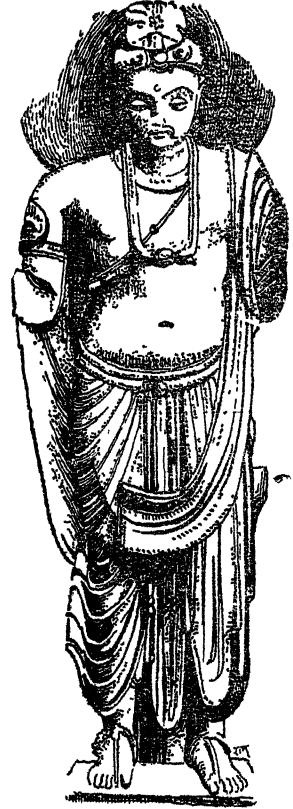
का अनुमान करते है क्योंकि आज दिन भी बनारस रेशमी कपडे बिनने का मुख्य केन्द्र है । लेकिन इस युग के साहित्य मे काशी के बने वस्त्रों का रेशमी होने का कही उल्लेख नही है। बहुत सभव है कि ये वस्त्र सूती रहे हों क्योकि प्राचीन काल मे बनारस के आसपास बहुत अच्छी कपास पैदा होती थी और यहां की कत्तिनें बहुत महीन सूत कातती थी। भैषज्यगुरु-सूत्र[४१] में कहा गया है कि काशिक वस्त्र बहुत महीन होते थे (सूक्ष्माणि जालानि च संहितानि)। काशिक वस्त्र से बहुत अच्छे पहनने के कपड़े बनने का भी उल्लेख है[४२] ।

फलक—लगता है यह कपड़ा किसी फल के रेशे से बनता था[४३]।

अपरांतक—शायद कोंकण में बना कपड़ा। यह पता नही चलता कि कपड़ा सूती होता था या रेशमी[४४]।

फुट्टक—ठीक ठीक तो नहीं कहा जा सकता पर ऐसा अनुमान होता है कि शायद यह शब्द छींट अथवा चूंदरी के लिए आया है । इस कपड़े की काफी मांग थी । सोपारा में ऐसी दूकानें (फुट्टक वस्त्रावारि) थी जहां केवल यही कपड़ा बिकता था[४५]।

पुष्पपट्ट—फूलदार कपड़ा । यह ठीक पता नही चलता कि फूल बिने हुए, छपे हुए अथवा कसीदा किए होते थे[४६] । सम्भव है जामदानी से तात्पर्य हो ।

साधुओं के वस्त्र

भिक्षुक, तथा ऋषि मुनि फलक, वल्कल, मूंज, दर्भ तथा वल्वज के बने कपड़े तथा ऊंट, बकरे तथा मनुष्य के बालों के बने कंबल पहनते थे[४७]।

चीनी और भारतीय कपड़े और समूर

इस युग में साधुओं को छोड़ कर और कोई चमड़े के बने वस्त्र नही पहनता था। लेकिन इस युग में भारतवर्ष और रोम में चमड़े और समूरों का काफी व्यापार होता था। पेरिप्लस का कहना है कि चीनी चमड़े और समूरों का निर्यात सिंध नदी पर स्थित बार्बरिकोन[४८] बंदरगाह से होता था। प्लिनी के अनुसार रोम मे बराबर[४९] चीनी लोहा, सूत और चमड़े आते थे ।

४१—गिलगिट टेक्सट्स, भा० १, पृ० १२५-१२६
४२—ललितविस्तर, पृ० २६२, पं० ९
४३—वही, पृ० १५८, पं० १८
४४—दिव्यावदान, पृ० ३१६, पं० २३-२७
४५—वही, पृ० २९, पं० ७
४६—ललितविस्तर, पृ० १४१, पं० २०; पृ० ३६८, पं० १४
४७—वही, पृ० ३१२, पंक्ति १-१३
४८—शॉफ, वही, पृ० ३८
४९—प्लिनी, ३४, ४१

१२८

१२९

१३०

१३१

बालदार खुरदरे चमड़े अथवा भारी ऊनी कोट उत्तर पश्चिमी भारत से पूर्वी अफ्रिका को भेजे जाते थे । कावेरी पट्टन में भी ऊनी कपड़े बिकते थे । लातीनी में इस तरह की वस्तुओं को सामूहिक रूप से 'केपिली इंडिकी'[५०] कहते थे । जांच पड़ताल से पता लगता है कि प्लिनी कथित चीनी लोहा, सूत और चमड़े वास्तव में चीन की पैदावार नही थे ये सब वस्तुएं भारतवर्ष की थीं जो पेरिप्लस के अनुसार खंभात की खाड़ी से हो कर सुमाली समुद्र तट के बंदरगाहों को जाती थी[५१] । वार्मिंगटन के अनुसार सिंध नदी के बार्बरिकन बंदरगाह से जिन समूरों का निर्यात होता था उसमे कुछ तो मध्य एशिया के कौशेय पथ के सार्थवाहों द्वारा चीनी रेशम के साथ वलख होते हुए सिंध की ओर आते थे और कुछ तिब्बती समूर होते थे[५२] ।

चीनी कपड़े मौर्य युग मे चीनसि[५३] नाम से विख्यात थे पर इस बात का अभी ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिला है कि इतने प्राचीन काल मे भी भारतवर्ष और चीन में भी व्यापारिक सबंध था । हो सकता है कि ईसवी पूर्व के भारतीय साहित्य में शायद चीन से काफिरिस्तान, कोहिस्तान और दरद प्रदेशों से मतलब है जहां "शिना" बोली जाती है। भारत में समूर के आयात का पता हमें महाभारत[५४] से भी लगता है।

कपड़े की दूकानें

इस युग में तरह तरह के कपड़ों की दूकानें होती थी। लेकिन उनमें कुछ ऐसी भी दूकानें होती थीं जिनमें केवल एक ही प्रकार का कपड़ा मिल सकता था। प्राचीन शूर्पारक (आधुनिक सुपारा) में कुछ ऐसी दूकानों का उल्लेख है जिनमें केवल काशी के वस्त्र (काशिक वस्त्रावारि[५५]) अथवा छपे हुए कपड़े (फुट्टक वस्त्रावारि) मिलते थे[५६] । मदुरा मे बजाजा होने का भी उल्लेख है। यहां दूकानों में तरह तरह के कपड़े तथा ऊन और सूत की पेटियां जिनमें हर पेटी में सौ लच्छे होते थे[५७] मिल सकती थी। कावेरी पट्टन मे ऐसे बुनकर (कारुक) होते थे जो अपने काम के साथ ही साथ रेशमी तथा सूती कपड़ों और समूरों की दलाली भी किया करते थे[५८]।

५०—वार्मिंगटन, वही, पृ० १५७
५१—शॉफ, वही, पृ० १७३
५२—वार्मिगटन, वही, पृ० १५८
५३—अर्थशास्त्र, पृ० ८१
५४—महाभारत, २, ५१, ८
५५—दिव्यावदान, पृ० २१, पंक्ति ४-५
५६—वही, पृ० २६, पंक्ति १, ७
५७—सिलप्पदिकारं, १४, पृ० २०८
५८—वही, ५, पृ० ११०

साहित्य में भारतीय वेश-भूषा के उल्लेख

उत्तर भारत की वेश-भूषा—इस युग के साहित्य में भारतीय पहरावे का कम उल्लेख हुआ है। साधारणतः लोग धोती और दुपट्टा पहनते थे। काशी के बने धोती, दुपट्टे सारे भारत मे प्रसिद्ध थे[५९]। धोती दुपट्टे की जोड़ी (यमली) की कीमत कभी कभी एक लाख कार्षापण[६०] तक पहुंच जाती थी। राजे महाराजे कुदी किए हुए चौड़े किनारे वाले नये वस्त्र पहनते थे। (आहतानि वासांसि नवानि दीर्घ दशादि) ये वस्त्र उनके शरीर को पूर्ण रूप से ढँक लेते थे[६१]। यहां चौड़े किनारे वाले कपड़ों से शायद धोती और दुपट्टे से मतलब हो। पूरे शरीर ढँकने वाले वस्त्रों से शायद कंचुक से मतलब हो। बुनकर[६२] और किसान[६३] सन्नी धोती (शण शाटी) पहनते थे। छोटी धोती को प्रावरण पोत्री (गुजराती, पोत्युं[६४]) कहते थे। राजे पगड़ी भी (प्रवर मौलि पट्ट) पहनते थे[६५]। राजा के सिवाय मंत्री कंचकी सेठ और पुरोहित भी पगड़ियां पहनते थे[६६]।

राजे कभी कभी सिले कपड़े जो शायद कंचुक रहे हों (चोडक-संघात-प्रत्यवरेण-वाससं) पहनते थे[६७]। राजमहल के अंगरक्षक और पहरुवे काषाय कंचुक पहनते थे[६८]। योद्धा भी कंचुक पहनते थे[६९] और उनकी छाती और बांह जिरह बख्तर से ढके रहते थे। (मणिवर्म पंचांगोपेतम्[७०])। सुंदर रंगों से कपड़े रंगने की कला (वस्त्रराग[७१]) और सिलाई की कला[७२] सीखना इस युग में शिक्षा का एक आवश्यक अंग माना जाता था।

दक्षिण भारत की वेष-भूषा

प्राचीन तामिल साहित्य में ऐसे वहुत से उल्लेख हैं जिनसे इस युग में दक्षिण भारत

५९—दिव्यावदान, पृ० २६, पंक्ति ६
६०—वही, पृ० २३६, पंक्ति ९-११
६१—वही, पृ० ३९८, पंक्ति २७-२८
६२—वही, पृ० ८३, पं० २१-२५
६३—वही, पृ० ४६३, पं० ८
६४—वही, पृ० २५६, पं० २६
६५—वही, पृ० ४२०, पं० ५-७
६६—भारतीय नाटचशास्त्र, २३।१२९
६७—दिव्यावदान, पृ० ४१५, पं० ५-७
६८—भारतीय नाटचशास्त्र, २३।१२६
६९—ललितविस्तर, पृ० ४७, पं० ७
७०—दिव्यावदान, पृ० ५४६, पं० १४
७१—ललित विस्तर, पृ० १७०, पं० १
७२—वही, पृ० १८९, पं० ७

की वेश-भूषा का पता चलता है। दक्षिणी राजे धोती और जड़ाऊदार टोपी पहनते थे[७३]। तामिल लोगों की वेश-भूषा उनके सामाजिक स्थान और जातियों को लेकर भिन्न भिन्न तरह की होती थी। शुद्ध तामिल समाज में मध्यवर्ग के लोगों की पोशाक दो टुकडे कपड़ो की होती थी। एक टुकड़ा वे धोती की तरह पहनते थे और दूसरा सिर पर बांधते थे[७४]। अपने सिर के लंबे बालों के वे सिर के ऊपर अथवा बगल में जूड़े बांधते थे। बाल बांधने के फीते चमकीली फूंदनेदार डोरियों और मनकों के बने होते थे[७५]। नाग जाति का एक सरदार धोती पहने बतलाया गया है[७६]। अंगरक्षक सिपाही कोट पहनते थे। यवन सिपाही जो राजमहल अथवा राजशिबिर पर पहरा देते थे कंचुक पहनते थे[७७]। युद्धक्षेत्र में एक तामिल राजा के शिबिर पर पहरा देते हुए यवन सिपाहियों का निम्नलिखित वर्णन तामिल साहित्य में एक जगह आया है

"लोहे की सिकड़ियों से नथी हुई दोहरे कपड़े की कनातों से युक्त एक खेमे पर कमर पेटी से बंधे ढीले और लंबे कोट पहने और अपने गंभीर चेहरों से दर्शकों के मन मे भय उत्पन्न करने वाले यवन सिपाही पहरा दे रहे थे। जिरह बख्तर पहने इशारे से बात करनेवाला एक प्रहरी सुदर दीप से आलोकित अंतर गृह पर धीरे धीरे घूमते हुए रात भर पहरा दे रहा था[७८]।"

तामिल स्त्रियां एड़ी तक पहुंचती साड़ी पहनती थी। कमर के ऊपर शरीर का नंगा भाग चंदन और सुगंधित चूर्णो से सज्जित होता था[७९]। वार वनिताएं केवल जांघों के मध्य तक पहुंचती साड़ी पहनती थी जिसका पोत इतना महीन होता था कि शरीर नगा देख पड़ता था[८०]। जंगली स्त्रियां हरी पत्तियों से बनी घघरियां पहनती थी[८१]।

७३—कनक सभाई, तामिल एट्टीन हुंड्रेड इयर्स एगो, पृ० ११०
७४-७७—वही, पृ० ११७
७८—वही, पृ० ३७-३८
७९—वही, पृ० ११७
८०—वही,
८१—वही, पृ० ११८

आठवाँ अध्याय

गंधार, मथुरा और दक्षिण की कला में भारतीय वेश-भूषा

गंधार कला में आयी उत्तर पश्चिम भारत की वेश-भूषा मिश्रित है। धोती, दुपट्टा, चादर और पगड़ी जैसे शुद्ध भारतीय पहरावे के साथ साथ हम गंधार कला में पायजामा, अंगरखा, कंचुक और कुलाह भी देखते हैं जो उत्तरापथ के निवासियों के पहरावे के खास अंग हैं। गंधार के पहरावे में यूनानी पहरावे का भी स्पष्ट प्रभाव है जो यूनानियों के साथ साथ इस देश में पश्चिमी एशिया से आया मालूम पड़ता है।

राज पुरुषों का पहनावा

गंधार की मूर्तिकला में राजे और सामंत एड़ियों तक लटकती सिलवटदार धोती तथा कंधों को ढकती तथा बायी बाहु पर होती पीछे फिकी हुई चादर पहनते थे। चादर की सिलवटों को कड़ा बनाये रखने के लिए एक भारी वजन चादर मे पीछे बंधा रहता था (आ० १२५)[१]। चादर पहनने के इस तरीके मे कलात्मक रेखाए और सिलवटें पड़ती थी (आ० १२६)[२]। कभी कभी चादर छाती नही ढकती थी (आ० १२७-१२८)[३]। और कभी कभी वह पूरी छाती ढकती हुई केवल दाहिना कधा खुला छोड़ देती थी (आ० १२९)[४]। बैठने में चादर दाहिने कंधे और छाती को नहीं ढकती पर गोद मे उसकी सुदर सिलवटे देख पड़ती हैं (आ० १३०)[५]। डोरी या गोंट के बने कमरबंद के दोनों झब्बेदार सिरे कमर से धोती को खिसकने से रोकने के लिए आगे लटकते रहते थे[६]। गंधार में उच्चवर्ण के लोग चट्टियां अथवा खड़ाऊ पहनते थे। राजाओं के जूते रत्नजटित होते थे। कर्टियस के अनुसार राजा सुभूति ऐसे ही जूते पहनते थे[७]

पगड़ियां

कभी कभी खुले सिर पर जूडे मोती की लड़ों और रत्नों से सजे होते थे[८], लेकिन बहुधा लोग जूड़े के ऊपर पगड़ी पहनते थे (आ० १३१–१३३)[९]। पगड़ियों के सबंध मे एक उल्लेख-

१—फूशे, ल' आर्त ग्रेकोबुधीक दु गंधार, भा० २, आ० ३९३, ४१७
२—फूशे, वही, आ० ४१६
३—फूशे, वही, आ० ४१५-१७
४—फूशे, वही, आ० ३९२
५—ए० एस० आई० एन० रि०, १९११-१९१२, प्ले० ४०, ११
६—फूशे, वही, आ० ४१५
७—हिस्टो० अले०, ९।१।५
८—फूशे, वही, आ० ३९२, ३९५, ४१८ इत्यादि
९—फूशे, वही, आ० ३९४, ३९६, ३९७

नीय बात यह है कि वे सिर पर टोपी की तरह पहनी जाती थी[१०]। एक दृश्य में जहां सिद्धार्थ हाभिनिष्क्रमण के लिए उद्यत है सारथि छंदक उनकी बंधी पगड़ी हाथ में लिए है[११]। यह पगड़ी किसी फूले कपड़ी की बनी है और उसका एक छोर पंखे के आकार में है। पगड़ी के फेंटों के अस्त व्यस्त न होने देने के लिए उस पर एक शीर्षपट्ट भी लगा हुआ है। आज दिन भी पंजाब और अफगानिस्तान में इस तरह की पगड़ी बांधी जाती है।

शीर्षपट्ट बहुधा अलंकृत होते थे। कलकत्ता म्यूजियम में जलालाबाद के पास से मिले एक शीर्षपट्ट पर चूमते हुए मिथुन का चित्र है (आ० १३४)[१२]। शीर्षपट्ट कभी कभी सुपर्ण द्वारा अपहृत नाग के चित्र से भी अलंकृत होता था (आ० १३५)[१३]। कभी कभी इस पर बुद्ध मूर्ति भी खचित होती है (आ० १३६)[१४]। कभी कभी गोल शीर्षपट्ट सिंहमुख से अलंकृत होता है[१५]। कभी कभी इसके आकार से मोर के फैली पूछ का बोध होता है। मोर की छाती और पीठ के उतार चढ़ाव का उपयोग सुनार सुंदर अलंकार बनाने के लिए करते थे (आ० १३३)[१६]। पंखे ऐसे फैले ऊपरी छोर के नीचे पगड़ी की फेंटें सजायी जाती थीं। कभी कभी इसके तीन फेंटें होते थे[१७] और इसकी सजावट फेटों के अंदर से बीचो-बीच जाते हुए एक सिकुड़े कपड़े से और अधिक बढ़ जाती थी। शीर्षपट्ट का मिथुन से सुसज्जित आधार पगड़ी के बीचोबीच लगा हुआ है। रत्नों और गरुड़ मूर्तियों से खचित एक पट्टी ललाट के चारों ओर है। ये पट्टियां और अलंकार दो बंधनों से जिनके छोर पीछे हवा में फड़फड़ा रहे हैं बंधे हैं (आ० १३१)[१८]।

गंधार की मूर्ति कला में पगड़ियाँ

१—चक्करदार लट्टू वाली पगड़ी (आ० १३७)[१९]।

२—हलकी पगड़ी जिनके दोनों छोर सिर पर आड़े बल होते हुए पीछे खोंस दिये गए हैं (आ० १३८)[२०]।

१०—फूशे, वही, भा० २, पृ० १८६

११—फूशे, वही, भा० १, आ० १७८ ए०, १८० बी; भा० २, आ० ४४७

१२—फूशे, वही, भा० १, पृ० १८१, नो० ३

१३—फूशे, वही, भा० २, आ० ३२०, ३६८, ४१५

१४—फूशे, वही, आ० ३६६, ४२६

१५—फूशे, वही, आ० ३०६, ४६५

१६—फूशे, वही, आ० ३६७

१७—फूशे, वही, भा० १, प्ले० १

१८—फूशे, वही, भा० २, आ० ३६३-६४

१९—ए० एस० आ० इ०, एन० रि०, १९१२-१३, प्ले० ६ ए

२०—वही, १९१५-१६, प्ले० २० ई०

१३२ १३३ १३४
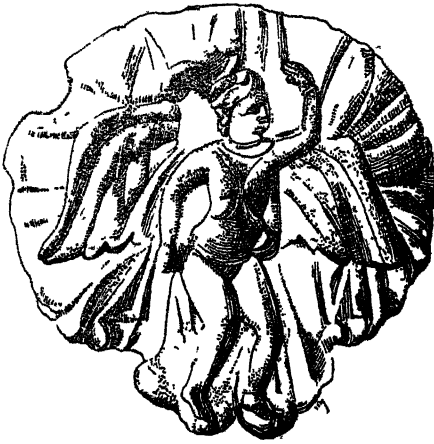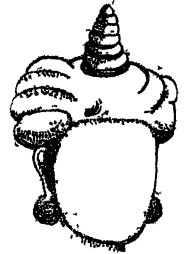
१३५ १३६ १३७

१३८ १३९ १४० १४१ १४२

३—एक हलकी पगड़ी जिस पर एक तिकोना अलंकार लगा है (आ० १३९)[२१]

४—एक हलकी मोटे फेटों वाली पगड़ी जिसका सिर के ऊपर वाला सिरा पंखाकार है (आ० १४०)[२२]

५—शीर्षपट्ट के साथ एक भारी पगड़ी जिसके लट्टू से एक एक मोती की लड़ दोनों ओर बंधी है (आ० १४१)[२३]।

गंधार की मूर्तिकला में सेठ दाताओं को धोती, दुपट्टा और चादर पहने दिखाया गया है (आ० १४२)[२४]। यही पोशाक व्यापारियों[२५] और गृहपतियों की भी थी[२६]। सरदी में वे कंचुक पहनते थे जिसके दाहिने[२७] या बायें ओर[२८] घुटनों के ऊपर एक कटाव होता था। एक चुस्त बाहों वाले लंबे कोट में गले से ले कर छाती के मध्य तक अथवा नाभि तक एक खड़ी पट्टी का मतलब शायद तुकमा-घुंडी की कतार से है[२९]। सहरी बहलोल से मिली एक दाता की मूर्ति एक चुस्त बाहों वाला कंचुक पहने है। चादर का एक कोना दाहिने कांख से निकाल कर बाये कंधे पर डाल दिया गया है जिससे छाती ढंक जाती है। वह एक चपकी टोपी भी पहने है (आ० १४३)[३०]। पुरुष शलवार भी पहनते थे जो इत्सिंग के अनुसार ईरान, तिब्बत, काशगर और तमाम तुर्किस्तान के पहरावे का एक अंग था। समूरी अस्तर वाला जोमा कभी-कभी कंचुक के ऊपर पहन लिया जाता था (आ० १४४)[३१]।

सिपाहियों की वेश-भूषा

गंधार की मूर्तियों में दो तरह के सिपाही मिलते हैं जिनकी पोशाकें भिन्न भिन्न होती हैं (आ० १४५-१५०)[३२]। एक तरह के सिपाही तो लगता है किसी जंगली जाति के थे। धोती, पेटी, रस्सी का बना कमरबंद और दाहिने कंधे से छाती पर होते हुए कमरबंद से खुसा दुपट्टा पहनते हैं (आ० १४५-१५०)। उनके बाल खुले अथवा पगड़ी से ढंके होते हैं। एक

२१—वही, प्लेट जे

२२—वही, १९११-१२, प्ले० ४२, १७

२३—वही, प्ले० ४०, १२

२४—फूशे, वही, आ० ३५०

२५—फूशे, वही, आ० ४४०

२६—फूशे, वही, आ० ३४५, ३४९

२७—फूशे, वही, आ० ३४६

२८—फूशे, वही, आ० ३५१, ३५३

२९—वही, भा० २, आ० ३७०

३०—ए० एस० ई०, एन० रि०, १९११-१२, प्ले० ४१, १४

३१—फूशे, वही, आ० ३५२

३२—फूशे, वही, भा० १, आ० ३१, २०१, २०४, २९२

दूसरी तरह के सिपाही (आ० १४६-१४९)[३३] शीर्ष कटाह या खौद और असीरिय ढंग का जिरह बख्तर पहने हैं[३४]। फूशे का विचार है ये भाड़े के सिपाही पश्चिम से आते थे[३५]। यह अधबहियां जिरह बख्तर घुटनों तक पहुंचता है। कड़ीदार जिरह बख्तर छाती पर बाहुओं पर कस कर बैठता था और उसकी कड़ियां सेहरे के आकार की (आ० १४९)[३६] अथवा नग के आकार की (आ० १४८) होती थी[३७]। ये कड़ियां तिब्बती अथवा जापानी जिरह बख्तरों की तरह एक दूसरे से पतली डोरियों से बंधी होती थीं। बहोलियों (आस्तीनों) के किनारे मजबूती के लिए रस्सियों से बंधे होते थे। घघरियां चौकोर चिप्पियों की समानांतर पंक्तियों से बनी होती थीं और इनके किनारे रस्सियों से मजबूती के लिए बंधे होते थे। सिपाही कमरबंद और परतले भी पहनते थे। बख्तर का गला समभुज कोण (आ० १४९), अथवा अर्धवृत्ताकार होता था (आ० १४७)। इन बख्तरबंद सिपाहियों में हम दो प्रकार देख सकते हैं। इनमें एक तो पगड़ी कंचुक और धोती पहनता था (आ० १४९) और दूसरा यूनानी खौद और जूते। सिपाही कभी कभी जांघिया भी पहनते थे[३८]। पर जांघिया केवल सिपाहियों के पहरावे तक ही सीमित न था। समय आने पर सामंत और राजे भी उसे पहन सकते थे।

शिकारियों इत्यादि की वेश-भूषा

गंधार की मूर्तिकला में हमें शिकारी के दो बार दर्शन होते हैं (आ० १५१)[३९]। वह केवल धोती पहरे दिखाया गया है। खेतिहर (आ० १५२)[४०] अथवा मजदूर (आ० १५३)[४१] केवल एक छोटी धोती अथवा लंगोटी पहनते थे। पहलवान भी लंगोट ही पहनते थे[४२]। दंगल के वक्त शाक्य पुरुष जांघिया पहनते थे (आ० १५४)[४३]। ब्राह्मण और ब्रह्मचारी धोती और बाएं कंधे से लटकती चादर पहनते थे। उनके बाल पीछे लटकते थे पर सिर पर बद्ध शिखा होती थी (आ० १५५)[४४]।

३३—वही, आ० २०२

३४—असीरिय जिरह बख्तर से तुलना के लिए देखो स्टाइन, एंशंट खोतान, पृ० २५२, प्ले० १६; रुइंस आफ डेसर्ट केथे, भा० १, पृ० ४४३, आ० १३८

३५—फूशे, वही, भा० २, पृ० ४०२

३६—फूशे, वही, भा० १, आ० २०२

३७—वही, भा० १, आ० २०४

३८—वही, भा० १, आ० २७०

३९—वही, भा० १, आ० १३८, १८७ बी

४०—वही, भा० १, आ० १७५-७६

४१—वही, भा० १, आ० २६६; भा० २, आ० ३०२

४२—वही, भा० २, आ० ३०३

४३—वही, भा० १, आ० १७२

४४—वही, भा० २, आ० ४३१

टोपियाँ

विदेशी टोपियां पहनते थे। एक कुलाहनुमा टोपी जिसके पेंदे में चारों ओर गोंट लगी रहती थी कभी कभी सिर पर पुलखे तौर से पड़ी रहती थी (आ० १५६)[४५]। कभी कभी टोपी की चोटी पर फूदने होते थे और वह अर्धचंद्र से भूषित होती थी। यह टोपी एक रूमाल से जिसके दोनों सिरे पीठ पर लहराते थे, सिर के साथ बंधी होती थी (आ० १५७)[४६]। एक गुंबद के आकार की टोपी जिसके सिरे पर सकरमुद्धीनुमा गांठ (सरकने वाली डेढ़ गांठ) पड़ी होती थी और जिसका किनारा मोतियों से सजा रहता था, पहनी जाती थी (आ० १५८)[४७]। कटावदार किनारे और गुम्मददार सिरे वाली टोपियां या खौद बहुधा विदेशी सिपाही पहना करते थे (आ० १५९)[४८]।

स्त्रियों की वेश-भूषा

गंधार की कला में स्त्रियों की वेश-भूषा के तीन कपड़े स्पष्ट हैं—यथा आस्तीन वाले कंचुक, साड़ी जो सारे शरीर को ढंक लेती थी, और एक चादर अथवा दुपट्टा जो कंधों को ढाँकता हुआ बाहुओं पर गिरता था (आ० १६०-१६१ ए० बी०)[४९]। कभी कभी चादर का एक छोर कमर में खोंस लिया जाता था (आ० १६२-१६३)[५०]। झुल्ला प्रायः घुटनों तक पहुँचता था (आ० १६४-१६५)[५१] और अपवाद स्वरूप कभी कभी वह आगे खुला भी रहता था (आ० १६६)[५२]। इस पूरी बाहों वाले और कमर के जरा नीचे पहुँचते हुए खुले कोट की काट ऐसी होती थी जिससे नाभि खुली रह जाय। ऐसा लगता है कि यह कोट बीच में लगे एक बटन से बंद होता था। कभी कभी यह कोट एक चौथाई बाँहों वाला होता था और नाभि तक पहुँचता था[५३]। एक दूसरी तरह का पूरी बाहों वाला कोट नाभि को ढक लेता था (आ० १६६)[५४]। कंचुक साड़ी के ऊपर या नीचे पहना जाता था[५५]। कभी कभी साड़ी पहनने के दोनों तरीके साथ साथ देख पड़ते हैं (आ० १६७-१६८)[५६]। स्त्रियों के कंचुक लंबे और कसे होते

४५—वही, भा० २, आ० ३५४
४६—वही, भा० २, आ० ३५३
४७—ए० एस० आई० एन० रि०, १९११-१२, प्ले० ४०-५०
४८—ए० एस० आई० एन० रि०, १९१०-११, प्ले० ३२ सी०
४९—फूशे, भा० २, आ० ३३५, ३७८
५०—फूशे, वही, भा० २, आ० ३१८, ३१९
५१—फूशे, वही, भा० १, आ० १०६; भा० २, आ० ३१९, ३३६
५२—फूशे, वही, भा० २, आ० ३३५
५३—ए० एस० आई०, एन० रि०, १९१९-२०, प्ले० ९
५४—वही, १९२५-२६, प्ले० ६६
५५—फूशे, भा० १, आ० १३९-१४०, २४४-४५; भा०, २, आ० ३१८-१९
५६—वही, भा० १, आ० १३३ बी

१४३
१४४
१४५
१४६
१४७
१४८
१४९
१५०
१५१
१५२
१५३
१५४
१५५
१५६
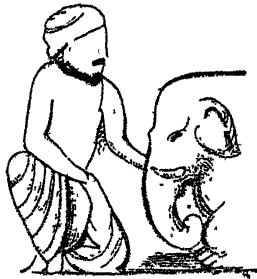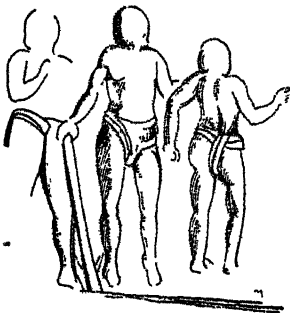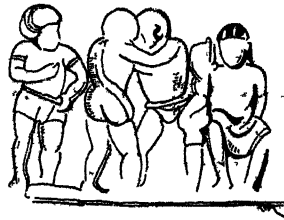
थे और उन पर सिलवटें पड़ती हैं (आ० १६९)[५७]। कभी कभी स्त्रियाँ स्तनपट्ट भी पहनती थीं[५८]।

गंधार की मूर्तियों और अर्धचित्रों से पता चलता है कि उस युग की स्त्रियाँ साड़ियां दो तरह से पहनती थीं। प्रायः साड़ी का एक भाग कमर में लपेट लिया जाता था और दूसरा हिस्सा चुन कर पीछे खोंस लिया जाता था (आ० १६३)[५९]। साडी पहनने की दूसरी रीति में साड़ी का एक सिरा कमर में लपेट लिया जाता था और दूसरा सिरा बायें कंधे पर डाल दिया जाता था (आ० १६२)[६०]। कभी कभी साड़ी इतनी बड़ी होती थी कि वह पैरों और शरीर को ढक लेती थी और उसका खाली हिस्सा आगे (आ० १७०)[६१] या पीछे (आ० १७१)[६२] लटका रहता था। साड़ी पहनने की एक तीसरी रीति मे (आ० १६१ ए० बी०)[६३] साड़ी का छुट्टा भाग स्तन पर होता हुआ बायें कंधे पर कांटे से लगा दिया जाता था। साड़ी का छुट्टा छोर कभी कभी साड़ी पर तिरछा डाल दिया जाता था जिससे दाहिना स्तन खुला रह जाता था (आ० १७२)[६४]। साड़ी ढीली तरह से भी पहनी जाती थी। ऐसी साड़ी का एक छोर जांघों में ऐसे लपेट लिया जाता था कि कमर खुली रह जाती थी। साड़ी का दूसरा छोर बायें हाथ से लिपटा हुआ उसी ओर लटका रहता था। साड़ी पहनने की इस रीति में बायीं छाती और पीठ खुली रह जाती थी (आ० १६६)। इस बात के भी उदाहरण हैं जब साड़ी चादर की तरह बायां कंधा ढाकते हुए पहनी जाती थी (आ० १७३)[६५]। दुपट्टा अथवा चादर अक्सर कंधों पर डाल दिये जाते थे और उसका एक छोर कमर के पास फेंटे में खोंस लिया जाता था। एक विचित्र ध्यान देने योग्य बात यह है कि गंधार की स्त्रियाँ आधुनिक दक्षिणी स्त्रियों की तरह सकच्छ साड़ी पहनती थीं। स्त्रियाँ अक्सर अपने बाल शेखरक से सजाती थीं, पर यदा कदा वे भारी काम के मुकुट भी पहनती थ (आ० १७४)[६६]।

५७—वही, भा० २, आ० ३१८, ३७४
५९—फूशे, वही, भा० २, आ० ३१९
६०—वही, आ० ३१८-३१९
६१—फूशे, वही, भा० १, आ० १५२
६२—फूशे, वही, भा० १, आ० २६१
६३—फूशे, वही, भा० २, आ० ३७८
६४—फूशे, वही, भा० २, आ० ३७५
६५—फूशे, वही, भा० २, आ० ३७७
६६—ए० एस० आई०, एन० रि० १९११-१२, प्ले० ४१, १६
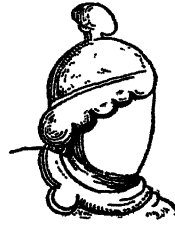
१५७ १५८ १५९ १६०

१६१ ए १६१ बी १६२

१६३
१६४
१६५
१६६
१६७
१६८

यवनी अथवा विदेशी स्त्रियाँ राजा के अंगरक्षिका का काम करती थीं[६७]। गंधार की कला में उनका चित्रण हुआ है। इनकी वेश-भूषा दो तरह की होती है यथा यूनानी अथवा भारतीय। यूनानी पोशाक में यवनियाँ घुटनों के कुछ ऊपर तक पहुँचता कंचुक तथा कमर-बंद युक्त चुन्नटदार घाघरा पहनती है। कंधों पर पड़े दुपट्टे के दोनों सिरे कंचुक में लगी कड़ियों से निकलते हैं और स्तनों को ढाकते हुए कमरबंद में खुंस जाते हैं। वे कुलाहदार टोपियां भी पहनती हैं (आ० १७५)[६८]। दूसरी तरह की अंगरक्षिकाएं साड़ी पहनती हैं जिसका एक हिस्सा तो कमर से और दूसरा छुट्टा हिस्सा तिरछे बल छाती पर होता हुआ बायें स्तन को ढाकता है। वे शिखाकार बँधा हुआ एक ढीला कमरबंद और एक भारी चादर अथवा दुपट्टा भी पहनती है (आ० १७६)[६९]।

कुषाणयुग की मथुरा की मूर्तिकला में प्रदर्शित वेश-भूषा

पुरुषों की वेश-भूषा

मथुरा के कुषाणयुग की मूर्तिकला में तत्कालीन भारतीयों और विदेशियों की वेश-भूषा संबंधी प्रचुर सामग्री है। भारतीय प्रायः सकच्छ धोती, जिसका अधिक हिस्सा कमर में लिपटा होता था और बायीं ओर फंदेदार हो जाता था, पहनते थे[७०]। वे कंधों पर होता तथा केहुनियों पर गिरता दुपट्टा और नाभि के पास खुंसा और घुटनों के बीच लटकता पटका भी पहनते थे (आ० १७७)। कभी कभी उच्च वर्ण के नागरिक अपनी धोती खिसकने से बचाने के लिए शिखाकार मुद्धीवाला कमरबंद जिसका एक झब्बेदार छोर पैरों के बीच में लटका करता था, पहनते थे। वे एक तरह का दुपट्टा भी पहनते थे जिसका एक सिरा बायें कंधे से पीठ पीछे होता हुआ तथा दाहिने घुटने को ढाकता हुआ फंदे के आकार का होकर बायीं कलाई पर स्थिर हो जाता है (आ० १७८)[७१]। कभी कभी रस्सी की तरह बटा कमरबंद ढीली तरह से पहना जाता था (आ० १७९)[७२]। दुपट्टे और कमरबंदों के पहनने के और बहुत से तरीके दिखाये गये है (आ० १८०-१८३)[७३]। कमरबंद के कई फेंटों से बंधी लुंगी घुड़सवार, सईस इत्यादि पहनते थे (आ० १८४)[७४]।

६७—मेगस्थनीज, फ्रे० २३; स्त्रावो, १५।१।५५, सिलवांलेवी, ल थियेत्र आंदियां, २६, १२६, २४६; अर्थशास्त्र, १, २१; जातकमाला, पृ० १८५

६८—फूशे, वही, भा० २, आ० ३४२

६९—फूशे, वही, भा० २, आ० ३४३

७०—फोगेल, ला स्कल्प्त्यूर द मथुरा, प्ले० ७, सी० डी०

७१—वही, प्ले०, ३५ बी०

७२—वही, प्ले० २१ बी०

७३—ए० एस० आई० एन० रि० १९११-१२, प्ले० ५७, आ० १२-१५

७४—फोगेल, वही, प्ले० ८ बी०

१७०
१७१
१७२
१७३
१७४
१७६
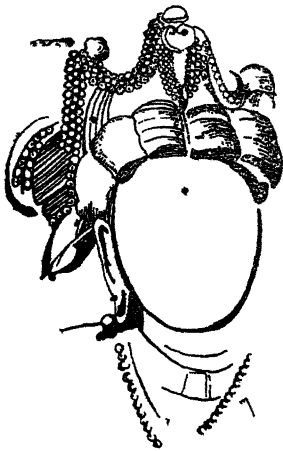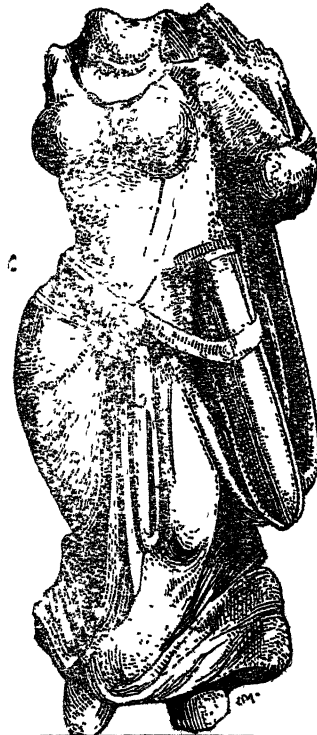
१७७

१७८

१७९
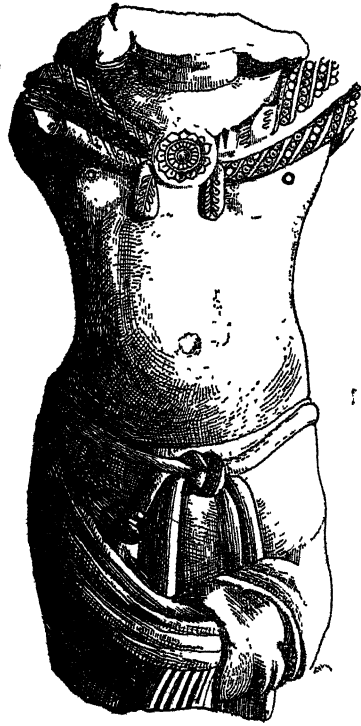
१८०
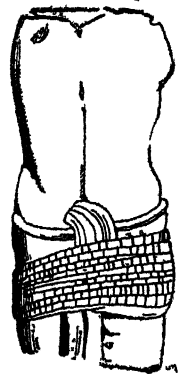
१८१
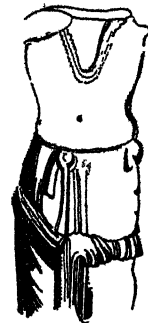
१८२
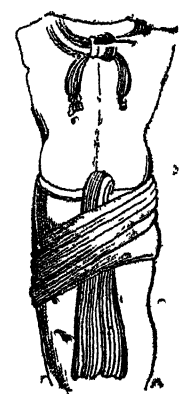
१७३

पगड़ियाँ

पुरुष प्राय: पगड़ी अथवा उष्णीष पहनते थे। यह पगड़ी प्राय: सादे कपड़े की लंबी छीर या पट्टी से बनी होती थी और मस्तक पर जूड़े के चारों ओर लपेट ली जाती थी (आ० १८५)[७५]। पर रईस लोग प्राय. कामदार पगड़ी जिन पर सोने के वृत्ताकार शीर्षपट्ट लगे होते थे पहनते थे (आ० १८६)[७६]। कभी कभी शीर्षपट्ट चपकनदार और बदामा आकार के होते थे (आ० १८७)[७७]। कभी कभी फुल्लों से सजी एक धातु की पट्टी से लगा शीर्षपट्ट पगड़ी पर पहन लिया जाता था (आ० १८८)[७८]। कभी कभी बदामा शीर्षपट्ट कलंगी जैसे आभूषण से सज्जित होता था (आ० १८९)[७९]।

एक दूसरे तरह के पहिरावे में जो शक राजाओं और सिपाहियों को प्रिय था कंचुक, शलवार, टोपी और पूरे पैर के जूते होते थे। शकों की प्रतीक वेश-भूषा का चित्र हमें मथुरा के पास माट से मिली कनिष्क की बे सिर वाली मूर्ति से मिलता है। मूर्ति का दाहिना हाथ गदा पर और बायाँ तलवार की मूंठ पर है। घुटने के नीचे तक पहुंचता कंचुक एक कमरपेटी से जिसके दो चौकोर टिकरे सामने देख पड़ते हैं बंधा है। कमरपेटी का बाकी हिस्सा एक चोगे से जो कंचुक से बड़ा है और घुटनों के नीचे तक पहुंचता है ढका हुआ है। कंचुक और चुगा सादे कपड़े के बने मालूम पड़ते हैं। मूर्ति के तस्मेदार भारी बूट हमारा ध्यान खींचते हैं (आ० १९०)[८०]। ऐसे जूतों को वृहद् कल्पसूत्रभाष्य मे कफुस्स कहा गया है जो ईरानी कफ्स का अपभ्रंश मात्र है।

मथुरा मे मिली एक दूसरे शक राजा की मूर्ति एक कंचुक पहने है जिसमें छाती के नीचे तीन इंच चौड़ी दोहरी कामदार गोंट घुटनों से होती हुई नीचे चली गयी है। दाहिनी मोहरी में भी ऐसी ही गोंट लगी है। पूरे कंचुक में जामदानी मलमल की तरह फुल्ले और दाहिनी मोहरी के सिरे पर तीन इंच व्यास का एक उभरा वृत्त है। आधुनिक कोट की तरह कंचुक के दोनों भाग गले के ठीक नीचे जुट कर कुछ नीचे जुटते हैं, पर इस कंचुक और आधुनिक कोट में यह अंतर है कि कंचुक में न तो गला है न लौटन (लेपल्स)। ऐसी अवस्था में गले के स्थान पर एक त्रिभुजाकार कटाव पड़ जाता है जिसमे से हम गले के चारों ओर पतली सिलाई वाला नीचे का वस्त्र देख सकते है। बूट आगे ऊपर तक तीन इंच चौड़ी पट्टियों से

७५—स्मिथ, जैन स्तूप ऑफ मथुरा, प्ले० १६, २

७६—वही, प्ले० १०१, १

७७—वही, प्ले० ६४

७८—फोगेल, वही, प्ले० ३६ बी०

७९—अग्रवाल, हैंडबुक ऑफ दि कर्जन म्यूजियम ऑफ ऑर्कियोलोजी, मथुरा, प्ले० १६, ३३

८०—ए० एस० आई०, एन० रि०, १९११-१२, पृ० १२२; प्ले० ५३, ३

८१—वृहद् कल्पसूत्र भाष्य
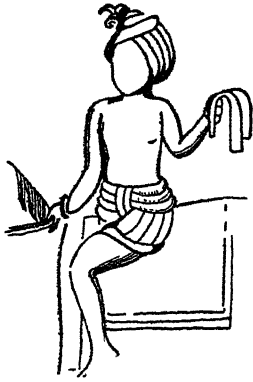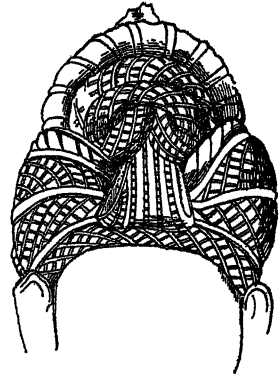
१८४ १८५ १८६

१८७

१८८ १८९
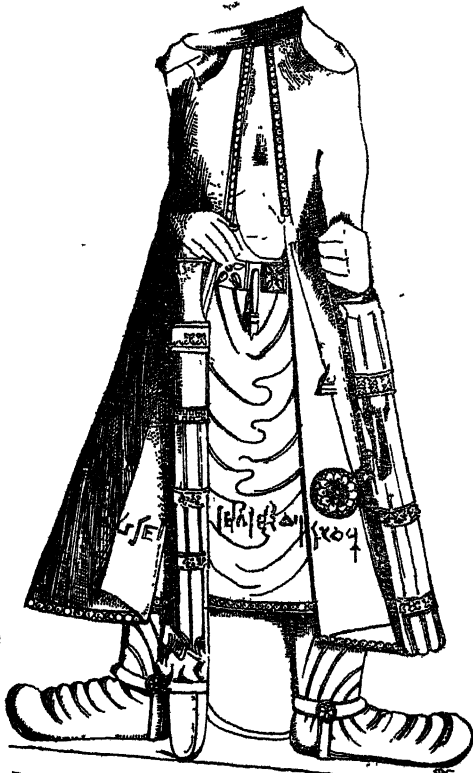
१९०

सजे है। एड़ी से जरा हट कर एक तस्मा है। जूतों के साथ रकाब जेसी वस्तु भी लगी है (आ० १९१)[८२]।

मथुरा की मूर्तिकला में एक और तरह का कंचुक आया है जो घुटने तक पहुँचता है (आ० १९२ ए० बी०)[८३]। यह कंचुक कारचोबी गोट से सजा है। कमरपेटी गोल और चौखूटे टिकरों से बनी है। टिकरे अलंकारिक मत्स्य और कुलाह पहने अश्वारोहियों की आकृति से सजे हैं। ये दोनों अलंकार कुषाणयुग में साधारणतः व्यवहार में आते थे[८४]।

मथुरा से मिली सूर्य की एक बैठी प्रतिमा एक छोटी बहोलियों वाला तथा शरीर और बाहुओं पर चुस्ती से बैठने वाला कंचुक पहने है (आ० १९३)[८५]। इसका गला गोल है तथा मोहरियों पर किनारेदार गोट है। कंचुक के बीच में भी ऊपर से नीचे तक गोट लगी है। दोहरे फेटे वाले कमरबंद मे एक धुरा खुंसा है। टोपी पर गथा हुआ काम है।

एक दूसरी मूर्ति जो दाढ़ी और घुंघराले बाल से एक शक अथवा ईरानी की मूर्ति प्रतीत होती है एक गहरा काम किया हुआ कंचुक पहने है। कारचोबी के अलंकार मेहराबदार खानों में बने है। बुंदकीदार (Beading) अथवा डोरीदार काम एक बिचले खाने को जिसके चारों ओर सीधी और खड़ी रेखाओं और बिंदुओं से छोटे खाने भरे हुए हैं, घेरे हुए हैं। रूमाल पीठ पर गिरता हुआ दिखलाया गया है, और इसके दोनों सिरे छाती पर बायीं ओर पहने हुए एक दूसरे छेद से निकाल दिये गए है। कुलाहनुमा टोपी के किनारे पर काम किया हुआ है उसके दाहिनी ओर चंद्रमा और सूर्य की प्रतिकृतियां बनी हुई हैं (आ० १९४)[८६]।

विदेशी ईरानी अथवा शक प्रायः टोपियां पहनते थे। मथुरा से मिला हुआ एक मूर्ति का सिर एक कुलाहनुमा टोपी, जो सिरा जरा आगे झुकने से पीछे की ओर टेढ़ी पड़ जाती है पहने है। (आ० १९५)[८७]। टोपी के बायें हिस्से पर संकेत नाम (मोनोग्राम) जैसा कसीदा किया हुआ है। टोपी नमदे अथवा कपड़े के दो टुकड़ों को सी कर बनी है। टोपी में यह सिलाई सिरे से लेकर नीचे तक साफ साफ दिखलायी देती है। टोपी का किनारा एक गोंट से जिसमें छोटे छोटे टुकड़ों की तीन पंक्तियां है सजा है। शायद इन टुकड़ों से रत्नों का मतलब हो (आ० १९६)[८८]। एक कुलाहनुमा टोपी जिसका सिरा पीछे की ओर झुकने से

८२—ए० एस० इ० रि, १९११-१२, पृ० १२४, प्ले० ५४, ४-६

८३—वही, प्ले० ५५, ७-८

८४—वही, पृ० १२५

८५—वोगेल, वही, प्ले० ३३ बी०

८६—वासुदेवशरण अग्रवाल, वही, प्ले० २१, आ० ४१

८७—फोगेल, वही, प्ले० ४ ए०

८८—वही, प्ले० ४ बी०

१९१

१९२ ए०

१९२ बी०
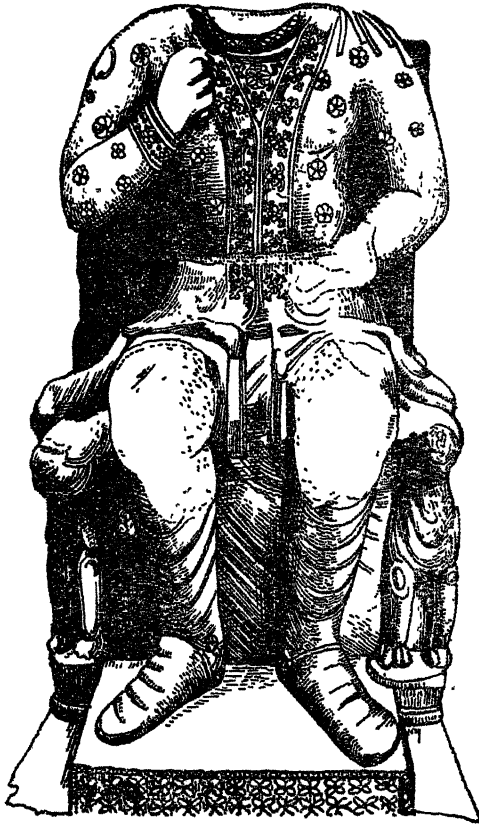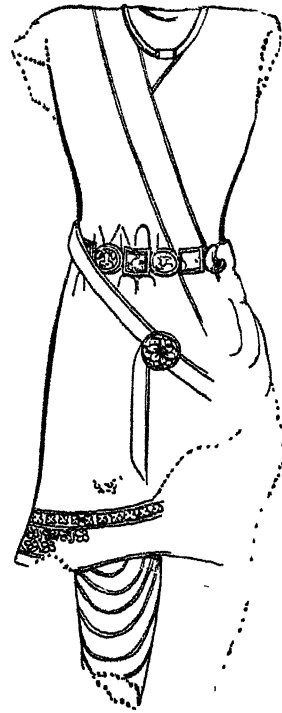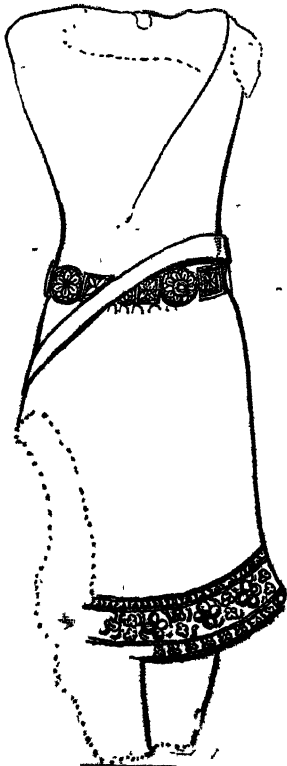
१९३
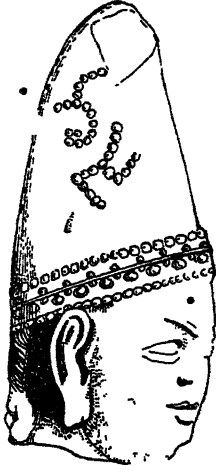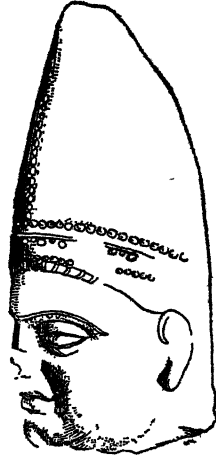
१९४
१९५
१९६
१९७
१९८
१९९
२००
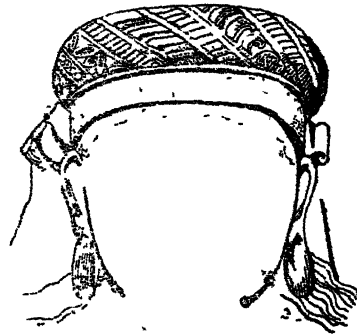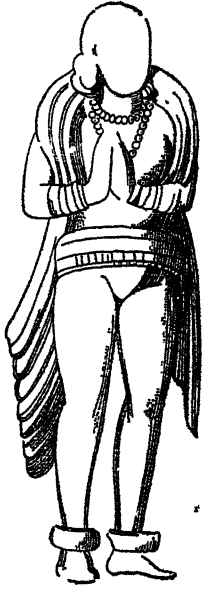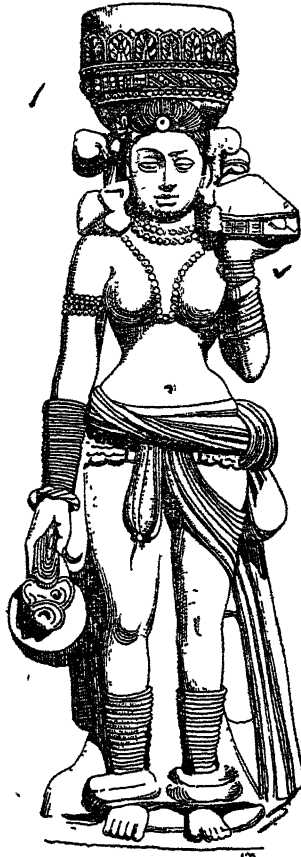
२०१
२०२
२०३
२०४
२०५
२०६
२०६
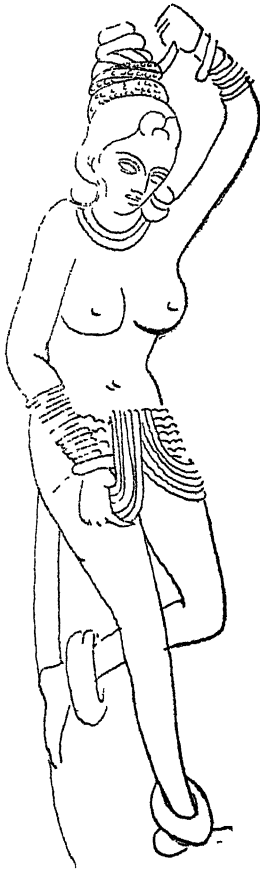
२०७ २०८ २०९
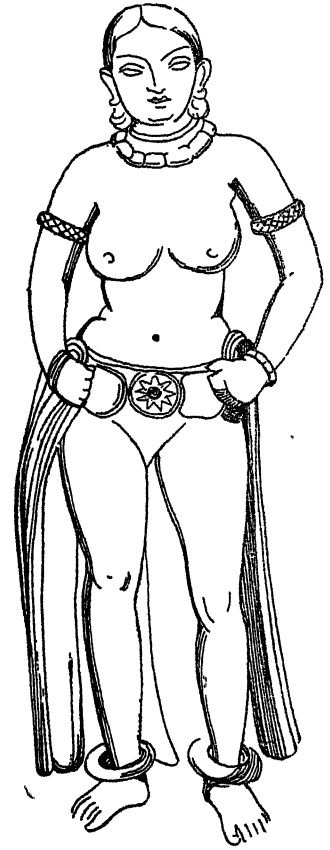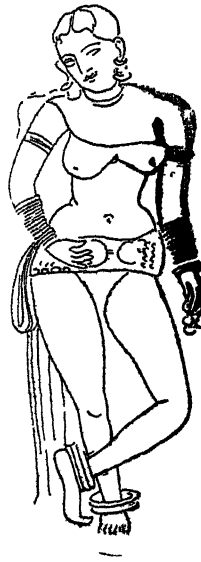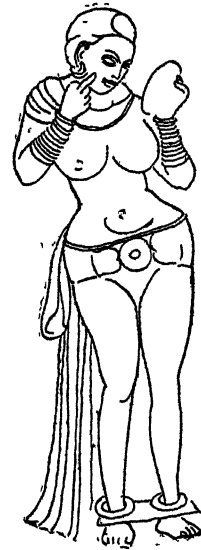
२११

मध्यकालीन उत्तर और पश्चिम भारत में स्त्रियां प्रायः लहंगा पहनती थी और आज दिन भी पश्चिमी युक्त प्रान्त, राजपूताना, मालवा तथा गुजरात में यह प्रथा जारी है। जहां तक हमें पता चलता है सब से पहले लहंगा कुषाणयुग की मूर्तिकला मे दीख पड़ता है। इस युग की मूर्तियों मे आये वेश-विन्यास से यह प्राय. निश्चित हो जाता है कि लहंगा पहनने की प्रथा साधारण न हो कर अपवाद स्वरूप थी। ऐसा लगता है कि इस युग मे ग्वालिने और उन्हीं की श्रेणी की स्त्रियां लहंगा पहनती थी। मथुरा में जमालपुर के पास से मिली एक स्त्री मूर्ति शायद ग्वालिन की है (आ० २१३)। वह दाहिने हाथ से बेंत की बनी गेंडुरी पर स्थिर सिर पर घड़ा पकड़े है। नाभि के जरा नीचे तक उसका शरीर अनावृत है पर उसके बाद लहंगा शुरू होता है यह लहंगा वैसा भारी भरकम नही है जैसा आज दिन भी मथुरा के आसपास पहना जाता है । इसमें उतनी कलियां भी नही है । लहंगा कमर पर सीधा है और निचले भाग में केवल एक घेर पड़ता है । लहंगे का बड़ा जोड़ ओर से छोर तक ठीक बीचोबीच हो कर जाता है ।

मथुरा की स्त्रियां, कम से कम जैसा उनका मथुरा की मूर्तिकला मे प्रदर्शन हुआ है, कंचुक या चोली नहीं पहनतीं। लेकिन इसके अपवाद स्वरूप आपानक दृश्यों मे स्त्रियां सिले कपड़े पहने दिखलायी गयी हैं। ये स्त्रियां कमर तक कसा कंचुक जिनका घेर चूननदार होता है (आ० २१४-२१५)[९९] पहनती हैं। मथुरा से मिले एक मूर्ति के पादपीठ पर जिस पर कुषाण संवत् का उन्यासीवां वर्ष है, अंकित कुछ स्त्री मूर्तियां कंचुक पहनती है। कंचुक के ऊपर वे साड़ी भी पहनती हैं। इस साड़ी का एक भाग तो वह कमर मे लपेट लेती थीं और उसका दूसरा भाग बाये स्तन को ढांकते हुए बायें कंधे पर डाल लेती थी (आ० २१६)[१००]। साड़ी पहनने का यह ढंग गंधार में साड़ी पहनने के ढंग से मिलता जुलता है। हो सकता है ये स्त्रियां गंधार की ही हों।

खूब कामदार कंचुक शक अथवा ईरानी स्त्रियां कभी कभी पहनती थीं। मथुरा के पास जमालपुर के टीले से मिले हुए एक वेदिकास्तंभ पर, जो अब लखनऊ म्यूजियम में है, धूपदानी लिए हुए दाहिनी ओर जाती हुई एक स्त्री का चित्र है (आ० २१७)[१०१]। वह लौटे हुए छज्जों वाली एक टोपी और पैर तक पहुंचता एक कंचुक पहने है । कंचुक के बीच में गले से लेकर अंत तक एक पट्टी या गोट है । लेकिन इस कंचुक की सब से खास बात तो उस पर कसीदा किये अथवा बुने हुए अलंकार है। पूरा कंचुक का कपड़ा बारह पड़ी पट्टियों में बंधा हुआ है जिनमें शाखें और फुल्ले बने हुए है। कोई भी प्रतिकृति इस अलंकार

९९—वही, प्ले० ४७, आ० ए०

१००—वही, प्ले० ६० बी०

१०१—स्टेला क्रामरिश, ग्रुंडत्सुगे डर इंडिशेन कुंस्ट प्ले० १९
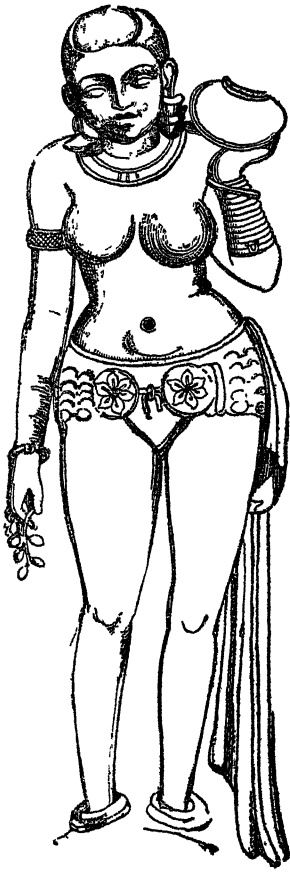
२१२ २१३ २१४ २१५ २१६ २१७
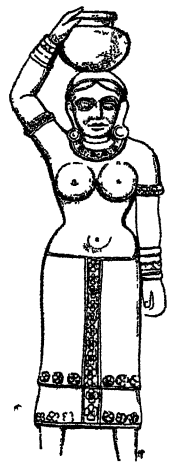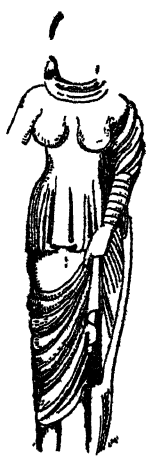
की खूबसूरती नही दिखला सकती। लगता है कंचुक का कपड़ा वही पुष्पपट्ट है जिसका उल्लेख इस काल के साहित्य मे आता है ।

जैसा कि मथुरा की मूर्ति कला से पता चलता है स्त्रियां अपने सिर इसलिए नहीं ढांकती थीं कि लोग उनकी सुदर केश रचना देख सकें । लेकिन कुछ स्त्रियां पीछे लहराती ओढ़नी भी ओढ़ती थी[१०२] । एक जगह एक परिचारिका लट्टूदार पगड़ी[१०३] जिसका सिरा पीछे लटक रहा है पहरे देख पड़ती है ।एक दूसरी स्त्री पाग पहने है (आ० २०७)[१०४] ।

दक्षिण भारत की वेश-भूषा

जैसा हम देख आये हैं इस युग में दक्षिण भारत की वेश-भूषा का आनुशंगिक रूप से उल्लेख हम दक्षिण के संगम युग के साहित्य मे पाते हैं। यह हमारा भाग्य है कि अमरावती नागार्जुनी कोंडा, और गोल्ली से मिले हुए अर्धचित्र तत्कालीन आचार विचार और वेश-भूषा को अक्षुण्ण बनाये रखते हैं । इन अर्धचित्रों से हम तत्कालीन वेश-भूषा का जीता जागता चित्र खीच सकते हैं । अर्धचित्रों में अंकित दक्षिण भारत के लोग उत्तर भारत के लोगों की तरह एड़ी के जरा ऊपर तक पहुंचती धोती पहनते हैं। एक चुना हुआ अश नाभि के पास कमर में खोंस लिया जाता है और लांग पीछे खोंस ली जाती है (आ० २१८)[१०५] । धोती पहिरने के दूसरे ढंग में धोती घुटनों तक पहुंचती है (आ० २१९)[१०६] । तीसरी रीति में चुना हुआ धोती का अंश जांघों के बीच से होकर पीछे खोंस लिया जाता था (आ० २२०-२२१)[१०७]। कमरबंद बांधने की अनेक कलात्मक रीतियां थीं। एक रीति में कमरबंद का एक फेटा दोनों सिरों को छोड़ कर बांध लिया जाता था, दूसरा फेटा मोड़ कर कमर पर खोंस लिया जाता था (आ० २२०) । एक दूसरी रीति में कमरबंद का एक फेंटा बांध लिया जाता था और छुट्टा हिस्सा मोड़ लिया जाता था, दूसरा हिस्सा पहले फेंटे से तीन फेरे निकाल कर लटका दिया जाता था (आ० २२२)[१०८] । तीसरी रीति में कमरबंद एक फेंटे का होता है और इसके छुट्टे सिरे मोड़ कर कमर के अगल बगल खोंस लिये जाते हैं (आ० २१८) । चौथी रीति में कमरबंद के एक सिरे की दाहिनी ओर सकरमुद्धी बना ली जाती है इसका एक सिरा तो

१०२—स्मिथ, वही, प्ले० ३४-३५

१०३—वही, प्ले० १४

१०४—फोगेल, वही, प्ले० १७ ए०

१०५—फर्गुसन, वही, प्ले० ९५, आ० ३

१०६—वही

१०७—वही, प्ले० ७४; ९३, २

१०८—वही, प्ले० ९१-३
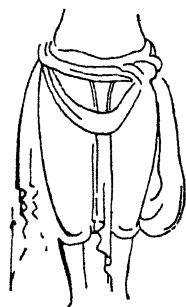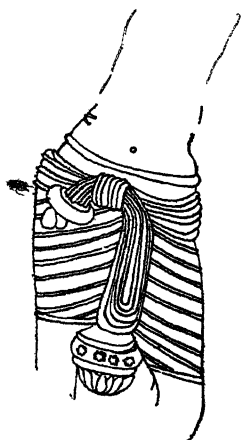
२१८
२१९
२२०
२२१
२२२
२२३
२२४
२२५
२२६
२२७
२२८
२२९
२३०
२३१
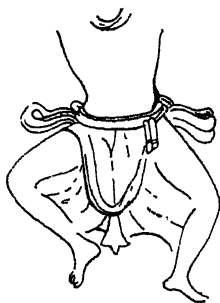
लटका करता है और दूसरा बायें हाथ में होता है[१०९]। एक पांचवें तरह का कमरबंद रस्सियों का बना होता है जिसके दोनों सिरों पर झब्बे होते हैं (आ० २२३)[११०]। नाचने की मुद्रा में कमरबंद के इन मोड़ों से नर्तक की सादी वेश-भूषा में एक गति आ जाती थी (आ० २२४)[१११]।

दुपट्टे या चादर पहनने की रीति कम थी। छाती पर तिरछा जाता हुआ और बायें कंधे पर पड़ा हुआ दुपट्टा कभी कभी देख पड़ता है (आ० २२५-२६)[११२]। कभी कभी कटा हुआ दुपट्टा परतले की तरह छाती पर पहरा जाता था (आ० २२७)[११३]। दुपट्टा कभी कभी गले और कंधों पर भी डाल लिया जाता था (आ० २२८)[११४]।

दक्षिण भारत में अनेक तरह के शिरोवस्त्र भी पहने जाते थे। पगड़ियां ढीले तौर से दो या तीन फेरों में बांध ली जाती थीं और उनके बीच में धातु का बना शीर्षपट्ट लगा होता था (आ० २२९)[११५]। एक दूसरी तरह की अटपटी पगड़ी में एक सिरा नीचे झुका हुआ और एक ऊपर उठा हुआ दिखलाया गया है (आ० २३०)[११६]। एक तीसरे तरह की पगड़ी चक्करदार बंधी हुई है और उसके सिरे पर मोरपंख जैसा आभूषण है (आ० २३१)[११७]। चौथी तरह की पगड़ी ढीली बंधी है और उसका पंखानुमा फैलता हुआ एक सिरा पगड़ी में खुंसा है (आ० २३२)[११८]। पांचवी तरह की पगड़ी में उसके दोनों छोर शीर्षपट्ट के पेंच से निकाल कर जूड़े के साथ बांध दिये गये हैं (आ० २३३)[११९]। छठी तरह की पगड़ी में इसके दोनों छोर उस पर लगे दो छल्लों से निकाल दिये हैं (आ० २३४)[१२०]। सिर से चपकी हुई छोटी गोल पगड़ी सरपेंच के साथ पहनी जाती थी (आ० २३५)[१२१]। अमरावती के अर्धचित्रों में निम्नलिखित तरह की पगड़ियां मिलती हैं—

१—तीन कुल्ले वाली पगड़ी जिस पर शायद एक पंख खुंसा है (आ० २३६)[१२२]।

१०९—शिवराम मूर्ति, अमरावती स्कल्पचर्स इन दि मद्रास गवर्नमेंट म्यूजियम, प्ले० ८, २५
११०—शिवराम मूर्ति, वही, प्ले० ८, ३१
१११—लांगहर्स्ट, दी बुधिस्ट एंटीक्वीटीज फ्रॉम नागार्जुनीकोंड, प्ले० २२ ए०
११२—वही, २१ ए० और ४६ ए०
११३—वही, प्ले० ४० ए०
११४—शिवराममूर्ति, वही, प्ले० ८, ६
११५—फर्गुसन, वही, प्ले० ७४
११६—वही, प्ले० ८४, २
११७—वही, प्ले० ८४, २
११८—वही, प्ले० ८३, १
११९—लांगहर्स्ट, वही, प्ले० २३ बी०
१२०—वही, प्ले० २१ बी०
१२१—फर्गुसन, वही, प्ले० ७४
१२२—शिवराममूर्ति, वही, प्ले० ७, १
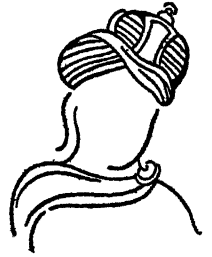
२३२
२३३
२३४
२३५
२३६
२३७
२३८
२३९
२४०
२४१
२४२
२४३
२४४
२४५
२४६
२४७
२४८
२४९
२५०

२—नीची पगड़ी जिसके चारों ओर एक दोहरी पट्टी का आभूषण है (आ० २३७)[१२३]।

३—साफ सुथरे ढंग से तीन फेरों में बंधी पगड़ी जिस पर शीर्षपट्ट है (आ० २३८)[१२४]।

४—अटपटी पगड़ी जिसमें शायद दो चौरियां खुंसी हैं (आ० २३९)[१२५]।

५—अटपटी पगड़ी जो एक सरदल पट्टी में लगे फिरकीनुमा आभूषण से अलंकृत है (आ० २४०)[१२६]।

६—बहुत से लट्टू पड़ती हुयी पगड़ी, आगे शिरो भूषण है, पीछे चौकोर कंघी जैसी कोई वस्तु (आ० २४१)[१२७]।

७—गोल पेंचदार पगड़ी, इसका एक छोर गोल शीर्षपट्ट से निकलता दिखलाया गया है (आ० २४२)[१२८]।

८—गोल दिल्लीवाल पगड़ी जैसी चपकी पगड़ी जिसमें पर खुंसे हैं (आ० २४३)[१२९]।

९—चक्करदार ऊंची पगड़ी (आ० २४४)[१३०]।

दक्षिण में धातु निर्मित ऊंची ढालदार टोपियां भी इस युग में पहनी जाती थीं। ऐसी टोपी बहुधा रेखाओं और वृत्तों से अलंकृत होती थी और उसमें दोनों ओर झब्बे लगे होते थे (आ० २४५)[१३१]। एक दूसरी तरह की टोपी मोरपंखों से सजी होती थी और उसमें सामने की ओर एक पान के आकार का अलंकार लगा होता था (आ० २४६)[१३२]। एक विचित्र तरह की टोपी की शकल चायदानी के ढक्कन जैसी है; ढक्कन से चारों ओर अर्धवृत्त निकल रहे हैं (आ० २४७)[१३३]। यह छोटी टोपी सिर पर ठीक बीचोबीच रक्खी है। एक टोपी में उलटा हुआ कटावदार छज्जा है[१३४]। दक्षिण में आए हुए विदेशी चपकी टोपियां

१२३—वही, प्ले० ७, २
१२४—वही, प्ले० ७, ३
१२५—वही, प्ले० ७, ४
१२६—वही, प्ले० ७, ६
१२७—वही, प्ले० ७, ७
१२८—वही, प्ले० ७, ९
१२९—वही, प्ले० ७, ११
१३०—वही, प्ले० ७, १४
१३१—फर्गुसन, वही, प्ले० ८६
१३२—वही, प्ले० ७३, २
१३३—वही, प्ले० ७३, २
१३४—वही, प्ले० ७४

पहनते थे। इसमें एक टोपी का छज्जा ऊपर की ओर मुड़ा हुआ है (आ० २४८)[१३५]। दूसरी कुलाहनुमा टोपी का छज्जा लहरियादार है (आ० २४९)[१३६]। एक कंचुकावृत मनुष्य कंटोप-नुमा टोपी पहने है (आ० २५०)[१३७]। कभी कभी इस टोपी में गोल शीर्षपट्ट भी लगा होता था (आ० २५१)[१३८]।

कंचुक पहने हुए मनुष्य, जो शायद दक्षिण में सिकंदरिया से आये यवन हैं, अपने सिर रूमाल से ढांकते थे, जिसका एक सिरा ठुड्डी के नीचे से होता हुआ सिर के दूसरी ओर खोंस लिया जाता था। इस तरह दोनों कान ढक जाते थे (आ० २५२-२५३)[१३९]।

इस युग में ठेठ दक्षिण भारत के उच्चवर्णों में कंचुक पहनने की प्रथा नहीं थी। राजे, बड़े राज कर्मचारी तथा सामंत कंचुक नहीं पहनते थे। सेवक, गायक, वादक तथा विदेशी गोल गले वाला तथा पूरी तथा कसी बाहों वाला कचुक जो कमर तक पहुंचता है, पहनते थे। कंटोपा, धोती तथा रूमाल के साथ कंचुक पहनने की प्रथा थी (आ० २५०)। यह पगड़ी, दुपट्टा और धोती के साथ भी पहरा जाता था (आ० २३२)। शरीर के साथ यह कमरबंद से जकड़ा होता था (आ० २५०)। कभी कभी ढीले बाहों वाला घुटनों के जरा नीचे तक पहुंचता कंचुक टोपी और चूड़ीदार पाजामा पहना जाता था (आ० २५४)[१४०]। पालकी उठाने वाले आधी बाहों वाला कसा कंचुक कमरबंद के साथ पहनते है (आ० २५२)। एक ऐसा ही बिना बाहों वाला कंचुक पहने एक दूसरा वाहक दिखलाया गया है (आ० २५२) एक दूसरा आदमी जो विदेशी मालूम पड़ता है एक आधी जांघों तक पहुंचता पूरी बाहों वाला किसी धारीदार कपड़े से बना कंचुक पहने दिखलाया गया है (आ० २५३)। घोड़े की रास पकड़े हुए एक साईस एक विचित्र तरह का कोट पहने है जिसकी तुलना अंग्रेजी टेल कोट से की जा सकती है। कोट अधबहियां है और उसका बायां पख (फ्लैप) दाहिने पख पर चढ़ता हुआ दिखलाया गया है। चार फेंटे वाले कमरबंद से यह कोट शरीर से जकड़ा है (आ० २५५)[१४१]। ग्वाले और इसी तरह के दूसरे व्यवसायी जांघिया पहनते हैं (आ० २५६)[१४२]। यह जांघिया सकरमुद्धीदार कमरबंद से बंधी रहती है।

१३५—वही, प्ले० ६९

१३६—वही

१३७—वही, प्ले० ७३, २

१३८—लांगहर्स्ट, वही, प्ले० २८, सी०

१३९—फर्गुसन, वही, प्ले० ८४, तथा ८३, १

१४०—वही, प्ले० ८३, २

१४१—आर० एस० आई० एन० रि०, १९०८-१९०९ प्ले० ३०

१४२—फर्गुसन, वही, प्ले० ५७
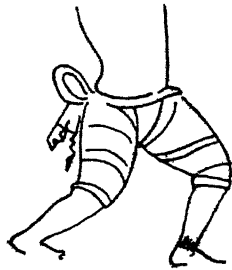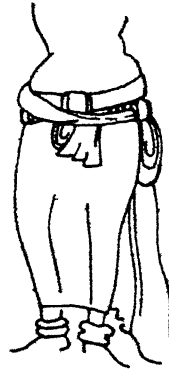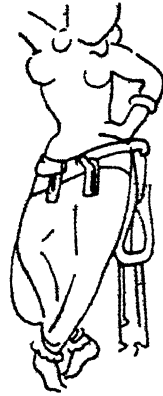
२५२
२५१
२५३
२५१
२५४
२५५
२५६
२५७
२५८
२५९
२६०
२६१
२६२
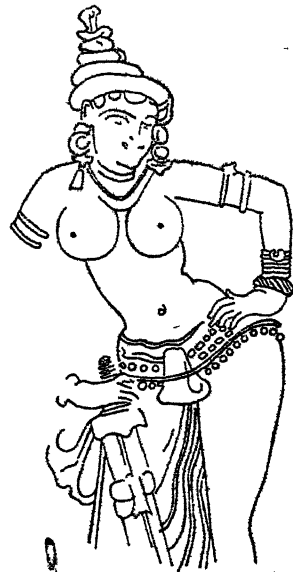
दक्षिणी स्त्रियों की वेश-भूषा

इस युग में दक्षिणी स्त्रियां बहुत हल्के कपड़े पहिनती थी कमर के ऊपर शरीर का भाग खुला रहता था, साड़ी एंडी के ऊपर तक पहुंचती थी, इस पर करधनी और कमरबंद, जिसका एक छुट्टा हिस्सा आगे लटका रहता था और दूसरा मुड़ा हुआ हिस्सा आगे लहराया करता था, होते थे (आ० २५७)[१४३] । एक दूसरी जगह सकरमुद्धीदार कमरबंद करधनी का स्थान ग्रहण कर लेता है। (आ० २५८)[१४४] । कभी कभी स्त्रियां साड़ी के ऊपर करधनी, पटके और कमरबंद तीनों पहनती थीं। फेंटे के दोनों सिरे मुड़े होते थे और कमरबंद की फेरेदार गांठ कमर के बायें ओर लगी रहती थी । सिर पर पगड़ीके आकार का कोई वस्त्र होता था[१४५] । कभी कभी स्त्रियां लीलावश दुपट्टा हाथ में ले लेती थी[१४६] ।

इस युग में दक्षिणी स्त्रियां बहुधा अपने सिर नहीं ढांकती थीं पर कभी कभी वे सुसज्जित पगड़ी पहनती थीं । इस तरह की एक भारी भरकम पगड़ी में चक्करदार फेंटे जूड़े के ऊपर बंधे हैं । पगड़ी के आगे एक बदामा शीर्षपट्ट है जिसमें एक झब्बा लटक रहा है (आ० २५९)[१४७] । एक दूसरी तरह की पगड़ी में फेंटे एक सींगनुमा केशवेश के चारों ओर बंधे है (आ० २६०)[१४८] । बाल बांधने की यह प्रथा आज दिन भी मध्यभारत के बनजारा स्त्रियों में पायी जाती है । कभी कभी पट्टीनुमा मुकुट जिसके दोनों ओर दो कुब्बों से झब्बे अथवा बाल की लटें लटकती थीं और जिसके ऊपर दोमुहे मकर की आकृति अर्धचंद्र वहन करती थी पहना जाता था[१४९] । एक जगह इस मुकुट में दोहरे मुख वाले मकर का पूरा शरीर बना दिखाया गया है (आ० २६१)[१५०] । एक जगह चक्करदार मुकुट में एक कलंगी जैसा आभूषण लगा है (आ० २६२)[१५१] । कभी कभी स्त्रियां छः नोक वाला एक छोटा मुकुट पहनती थी (आ० २६३)[१५२] । कभी कभी लहरियादार कमल की पंखुड़ियों से सजा मुकुट पहना जाता था (आ० २६४)[१५३] ।

१४३—वही, प्ले० ८५
१४४—वही, प्ले० ६१, ३
१४५—शिवराममूर्ति, वही, प्ले० ८, ३३
१४६—वही, प्ले० ८, १०
१४७—लांगहर्स्ट, वही, प्ले० २० बी०
१४८—वही, प्ले० ३४, ए०
१४९—फर्गुसन, वही, प्ले० ८५
१५०—शिवराममूर्ति, वही, प्ले० ६, १०
१५१—वही, प्ले० ६, ११
१५२—फर्गुसन, वही, प्ले० ८४, ३
१५३—वही, प्ले० ८३, १

इस युग में ओढ़नी ओढ़ने का बहुत कम रिवाज था फिर भी अमरावती के एक अर्ध-चित्र में एक स्त्री सिर पर से पीछे की ओर बाल ढंकते हुए ओढ़नी ओढ़े दिखलायी गयी है (आ० २६५)[१५४]।

साधुओं की वेश-भूषा

ब्राह्मण साधु एक कौपीन पटकों और दुपट्टे के साथ पहनते थे (आ० २६६)[१५५]। इन पर पड़ी धारियों से पता लगता है कि ये वल्कल के बने होते थे। बौद्ध साधु कभी कभी पांसुदुकूल पहनते थे। (आ० २६७)[१५६] जो चीथड़ों को सीं कर बनाया जाता था।

सिपाहियों की पोशाक

योद्धागण कभी कभी पूरी आस्तीन का कंचुक पहनते थे। इस कंचुक में और अधिक कसाव लाने के लिए कई फेंटों में नाभि के ऊपर एक रूमाल बंधा होता था। इनकी धोती पर कमरबंद होता था[१५७]।

बच्चों की वेश-भूषा

इस युग में बच्चे जांघिया और कमरबंद पहनते थे। (आ० २६८-२६९)।[१५८] कभी कभी इनके छाती पर एक रूमाल बंधा होता था जिसका सकरमुद्धी लगा छोर हवा में फड़का करता था। कभी कभी उनके छाती पर छन्नवीर की तरह दोहरा परतला और कई फेरों में पेट पर रूमाल भी बंधा रहता था (आ० २७०)[१५९]।

१५४—वही, प्ले० ७२, १

१५५—शिवराममूर्ति, वही, प्ले० ६, १

१५६—वही, प्ले० ६, १४

१५७—वही, प्ले० १०, ६

१५८—लांगहर्स्ट, वही, ६, सी० डी०

१५९—शिवराममूर्ति, वही, प्ले० ८, ३३
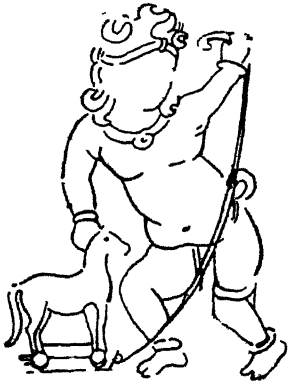
२६३
२६४
२६५
२६६
२६७
२६८
२६९
२७०
२७१
२७२
२७३
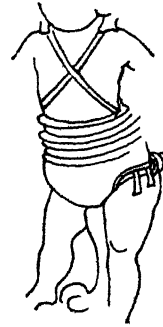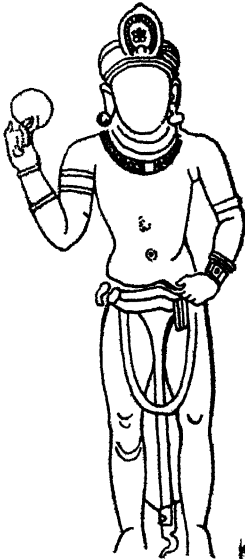
नवाँ अध्याय

तीसरी सदी से सातवीं सदी तक के साहित्य में भारतीय वेश-भूषा

"मनुष्य-जीवन में सब से पहले भोजन और कपड़ों का स्थान है। मनुष्यों के लिए ये बेड़ियां है जो उन्हें पुनर्जन्म से बांधे रहती हैं।" इत्सिंग

प्राक् गुप्तयुग का इतिहास कुषाण साम्राज्य के छिन्न भिन्न होने पर आरंभ होता है। इस युग में राजपूताने और पूर्वी पंजाब में यौधेयों की राज्य-सत्ता का आरंभ और दृढ़ीकरण तथा पवांय के नागों, कौशांबी के भारशिवों और मघों इत्यादि का उत्कर्ष देखते हैं। गुप्त वंश के उद्भव के पहले तक इन राज्यों का उत्तर भारत के अधिक हिस्से पर प्रभुत्व रहा। आधुनिक ऐतिहासिक अनुसंधानों से प्रायः यह निश्चित सा हो गया है कि इन राज्यों और गणतंत्रों ने कुषाणों की राज्य-सत्ता उखाड़ कर पुनः भारतीय आदर्शों पर स्थित राज्य-सत्ता चलाई।

विशृङ्खलित राज्यतंत्र के इस युग में भारतीय वेश-भूषा के इतिहास की कम सामग्री मिलती है। इस युग में हमें सांची और अमरावती के से अर्धचित्र प्राप्त नहीं हैं जिनके बल पर हम तत्कालीन वेश-भूषा का सांगोपांग चित्र खड़ा कर सकें। मथुरा की तथाकथित कुषाणयुग की कुछ मूर्तियों का सहारा हम इस युग की वेश-भूषा के इतिहास के लिए ले सकते हैं। पर इसमें कठिनाई है कुषाण कला से तात्पर्य। कुषाण कला गोल तरह से दो सौ वर्षों तक जारी रही और अभी तक कला के इतिहासकारों ने इस कला में विकासक्रम का पता लगाने का प्रयत्न तक नहीं किया है। कुषाण कला के माने कुषाण युग के कला के सिद्धांतों पर आश्रित कला है चाहे वह पहली शताब्दी की हो या तीसरी। जैसा हमें मालूम है आरंभिक कुषाणयुग में सुंदर से सुंदर मूर्तियां काफी संख्या में बनीं, लेकिन इसका कोई कारण नहीं मालूम पड़ता कि कुषाणों के पतन के और गुप्तों के अभ्युत्थान के अन्तर युग में भी यह कला जीवित नहीं रही। लेकिन इस प्रश्न के हर पहलू को ध्यान में रखते हुए तथा ऐतिहासिकता के कठोर मापदंडों को सामने रखते हुए हमने इस युग की अधिकतर मूर्तियों और अर्धचित्रों का उपयोग तीसरी शताब्दी की भारतीय वेश-भूषा के इतिहास के लिए नहीं किया है।

इस युग की दक्षिणी वेश-भूषा के इतिहास के लिए आंध्र देश के गुंटूर जिले के पालनाड तालुक के गोल्ली नाम ग्राम से मिले तीसरी शताब्दी के उत्कीर्ण पट्ट बड़े काम के हैं। इन अर्धचित्रों से हमें तत्कालीन दक्षिण भारत की वेश-भूषा का काफी पता चलता है, पर इस युग की वेश-भूषा अमरावती और नागार्जुनीकोंड के अर्धचित्रों में चित्रित दक्षिण

भारत की वेश-भूषा से कोई भिन्न नहीं है। गोल्ली के अर्धचित्रों की यथार्थवादिता तामिलनाड से मिले पल्लव अर्धचित्रों के आदर्शवाद से बिल्कुल विपरीत है। इसी कारण से हम पल्लव अर्धचित्रों और मूर्तियों का उपयोग वेश-भूषा के इतिहास के लिए नहीं कर सके। ग्वालियर रियासत के पवांय नामक स्थान से मिली हुई मूर्तियां और अर्धचित्र तीसरी सदी के हैं और इनसे बुंदेलखंड के वस्त्रों की स्थानिक विशेषताओं का पता चलता है।

गुप्तयुग भारतीय वेश-भूषा के इतिहास में बड़ा महत्त्व रखता है। इस युग की वेश-भूषा के अध्ययन के लिए प्रचुर सामग्री हमें सारनाथ, देवगढ़ इत्यादि से मिली मूर्तियों और अजंटा की १७ नंबर की लेण से मिलती है। वास्तव में अजंटा की लेणें वाकाटकों की राज्य-सीमा में हैं और इसलिए शायद अजंटा की चित्रकला को गुप्त शैली की मानना ऐतिहासिक दृष्टि से असंगत हो। पर जैसा कि भारतीय कला के इतिहास से पता चलता है उत्तर भारत में परिवर्धित गुप्तकला का भारतवर्ष के कोने कोने में समावेश हुआ और उसकी सौंदर्य भावना और अंकन शैली का प्रभाव देश में सर्वत्र पड़ा फिर चाहे वह सिंध में मीरपुरखास से मिली मूर्तियां हों अथवा अजंटा के भित्तिचित्र। अगर यह दृष्टिकोण हम ध्यान में रक्खें तो इस युग की प्रादेशिक कलाओं को चाहे वह गुप्त साम्राज्य के बाहर ही क्यों न परिवर्धित हुई हो हम गुप्तकला के अन्तर्गत मान सकते हैं। जो भी हो इस युग की मट्टी की मूर्तियों, सिक्कों और भित्तिचित्रों के आधार पर हम चौथी से सातवीं शताब्दी तक के भारतीय कपड़ों और पहरावे का जीता जागता चित्र खड़ा कर सकते हैं।

गुप्तवंश की नींव चन्द्रगुप्त प्रथम (३२०-३३५ ई० स०) ने डाली पर समुद्रगुप्त (३३५-३८५ ई० स०) ने जो भारतवर्ष के इस काल के शासकों में अपनी दूरदर्शिता, पराक्रम और कला-प्रेम के कारण एक विशेष स्थान रखते हैं, इस नींव को मजबूत किया। अनेक विजय यात्राओं के अलावा जिनका हमसे संबंध नहीं है, समुद्रगुप्त साहित्य-व्यसनी, कवि और संगीतज्ञ थे। उनके पुत्र और उत्तराधिकारी चंद्रगुप्त विक्रमादित्य (३८५-४१३ ई०) ने ३९५ और ४०० ई० के बीच में सौराष्ट्र के क्षत्रपों को जीत लिया। चन्द्रगुप्त अपनी कीर्ति और यश के बल पर आज तक भारत में विख्यात हैं। इन्हीं के राज्यकाल, में महाकवि कालिदास हुए। समुद्रगुप्त और चंद्रगुप्त के विजय-पराक्रमों से परिवर्धित गुप्त-साम्राज्य का, जैसा कि बसाढ़, भीटा और राजघाट से मिली मुद्राओं से पता चलता है, कार्य संचालन सुव्यवस्थित था। कुमारगुप्त (४१४-४५५ ई०) का राज्यकाल गुप्त-साम्राज्य की क्रमशः अवनति का है। स्कंदगुप्त (४५५-४७० ई०) के राज्यकाल में हूणों के भीषण आक्रमण से आक्रांत गुप्त-साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया, और इस तरह भारत के स्वर्ण-युग के इतिहास पर परदा पड़ गया। स्कंदगुप्त के पराक्रम का पता हमें भितरी के स्तंभोत्कीर्ण लेख से पता लगता है जिसमें कहा गया है कि जमीन पर अपने सिपाहियों के साथ सोकर मानो उन्होंने तप करते हुए अपनी विचलित कुललक्ष्मी की आराधना की। इस

अवसर पर (करीब ४५५ ई०) तो हूण हारे, पर थोड़े ही समय के लिए । उनके आक्रमणों का तांता जारी ही रहा और स्कंदगुप्त की मृत्यु के उपरान्त गुप्त-साम्राज्य का अंत हो गया । स्कंदगुप्त के बाद भी कुछ गुप्त वंशज राजाओं का पता हमें सिक्कों और लेखों से लगता है पर इनका ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्त्व नहीं है । युवानच्वांग के कथनानुसार हूणों को जो थोड़े दिनों के लिए गुप्त-साम्राज्य के अधिकारी बन बैठे थे बालादित्य ने हराया । इस महान् पराक्रम का श्रेय यशोधर्मन् नाम का राजा भी ५३३-५३४ ई० के बीच के अपने एक अभिलेख में लेता है ।

सांस्कृतिक दृष्टिकोण से गुप्तयुग भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग माना जाता है इस युग में सब धर्मों को पूरी स्वतंत्रता थी । गुप्त राजे स्वयं परमभागवत थे पर इस युग में वैदिक धर्म की पुनर्जागृति हुई और यज्ञों को पुनः प्रधानता मिली । इतना होने पर भी बौद्ध-धर्म की ओर लोगों की उतनी ही आस्था रही ।

श्री हर्ष के युग को भी हम गुप्तयुग के सांस्कृतिक इतिहास के साथ साथ ले सकते हैं। इस युग में बाण, युवानच्वांग और दूसरे लेखक भारत के कुछ ऐसे सांस्कृतिक पहलुओं पर भी प्रकाश डालते हैं, जिनका पता तक इस युग के सबसे बड़े कवि कालिदास के ग्रंथों में भी नहीं चलता ।

गुप्तयुग केवल राजनीतिक, धार्मिक और कला के क्षेत्रों में ही भारतीय इतिहास का सर्वश्रेष्ठ युग नहीं था वरन् इस युग में भौतिक संस्कृति का धरातल भी यथेष्ट ऊंचा उठा । इस भौतिक संस्कृति की उन्नति का पता हमें कालिदास के ग्रंथों से, अजंटा के चित्रों से और दूसरे पुरातात्त्विक अवशेषों से लगता है। अजंटा के भित्तिचित्रों में राजमहलों के सजीव चित्रण हमें प्राचीन महलों की सजावट की छोटी से छोटी वस्तुओं का भी पता देते हैं। साफ, सुथरे और हलके कपड़े पहने हुए राजाओं की प्रशांत मूर्तियां, अंतःपुर के कठोर नियमों का पालन करती हुई चित्ताकर्षक दासियां और प्रसाधिकाएं, सिले कपड़े पहने हुए नर्तक, नर्तिकाएं और समाजी, सुसज्जित सैनिकों से युक्त जुलूस, राजा के जीवन के ये सब पहलू गुप्तयुग में भौतिक संस्कृति के विजय-चिन्ह के समान हैं । केश बन्धन की सुंदर विधियां तथा साफ सुथरे कपड़े और गहने गुप्तयुग की पहले की शताब्दियों के भड़कीलेपन से दूर हैं। इस युग में स्त्रियां अपने बालों की चोटियां नहीं करती थीं पर उन्हें खूब सजाती थीं। उनके केश-बंधन की अनेक विधियों में हम उस युग की कुशल प्रसाधिकाओं का हाथ देख सकते हैं । धोती और साड़ी पहनने में कलात्मक ढंग से चूननों और सिलवटों के प्रदर्शन से हमें पता लगता है कि उस युग के पुरुष और स्त्रियां वेश-विन्यास की कला से पूरी तरह अवगत थे । इस युग में ठीक तौर से कपड़े पहनने का इतना महत्त्व था कि संस्कृत साहित्य में इसके लिए पांच शब्द यथा, आकल्प, वेश, नेपथ्य, प्रतिकर्म और प्रसाधन आए हैं[१]।

१—अमरकोश, २, ६, ९९

साहित्यिक उद्धरणों और अजंटा के चित्रों से यह साफ साफ पता चलता है कि गुप्तयुग में कपड़े की नक्काशियों में भी काफी उन्नति हुई।

गुप्तयुग में भारतीय वेश-भूषा के अध्ययन के लिए मूर्तियों और अजंटा की १७ नं० की लेण के भित्तिचित्रों के सिवाय बहुत से सिक्के भी हैं जिन पर गुप्त-राजाओं की प्रतिकृतियां अंकित हैं। इनकी वेश-भूषा से इस मार्के की बात का पता चलता है कि गुप्त राजे कुशाण राजाओं की तरह कंचुक, कोट और पायजामे पहनते थे तथा शुद्ध भारतीय पहरावा भी। इस लिये वस्त्रों के उपयोग से पता चलता है कि गुप्तों ने देशी और विदेशी दोनों पहरावे उसी तरह ग्रहण कर लिये थे जैसे आज दिन पश्चिमी शिक्षा पाये हुए नवयुवक सहूलियत के लिए आफिस जाने में अथवा सामाजिक उत्सवों में शामिल होने पर पश्चिमी पहरावा पहन लेते हैं लेकिन घर पर अपना जातीय पहरावा ही पहनते हैं। यह बात भारतीयों के लिए ही नहीं प्रत्युत युरोपीय ढंग से रहने वाले प्रत्येक एशियावासी के लिए लागू है। सिले हुए कपड़ों में पहनने की सहूलियत और आकर्षक ढंग गुप्तों की रसात्मक पर कार्यात्मक वृत्ति को अवश्य रुची होगी। हमें गुप्तों की विवेचनात्मक बुद्धि का पता पहरावे में किए गए हेर-फेर से लगता है। उन्होंने कुषाणयुग के मोटे, ऊनी अथवा रुई भरे सूती कपड़ों की जगह पतले और पारदर्शी कपड़ों का व्यवहार शुरू किया जो जलवायु के दृष्टिकोण से इस देश के लिए सर्वथा उपयुक्त थे। कुषाण वस्त्रों के भारीपन और भद्दी काटों की जगह हमें गुप्त-वेश-भूषा में तैयारी और सफाई देखते हैं जिनसे पहरने वालों की कलात्मक सुरुचि का पता लगता है। गुप्तयुग में सिले हुए विदेशी कपड़ों से धीरे धीरे उनका विदेशीपन निकाल कर उन्हें भारतीय ढांचे में ढाल दिया गया। उदाहरणार्थ मूर्तियों और सिक्कों में कुषाण राजे पूरे पैर का भारी बूट पहने दिखाये गए हैं। ये बूट देखने में तो अवश्य ही भद्दे मालूम पड़ते हैं पर मध्य एशिया के कठोर शीत में पैरों की रक्षा करते हैं और घुड़सवारी में तो इनकी बड़ी उपयोगिता सिद्ध होती है। लेकिन गुप्तयुग में इन बूटों का भद्दा और भारीपन निकल जाता है और उनकी शकल आधुनिक घुड़सवारी के बूट जैसी बन जाती है।

राजदरबारों में सिले विदेशी वस्त्रों का प्रभाव

कुषाणयुग में इस देश में सिले वस्त्र काफी संख्या में आए इसके पहले भी बहुत प्राचीन काल से इस देश में सिले वस्त्रों का ज्ञान था। उन लोगों की वेश-भूषा पर जिनका राज दरबार से निकट संबंध था इसका कुछ अंशों तक असर पड़ा। उनके सुंदर काटवाले कंचुक और जांघिये इस बात के द्योतक हैं कि तत्कालीन राजे अपने सेवकों की वरदी का पूरा ध्यान रखते थे। अक्सर लोगों का यह विश्वास है कि सिले कपड़े पहने हुए वे नौकर विदेशी थे जिन्होंने बाहर से आकर राजा की नौकरी स्वीकार कर ली थी। यह बात कुछ

नौकरों के लिए तो ठीक हो सकती है पर उनमें अधिकतर तो इसी देश के रहने वाले थे। सेवकों और सेविकाओं के जो वर्णन बाण भट्ट में आए हैं और जिन्हें हमने आगे चल कर दिया है, उनसे हमारे मत की पुष्टि होती है।

विदेशी दासियां

विदेश से क्रीत दासियों के लाने की प्रथा इस देश में गुप्तकाल के बहुत पहले से थी। 'पेरिप्लस आफ दी एरीथ्रियनसी'[२] में (पहली शताब्दी ई०) इस बात का उल्लेख है कि भरोच के बन्दरगाह में उतरने वाली बहुमूल्य वस्तुओं में जो राजा के व्यवहार के लिए होती थीं कीमती चांदी के बर्तन, गायक लड़के और अंतःपुर के लिए सुन्दर दासियां होती थीं। विदेशों से दासियां लाने की प्रथा का जैन साहित्य में भी जो गुप्तकालीन अथवा उसके कुछ पहले का है वर्णन है। 'अंतगडदसाओं'[३] में विदेशी दासियों की एक तालिका दी हुई है। कथा में इस बात का उल्लेख है कि बचपन में राजकुमार गौतम की सेवा अनेक जातियों की विदेशी दासियां करती थी। बब्बर[४] (बर्बर), पौसय (बौसी)[५], यूनानी (जोणिय, यवनी), पल्हविय (पहलवी), इषिणय (इषिणी),[६] थोरुणिगिणि, लासिय, लौसिय, दामिली (तामिल), सिहली, आरबी (अरब), पुलिंद, पक्कणी,[७] बहली (बलख देश की), मुरंडी (मुरुंडी)[८] शबर और पारसी, (पारसीही) इन दासियों में मुख्य होती थीं। इन विदेशी दासियों के वस्त्र उनके देशों के अनुरूप होते थे (विदेस परिमण्डियाहि) और इनके कपड़ों

२—शाफ, पेरिप्लस आफ दी एरीथ्रियनसी, पृ० ४२

३—एल० डी० बार्नेट द्वारा अनूदित, पृ० २८-२९, लंडन १९०७; नायाधम्म कहाओ, १, २०, म भी दासियों का यही ब्योरा दिया हुआ है।

४—ऊपर की तालिका में सब देशों की पहचान करना आसान नहीं है। बब्बर देश से शायद उत्तरी अफ्रिका का मतलब है। 'पेरिप्लस' में आये बर्बर शायद लाल सागर और नील नदी के बीच में रहने वाले बेजा, ऊपरी नील एबीसीनिया और अदन की खाड़ी के दनकैल सुमाली और मल्ला लोगों के पूर्वज थे (शाफ, वही, पृ० ५-६)। 'पेरिप्लस' के अनुसार बर्बर देश से बहुधा दासियों का निर्यात होता था (वही, पृ० २५)

५—पौसय या बौसय ऑक्सस नदी के तीर से आयी दासियां हो सकती है।

६—ईषि ऋषिक शब्द का जो चीनी यू-ची का संस्कृत रूप है, प्राकृत स्वरूप है। जिस समय का यह अवतरण है शायद उस समय ऋषिक बदख्शां में रहते थे।

७—पक्कण और पाणिनी में आये प्रकिण्व (६, १, १५३) एक ही है। काशिका के अनुसार यह देश था। डा० वासुदेवशरण (जे० यू० पी० एच० एस० १६, भा० १, प्ले० २८) प्रकण्व की पहिचान हिरोडोटस के 'परिकानिआइ' से जो स्टेनकोनो के अनुसार (कार्पस ऑफ खरोष्ठी इंसक्रिपशन्स पृ० १८) फरगना के निवासी थे करते हैं।

८—हेमचंद्र के अनुसार 'लंपाकास्तु मुरुण्डाः स्युः' अर्थात् लंपाक के रहने वाले मुरुंड थे अगर ठीक है तो य दासियां अफगानिस्तानके लमगान प्रदेश से आती थीं।

की काट उनके देश के कपड़ों जैसी ही होती थी (सदेस नेवथ्थ गहिय वेसाहि)। ये दासियां इस देश की भाषा नहीं समझ सकती थीं और वे केवल इशारों से दूसरों के विचारों और आज्ञाओं को समझ सकती थीं (इंगिय चिंतिय पत्थिय वियनियाहि)। विदेशी दासियों के उपरोक्त वर्णन से यह पता चलता है कि ईसा की आरंभिक शताब्दियों में भारतीय अंतःपुरों में उनका प्रवेश हो चुका था। गुप्तयुग में भी अंतःपुर में विदेशी दासियों के रखने की काफी प्रथा थी। कालिदास के नाटकों में, राजा की अंगरक्षिकाओं की तरह यवनियों का काफी उल्लेख आया है। इस युग में यवन शब्द का आरंभिक अर्थ जिसके अनुसार वह यूनानियों का द्योतक था लुप्त हो चुका था और यह शब्द शायद अधिकतर विदेशियों के लिए लागू होने लगा था।

इन विदेशी दासियों के वेश-भूषा का प्रभाव तत्कालीन भारतीय वेश-भूषा पर काफी पड़ा होगा, कम से कम अजंटा के भित्तिचित्रों में आयी दास दासियों की आकृतियों से तो यही पता चलता है। लेकिन यह मान लेना भ्रमात्मक होगा कि इस देश में विदेशी वेश-भूषाओं का प्रवेश केवल दासियों द्वारा ही हुआ। यथार्थ में शकों और कुषाणों की चढ़ाइयां, विदेशों से व्यापारिक संबंध तथा बाहर के यात्री इन सब कारणों से भी यहां विदेशी वस्त्रों का कुछ कुछ प्रचार बढ़ा होगा। शक इस देश में कुलाह, तिकोने गले वाले कंचुक तथा पूरे पैर के बूट लाये। भारतीय वेश-भूषा के क्षेत्र में इस विदेशी धावे की कहानी हम अजंटा के भित्तिचित्रों में पढ़ सकते हैं और यह भी देख सकते हैं कि किस तरह से विदेशी पहरावे भारतीयता के रंग में ढल रहे थे। समन्वय की भावना गुप्त कला तक ही सीमिति न रह कर वेश-भूषा के क्षेत्र में भी आयी।

गुप्तयुग में विदेशी वस्त्रों की ओर झुकाव की तुलना हम मुगलयुग में भारतीय पहरावे पर तुर्की प्रभाव से कर सकते हैं। मध्य एशिया के निवासी मुगल अपनी वेश-भूषा इस देश में लाये और यह वेश-भूषा समयांतर में भारतीयता के ढांचे में ढल कर जातीय पोशाक बन गयी और उसे राजकर्मचारियों और व्यापारियों ने अपना लिया। जामा, पगड़ी, पाजामा, कमरबंद और पटके जातिभेद और वर्णभेद छोड़ कर सभी के वस्त्र बन गये। कुषाणयुग में भी भारतीय वेश-भूषा में कुछ ऐसा ही परिवर्तन हुआ था गो कि उसका प्रभाव इतना व्यापक नहीं था जैसा मुगल युग में। भारतीय दृष्टि में शक तुषार बर्बर थे इसलिए उनकी वेश भूषा भी मान्य नहीं थी। जब गुप्त कुषाणयुग की संस्कृति के उत्तराधिकारी हुए तो उन्होंने कुषाणयुग की वेश-भूषा की उपयोगिता देखते हुए उसे थोड़े फेरफार के साथ अपना लिया। लेकिन इस वेश-भूषा को जबर्दस्ती दूसरों पर लादने का प्रश्न ही नहीं उठता था और इसीलिए विदेशी पोशाक उन्हीं तक सीमित रही जिन्हें वह प्रिय थी और जिन्हें अपने दैनिक जीवन में उसकी उपयोगिता का ज्ञान था। हमारी अधिकतर जनता इस युग में भी अपने पुराने कपड़े जो इस देश के लिए उपयुक्त थे, पहनती रही।

गुप्तयुग के सिपाहियों की वर्दी की ओर भी ध्यान देना आवश्यक है। अजंटा के भित्तिचित्रों में सैनिकों का एक भाग धोती पहनता है, लेकिन दूसरा भाग कंचुक, पायजामा अथवा जांघिया और पूरे बूट पहनता है और अपने बाल फीते अथवा रूमाल से बांधता है। वास्तव मे देखा जाय तो उनकी वेश-भूषा पूर्व निश्चित वर्दी के रूप में है। गुप्तयुग के पहिले की शताब्दियों में, सिवाय कहीं कहीं शातवाहन युग को छोड़ कर, सिपाहियों की कोई पूर्व निश्चित वरदी नहीं थी और अधिकतर सिपाही धोती ही पहनते थे। गुप्तयुग में सिपाहियों की वर्दी सम्भवतः कुषाणकाल की वर्दी के आश्रय पर बनी। गुप्तराजे पराक्रमी योद्धा थे और उन्हें अपनी विजय-यात्राओं के लिए हमेशा एक सुशिक्षित, सुवेष्टित और सामानों से लैस सेना की आवश्यकता रहती थी। नयी वर्दी की उपादेयता गुप्तों की व्यापारिक बुद्धि को ठीक जंची होगी और उसी के फलस्वरूप एक राष्ट्रीय सेना का सृजन हुआ होगा। सेना में जिस तरह का हेर-फेर कुषाण सेना के संगठन को ले कर हुआ होगा। यह भी संभव है कि हूणों से लड़ाई लड़ते समय इस तरह के संगठन और वर्दी की उपयोगिता का ज्ञान गुप्तों में हुआ होगा। जो भी हो इस प्रश्न का निराकरण आसानी से नहीं हो सकता।

वेश-भूषा के इतिहास के साधन

पुनः इतिहास की कड़ी पकड़ते हुए हमें पता लगता है कि गुप्तों के समसामयिक दक्खिन के शासक वाकाटक थे। पांचवीं शताब्दी के पहले भाग में गुप्त-साम्राज्य और सुदूर दक्खिन के राज्यों के बीच में वाकाटक साम्राज्य दक्खिन में सब से मजबूत राज्य थे। अपने समय में वाकाटक साम्राज्य दक्खिनी और उत्तरी भारत के सांस्कृतिक आदान-प्रदान का साधन था। इस वंश का छठवीं शताब्दी के मध्य में अंत हो गया। अजंटा से मिले वाकाटक लेख भारतीय कला के इतिहास के काल क्रम को ठीक करने में अपना एक विशेष स्थान रखते हैं। दक्षिण में वेश-भूषा का इतिहास भी हमें अजंटा के भित्तिचित्रों से मिलता है। जब हम दक्षिण की वेश-भूषा की तुलना गुप्तयुग की वेश-भूषा से करते हैं तो हमें पता चलता है कि गुप्तकालीन पहिरावा दक्षिण तक चला गया था और थोड़े से स्थानिक भेदों को छोड़ कर सारे भारत में एक ही सा था।

उत्तर भारत में हूणों के पतन और गुप्तों के पुनः अपनी शक्ति को प्राप्त करने में असफल होने से बहुत से राज्यों का उदय हुआ जिनमें बलभी, चालुक्य, मौखरी, बाद के गुप्त तथा थानेश्वर के वर्धन जिन्होंने बाद के इतिहास में काफी स्थान पाया मुख्य थे। सातवीं शताब्दी के उत्कर्ष का युग श्री हर्ष का राज्यकाल (६०५-६४० ई०) था। श्री हर्ष एक कुशल शासक, कलाप्रेमी और साहित्यिक थे, इनके दरबार में इनके जीवनी लेखक बाण भट्ट हुए। हर्ष के समसामयिक दक्षिण के चालुक्य राजा पुलिकेशिन् हुए जिनके समय में

शायद अजंटा की १ और २ नंबर की लेणें बनीं। शायद इन्हीं के काल में अथवा इनके कुछ पहले बाघ के भित्तिचित्र बने जो तात्कालिक आचार विचार के जानने के साधन हैं।

युवानच्वांग और इत्सिग की भारत-यात्राएं इसी युग की संस्कृति धर्म और सामाजिक परिस्थिति पर अच्छा प्रकाश डालती हैं। इन चीनी यात्रियों के विवरणों और बाणभट्ट के ग्रंथों में आये संस्कृति अवतरणों के आधार पर हम सातवीं सदी की भारतीय वेश-भूषा का सुंदर चित्र खड़ा कर सके हैं। जैन छेदसूत्रों और चूर्णियों में भी, जिनमें बृहद् कल्पसूत्रभाष्य और निशीथ चूर्णी मुख्य हैं, हम इस युग अथवा इसके पहले के युग का बहुत सा सांस्कृतिक मसाला पाते हैं। वस्त्रों और पहरावों का तो इनमें विशेष रूप से वर्णन है। इनमें दी हुई वस्त्र की तालिकाओं से यह बताना तो मुश्किल है कि कौन कौन से वस्त्र खास कर गुप्तयुग में ही होते थे, क्योंकि इनमें कुछ बहुत पुराने वस्त्रों के भी नाम आ गए हैं, पर साधारणत: तो यह कहा ही जा सकता है कि ये सब वस्त्र चाहे कितने ही पुराने क्यों न हों गुप्तकाल तक बनते थे। गुप्तयुग के बाद इनमें से बहुत से वस्त्रों की चलन कम हो गयी थी, इसीलिए दसवीं सदी के जैन टीकाकार उनके ठीक ठीक अर्थ नहीं कर पाये।

सभ्य समाज का एक नियम सा है कि उसके अंतर्गत रहने वाले अच्छे कपड़े पहनें और इसके लिए इस बात की आवश्यकता होती है कि तरह तरह के रंगीन और नक्काशीदार कपड़े बनें। बढ़िया कपड़ों की इस देश में और बाहर काफी मांग थी। भारतीय समाज के स्त्री और पुरुष दोनों कपड़े के शौकीन थे। इस युग में छपाई की भी काफी उन्नति हुई और तत्कालीन नक्काशियां जैसे चारखाने, डोरिया, हंस मिथुन इत्यादि कालांतर में छीपियों के रूढ़िगत अलंकार बन गये।

अभाग्यवश हमें इस युग के संस्कृत साहित्य में इतनी सामग्री नहीं मिलती जिसके द्वारा हम उस युग के रहन-सहन आमोद-प्रमोद और वेश-भूषा का पूरा पूरा चित्र खींच सके। कालिदास के काव्यों में वस्त्रों के छिटपुट उल्लेख हुए हैं पर सातवीं सदी की वेश-भूषा पर बाणभट्ट की 'कादंबरी' और 'हर्षचरित' से काफी प्रकाश पड़ता है। बाण भट्ट की सजग आंखों से उस युग की छोटी से छोटी बात नहीं छिपी है। जैन छेद सूत्रों के रचयिता कवि या साहित्यिक नहीं थे और इसीलिए उनके वर्णनों में रस की मात्रा कम है। फिर भी उनके रूखे वर्णनों और तालिकाओं में ऐसी सामग्री सुरक्षित है जो अन्यत्र नहीं मिल सकती।

वस्त्रों के भेद

अमरकोश के अनुसार वस्त्र चार प्रकार के होते थे यथा (१) वल्क, यानी छालों और रेशों से बने कपड़े जिनमें क्षौम भी आ जाता था, (२) फाल, अर्थात् फल के रेशों से

बने वस्त्र जिसमें कपास भी आ जाती थी, (३) कौशेय, अर्थात् रेशमी कपड़े, और (४) रांकव अर्थात् पश्मीने[९]। इसी तरह अनुयोगद्वार सूत्र[१०] के वस्त्रों को अंडज, बोंडज और कीडज इन तीन जातियों में बांटा गया है। अंडज की तो टीकाकार ने विचित्र कल्पना की है जिसके अनुसार ऐसे कपड़े हंस के अंडे से बनते थे, शायद उनका तात्पर्य यहां हंस दुकूल से है। सूती कपड़े को बोंडज कहते थे और रेशमी को कीडज।

रांकव

रंकु संज्ञा से बना रांकव शब्द टीकाकारों के अनुसार रंकु पशु अथवा ऐसे ही किसी दूसरे पशु के रोंएं से बने ऊनी कपड़े का द्योतक था। पर रंकु की पहचान उन्हें नहीं थी। रांकव का एक सीधा सादा अर्थ जो हमारे समझ में आता है वह यह है। पामीर के ऊंचे पठारों और मैदानों में एक किस्म के बकरे होते हैं जिन्हें वहां के रहने वाले रंग कहते हैं। शाल दुशाले बनाने के लिए अच्छा से अच्छा पश्म हमें इन बकरों से मिलता है[११]। पामीर का यह रंग ही शायद संस्कृत का रंकु है। अगर रंकु और रंग की समानता ठीक है तो रांकव के अर्थ होंगे पामीर के आसपास में बना पश्मीना। जैसा महाभारत से पता चलता है पश्म के नमदे (रांकव कट) भी बनते थे[१२]।

जैन साहित्य में वस्त्रों के भेद

जैसा हम पहले कह आये हैं जैन साहित्य में वस्त्रों की अनेक तालिकाएं आती हैं। इन तालिकाओं में बहुत से वस्त्रों के नाम आते हैं जिनके आधार पर हम इस युग के वस्त्र की निम्नलिखित तालिका तैयार कर सकते हैं—

१—जंगिय—जंगिय ऊनी कपड़े को कहते थे टीका में इसे जंगमोष्ट्राद्यूर्णा निष्पन्नं कहा गया है इससे पता लगता है कि यह वस्त्र ऊंट के बाल से बनता था[१४]।

२—भंगिय—भंगेला। अभी भी यह वस्त्र थोड़ा बहुत अलमोड़े में बनता है और इसका व्यवहार बहुत साधारण लोग करते हैं[१५]।

३—पोत्तग—ताड़ के पत्रों से बने कपड़े[१६]।

४—खोमिय—अलसी की छाल के रेशों से बना कपड़ा[१७]। निशीथ चूर्णि[१८] में

९—अ० को०, २, ६, १११

१०—अनुयोगद्वार, ३७

११—वुड, ए जर्नी टु आक्सस, लंडन, १८९२, यूल द्वारा इन्ट्रोडक्टरी एसे, पृ० ५७

१२—महाभारत, ३, २२५, ६

१३—आचारांग सूत्र, २, ५, १, ३६४; ३६९; आचारांग सूत्र, १७०; निशीथ चूर्णि (लिथो एडीशन,) भा० ७, पृ० ४६७

१४-१७—आचारांग, २, ५, १, १

१८—निशीथ, भा० ७, पृ० ४६७

क्षौम की व्याख्या है—पोण्डमया खोम्मा अण्णे भणंति रुक्खेहिंतो निग्गच्छन्ति तहा वडेहिंतो पादगा साहा। इस व्याख्या के अनुसार क्षौम रुई अथवा वट शाखाओं की छाल के रेशे से बनता था। टीका में जो दुविधा देख पड़ती है उससे पता चलता है कि ७वीं सदी में क्षौम का बनना कम हो गया था।

५—तूलकड—सेंमल के सूत से बने वस्त्र।

ये पांचों तरह के कपड़े कीमती नहीं होते थे और इसलिए जैन साधु इनका व्यवहार कर सकते थे।

कीमती कपड़े

६—आइणगाणि—चमड़े से बने वस्त्र[१९]। निशीथ में[२०] इसकी व्याख्या है 'अजिनं चम्मं तम्मि जे किरंति', अर्थात् अजिन मृगचर्म से बने वस्त्र होते थे। गुप्तकाल में लगता है शीतप्रधान प्रान्तों में पोस्तीन जैसा कोई कपड़ा पहना जाता था।

७—सहिणाणि—महीन सूत के बने वस्त्र[२१]। निशीथ[२२] में यह वस्त्र सूक्ष्म कहा गया है।

८—सहिणकल्लण—आचारांग की टीका में इस वस्त्र की व्याख्या 'वर्णछ्व्यादिभिश्च कल्याणानि, शोभनानि वा' अर्थात् रंग और अलंकारों से युक्त वस्त्र किया गया है[२३]। निशीथ[२४] में इसकी व्याख्या इस तरह से है, 'कल्लाणं स्निग्धं लक्षणयुक्तं वा किञ्चि सहिणं कल्लणं चोभयो' अर्थात् कल्याण का अर्थ चिकना अथवा नकाशीदार कपड़ा होता है, कहीं कहीं वस्त्र में चिकनाई और नकाशी दोनों होती है!

९—आयाणि—बकरे के रोएं से बने वस्त्र। आचारांग[२५] में इस कपड़े की व्याख्या है—'क्वचिद्देश विशेषेऽजाः सूक्ष्म रोमवत्यो भवन्ति, तत् पक्ष्मनिष्पन्नानि आजकानि भवन्ति' अर्थात् किसी देश विशेष में बकरियां कोमल रोएं वाली होती हैं, उनके पश्म से बनें कपड़े आजक कहलाते हैं। यहां आजक से पश्मीने का मतलब है और लगता है कि रांकव और आजक एक ही वस्त्र के पर्यायवाची है। निशीथ[२६] मे इस वस्त्र की अजीब व्याख्या है—'आयं णाम तोसलि विसये सीयतलाए अयाणां खुरेसु सेवालतरीया लग्गति तथा

१९—आचारांग, २, ५, १, ३
२०—निशीथ, ७, पृ० ४६७
२१—आचारांग, २, ५, १, ३
२२—निशीथ, ७, पृ० ४६७
२३—आचारांग, २, ५, १, ३
२४—निशीथ, ७, पृ० ४६७
२५—आचारांग, २, ५, १, ३
२६—निशीथ, ७, पृ० ४६७

वत्थं कीरंति' अर्थात् तोसलिविषय में ऋषितडाग के पास बकरियों के खुरों में एक तरह की सेवार फंस जाती है उसी से आजक बनता है । मतलब यह है कि ओड़ीसा में एक ऐसी सेवार होती थी जिससे आजक बनता था । वास्तव में चूर्णिकार को आजक के ठीक अर्थ का पता नहीं था, पर अर्थ करना जरूरी था और इसीलिए उसने, कोरी कल्पना कर दी ।

१०—कायाणि—नीली रुई के सूत से बना कपड़ा । आचारांग की टीका[२७] में इसकी व्याख्या है—'तथा क्वचिद्देशे इन्द्रनीलवर्गः कर्पासो भवति तेन निष्पन्नानि' अर्थात् किसी देश में इंद्रनील वर्ण की कंपास होती है, उससे बना वस्त्र । यहां कोकटी जैसी किसी कपास से मतलब है । निशीथ[२८] में इसकी व्याख्या है 'काकविसए काकजंघस्स जही मणी पडितो तटागे तत्थ रत्तानि जाणि ताणि कायं भणंति, द्रुते वा काए रत्तं ।' काक विषय में काकजंघ की मणि जिस तालाब में मिलती है उससे रंगा वस्त्र अथवा रक्त की द्रुति से रंगा वस्त्र । इस व्याख्या का ठीक ठीक अर्थ समझ में नहीं आता ।

११—दुगुलाणि—दुकूल की व्याख्या आचारांग की टीका[२९] में है 'गौड विषय विशिष्ट कार्पासिकं', अर्थात् गौड देश (बंगाल) में उत्पन्न एक विशेष तरह की कपास से बना वस्त्र । लेकिन निशीथ[३०] में दुकूल की कुछ और ही व्याख्या है—'दुगुल्लो रुक्खो तस्स वागो घेत्तुं उदूखले कुट्टइज्जति पाणिएण ताव जाव भूसी भूतो ताहे कच्चति दुगुल्लो' अर्थात् दुकूल वृक्ष की छाल ले कर पानी के साथ तब तक ओखली में कूटते हैं जब तक उसके रेशे अलग नहीं हो जाते । बाद में वे रेशे कात लिए जाते हैं । निशीथ की यह व्याख्या ठीक मालूम पड़ती है । अमरकोश में दुकूल क्षौम का पर्यायवाची है[३१] और उसके आवरणों को निवीत और प्रावृत कहते थे । ऐसा लगता है कि लोग जब दुकूल के अर्थ भूल गए तब सभी महीन धुले वस्त्रों को दुकूल कहा जाने लगा[३२] ।

हंस दुकूल गुप्तयुग के वस्त्र निर्माण कला का एक उत्कृष्ट नमूना था । आचारांग[३३] में एक जगह कहा गया है कि शक्र ने महावीर को जो हंस दुकूल का जोड़ा पहनाया था वह इतना हलका था कि हवा का मामूली झटका उसे उड़ा ले जा सकता था । इसकी बनावट की तारीफ कारीगर भी करते थे । वह कलाबत्तू के तार से मिला कर बना था और उसमें हंस के अलंकार थे । नायाधम्म कहाओ[३४] के अनुसार यह जोड़ा वर्ण स्पर्श से युक्त,

---

२७—आचारांग, २, ५, १, ३
२९—आचारांग, २, ५, १, ३
३०—निशीथ, ७, पृ० ४६७
३१—अ० को०, २, ६, ११२
३२—देखिए रघुवंश पर मल्लिनाथ की टीका, १, ६५
३३—आचारांग, २, १५, २०
३४—नायाधम्म, १, १३

स्फटिक के समान निर्मल और बहुत ही कोमल होता था। दहेज में और कीमती कपड़ों के साथ दुकूल के जोड़े भी दिये जाते थे[३५]।

१२—पट्ट—रेशमी कपड़ा—आचारांग की टीका[३६] में इसकी व्याख्या है 'पट्टसूत्र निष्पन्नानि' अर्थात् पट्टसूत्र से बने वस्त्र। बृहद् कल्पसूत्र भाष्य की टीका में भी इसकी यही व्याख्या है।

कपड़ों के भेद में जैसा हम ऊपर देख आये हैं अनुयोग द्वार[३७] में कीडय भी आया है। इसके निम्नलिखित भेद गिनाये गए हैं, (क) मलय, (ख) अंशुक, (ग) चीनांशुक, और (घ) कृमिराग। बृहत् कल्पसूत्र भाष्य[३८] में उपरोक्त रेशमी कपड़ों के अतिरिक्त पट्ट और सुवर्ण नामक रेशमी वस्त्रों के और उल्लेख हैं।

क—मलय—आचारांग[३९] में इसकी टीका 'मलयज सूत्रो निष्पन्नानि' अर्थात् मलय सूत्र से बना वस्त्र किया गया है, लेकिन बृहत् कल्पसूत्रभाष्य के अनुसार यह रेशमी कपड़ा था। हो सकता है इस रेशम का नाम दक्षिण बिहार में जिसे मलय भी कहते थे पैदा होने से पड़ा।

ख—अंशुक—बृहत् कल्पसूत्र भाष्य[४०] की टीका में इसे कोमल और चमकीला रेशमी कपड़ा कहा गया है। निशीथ[४१] में इस शब्द की लंबी चौड़ी व्याख्या है—'अंसुयाणि कणगकंतानि, कणगखसियानि, कणगचित्ताणि, कणग विचित्ताणि' अर्थात् अंशुक में तारबाने का काम होता था, अलंकारों में जरदोजी (खचितानि) का काम तथा उसमें सोने के तार से चित्र विचित्र नकाशियां बनी होती थीं। उपरोक्त वर्णन से पता चलता है कि अंशुक किमखाब अथवा पोत जैसा कोई कपड़ा था। आचारांग में भी इसका उल्लेख है[४२]।

ग—चीनांशुक—बृहद् कल्पसूत्र भाष्य[४३] में इसकी व्याख्या 'कोशिकाराख्यः कृमिः तस्माज्जातं' अथवा 'चीनानामजनपदः तत्र यः श्लक्ष्णतरपटः तस्माज्जातं'—अर्थात् कोशकार नामक कीड़े के रेशम से बना वस्त्र अथवा चीन जनपद के बहुत चिकने रेशम से बना कपड़ा है। निशीथ[४४] में इसकी व्याख्या है 'सुहुमतरं चीणंसुयं चीण विसए वा जातं

३५—अंतगडदसाओ, पृ० ३२
३६—आचारांग, २, ५, १, ३
३७—अनुयोगद्वार, सू० ३७
३८—बृ० क० भा० ३, ३६६१
३९—आचारांग, ३, ५, १, ३
४०—बृ० क० भा०, ४, ३६६१
४१—निशीथ, ४, पृ० ४६७
४२—आचारांग सूत्र, २, ५, १, ३
४३—बृहत् कल्पसूत्र, ४, ३६६१
४४—निशीथ, ७, पृ० ४६७

चीणंसुयम्' अर्थात् बहुत पतले रेशमी कपड़े अथवा चीन के बने रेशमी कपड़े को चीनांशुक कहत हैं । उपरोक्त व्याख्याओं से पता चलता है कि बहुत पतले रेशमी कपड़ें और चीन के रेशमी कपड़े दोनों को ही चीनांशुक कहते थे।

घ—कृमिराग—किरिम दाना से बने गुलाली रंग में रंगा हुआ रेशमी कपड़ा।

ङ—सुवर्ण—बृहद्कल्पसूत्र भाष्य[४५] की टीका में इसे सुनहरे रंग वाला रेशमी वस्त्र कहा गया है । यह रेशम के ख़ास तरह के कीड़ों से बनाये कोशों से निकलता था। लगता है यहां आसाम के मूंगा रेशम से जिसका रंग सुनहला होता है तात्पर्य है ।

१३—पत्रोर्ण—इसे आचारांग सूत्र[४६] में पत्तुन्न कहा गया है और यह छाल के रेशे से बना एक विशेष प्रकार का वस्त्र था । अमरकोश[४७] में पत्रोर्ण एक तरह का रेशम कहा गया है । शायद यह किसी किस्म का जंगली रेशम रहा हो। अमरकोश के टीकाकार क्षीरस्वामी का कहना है इस रेशम को बड़ और लकुच की पत्तियां खाने वाले कीड़े पैदा करते थे ;

उपरोक्त रेशमी कपड़ों में जो बेशकीमती होते थे उन्हें अमरकोश[४८] ने महाधन की संज्ञा दी है ।

१४—देसराग—आचारांगसूत्र[४९] में इसे केवल रंगीन कपड़ा कहा गया है पर निशीथ चूर्णि[५०] में इसका निम्नलिखित वर्णन है —'जत्थविसए या रंग विधिताए देसा रत्ता देसराग', जरत् विषय में जो रंग विधि है उसके अनुसार रंगा हुआ वस्त्र। इससे यह पता लगता है कि जाटों के देश अर्थात् पूर्वी पंजाब तथा पश्चिमी युक्त प्रदेश में कपड़े रंगने की कोई ऐसी विशेष प्रथा थी जो सारे देश में मशहूर थी। हो सकता है देशराग का चुनरी रंगने से संबंध हो ।

१५—अमिला—आचारांगसूत्र[५१] में तो इसे बकरे के चमड़े से बना कपड़ा कहा गया है पर यहं अर्थ कोई संगत नहीं मालूम पड़ता। निशीथ चूर्णि[५२] में इसका निम्नलिखित अर्थ दिया है, 'रोमेसुकता अमिला अथवा णिम्मला अमिला घट्टिणी सुघटिता ते परिभुज्ज माणा कडे कडेंति', रोम से बना वस्त्र अमिला कहलाता है अथवा अमिला वह निर्मल वस्त्र

४५—बृहत् क० सू० ४, ३६६१
४६—आचारांग, २, ५, १, ३
४७—अमरकोश, डा० हरदत्त शर्मा द्वारा संपादित, पृ० १५७
४८—अमरकोश, २, ६, ११३
४९—आचारांग सूत्र, २, ५, १, ३
५०—निशीथ, ७, ४६७
५१—आचारांग, २, ५, १, ३—८
५२—निशीथ, ७, ४६७

है जिस पर घोटे की कुंदी से कलफ आ गया है। उपरोक्त अर्थों को देखने से तो यही पता चलता है कि कुंदी किए हुए किसी विशेष तरह के वस्त्र से अमिल का तात्पर्य है।

१६—गज्जफल—आचारांग[५३] में इसे फड़फड़ाता कपड़ा कहा गया है। निशीथ चूर्णि में[५४] इसी तरह का अर्थ है—'समणं सद्दं करंति ते गज्जला'—सुनने में जो शब्द करे। लगता है कि वह लंकिलाट की तरह कोई कड़ा कपड़ा रहा होगा।

१७—फालिय—आचारांग के[५५] अनुसार यह स्फटिक के समान साफ और पारदर्शी कपड़ा था। निशीथ चूर्णि[५६] में भी इसका यही अर्थ है और इसे फाडिग कहा है, 'फडिगपहाणनिभा फडिगा अच्छा' इत्यर्थः' स्फटिकशिलाके समान स्वच्छ। लगता है यह कोई बहुत ही महीन मलमल, जिसके लिए यह देश प्रसिद्ध था, रही होगी।

१८—काय—इस शब्द के अर्थ का पता नहीं है पर शायद यह काक विषय (पूर्वी मालवा) में बना कपड़ा हो[५७]।

१९—कोयवाणि—रोएंदार कंबल अथवा ऊनी वस्त्र[५८]। निशीथ चूर्णि[५९] इसे कोतव कहा गया है। आधुनिक थुल्मे की तरह यह कोई वस्त्र था।

१९—कंबलगाणि—इसमें सभी तरह के ऊनी वस्त्रों, चादरों इत्यादि का समावेश हो जाता है[६०]।

२०—पावराणि[६१]— चादरें। यहां ओढ़ने और बिछाने दोनों तरह की चादरों से मतलब हैं, पर निशीथ के अनुसार[६२] यहां पावर के अर्थ नील गाय के चमड़े से बनी चादर है।

उपरोक्त कपड़े कीमती होते थे इसीलिए जैन छेद सूत्रों में साधुओं के लिए इन्हें वर्ज्य माना है। जैन साधु निम्नलिखित खालें और लोइयां (आइण्णे पावराणि) भी बेशकीमत होने से नहीं खरीद सकते थे।

५३—आचारांग, २, ५, १, ३—८
५४—निशीथ, ७, ४६७
५५—आचारांग, २, ५, १, ३—८
५६—निशीथ, ७, ४६७
५७—आचारांग, २, ५, १, ३—८
५८—वही
५९—निशीथ, ७, ४६७
६०—आचारांग, २, ५, १, ३—८
६१—वही
६२—निशीथ, ७, ४६७

शाल और चादरें

१—उद्रा—ऊदबिलाव के चमड़े के बने रूमाल। आचारांग[63] की टीका के अनुसार उद्र 'सिंधुविषयमत्स्याः तत्सूक्ष्मचर्मनिष्पन्नानि' अर्थात् यह वस्त्र सिंध में ऊद बिलाव के चमड़े से बनता था। निशीथ में[64] इसकी व्याख्या है 'सुसुणागिती जलचरासत्ता तेसिं अजिणा उद्दा, अण्णे भणंति उद्दे चम्मं गोरमिगाणं अजिणा' अर्थात् जल में रहने वाली सूंस का चपड़ा, दूसरे कहते हैं कि उद्र किसी सफेद पशु का चमड़ा होता था। समुद्री ऊद-बिलाव का चमड़ा तो बहुत महीन और पतला होता है। हो सकता है कि प्राचीन काल में इन समुद्री ऊदों के चमड़ों से ओढ़ने बनाये जाते रहे हों।

२—पेस—आचारांग[65] में पेस की व्याख्या है 'पेसाणीत्ति सिंधुविषय एवं सूक्ष्म चर्माण: पशवस्तच्चर्म निष्पन्नानीति', अर्थात् सिंधु देश के एक पशु विशेष महीन चमड़े से बना हुआ। निशीथ[66] में इसके अर्थ हैं 'पसैवातेसि अइण्णं, अण्णे भणंति पेसा लेसा य मच्छादियाए', अर्थात् पशु का चमड़ा, दूसरों के अनुसार पेसा मछलियों का चमड़ा था। इन व्याख्याओं से तो यह सिद्ध होता है कि पेस किसी पशु विशेष का चमड़ा था, लेकिन वैदिक और बौद्ध साहित्य में पेस सदा कसीदे के काम के लिए आया है। यहां पर भी सुंदर कसीदे के काम से बने शाल से ही मतलब है कि जिसका ज्ञान टीकाकारों को न था।

३—पेसलाणि—आचारांग में[67] इसका अर्थ है 'तच्चर्म-सूक्ष्म-पक्ष्म-निष्पन्नानि; उस चर्म के महीन पक्ष्म से बनी चादर। हो सकता है यहां पक्ष्म से कसीदे वाली पश्मीने की चादर से मतलब हो।

४—नीलमिगाईणग—नीलगाय के चमड़े से बनी चादर[68]।

५—गोरमिगाईणग—सफेद जानवर के चमड़े से बनी चादर[69]।

६—कणगाणि—सुनहरे काम की चादर[70]। निशीथ में[71] इसके दो अर्थ दिये गए हैं, 'वरडगपारिगादिपावरगा ते सुवण्णे, सुवण्णे द्रुते सुत्तं रज्जति तेन जं वूतं कणगम्' अर्थात् वट इत्यादि की छाल के रेशे से बनी चादर सुवर्ण कहलाती थी, अथवा सुवर्ण की

६३—आचारांग, २, ५, १, ३—८
६४—निशीथ, ७, ४६७
६५—आचारांग, २, ५, १, ३—८
६६—निशीथ, ७, ४६७
६७—आचारांग, २, ५, १, ३—८
६८—वही
६९—वही
७०—वही
७१—निशीथ, ७, ४६७

द्रुति (घोल) में रंग कर जिस सूत से कपड़ा बुना जाय उसे सुवर्ण कहते हैं। सुवर्ण की आखीरी व्याख्या बड़े काम की है क्योंकि इसमें सोने के घोल में रंग कर कलाबत्तू बनाने की क्रिया की ओर संकेत है। जहां तक हमें पता है मुगल युग में बिटाई से कलाबत्तू बनता था, अर्थात् चांदी सोना मिला कर तारकश तार खींचते थे। बेटरी की सहायता से कलाबत्तू रंगने की क्रिया तो फ्रांस से इस देश में हाल ही में आयी। लेकिन इस उल्लेख से तो यह सिद्ध होता है कि सोने के घोल में कलाबत्तू रंगने की प्रक्रिया गुप्त युग में भी लोग जानते थे। सोने की द्रुति बनाने की क्रिया वैद्यक शास्त्रों में दी हुई है पर अब वह काम में नहीं आती।

७—कणगकंतिय—आचारांग[७२] की टीका में इसे 'कनकस्येव कांतिर्येषा' अर्थात् सोने की कान्तिवाला कहा गया है लगता है इस दुशाले पर सोने का भरावदार काम होता था।

८—कणग पट्ट—आचारांग[७३] में इसे 'कृतकनकरसपट्टानि' कहा है जिसके अर्थ होते हैं तरल सुवर्ण से बना हुआ वस्त्र। लगता है यह कपड़ा अथवा चादर पूरी सुनहरे कलाबत्तू से बिनी जाती थी। निशीथ[७४] में कनक पट्ट के दो अर्थ दिये गए हैं यथा 'कणगेण जस्स पट्टाकता, अहवा कणग-पट्टा मिगा' अर्थात् जिस वस्त्र का किनारा सुनहरे काम वाला होता था अथवा कनक पट्ट मृग की खाल से बना वस्त्र।

९—कणगखइयाणि—कनक खचित प्रावार की व्याख्या आचारांग[७५] में है 'कनकरसस्तबकांचितानि' जिसके ठीक ठीक अर्थ समझ में नहीं आते पर यहां जरदोजी के काम से मतलब है।

१०—कणगफुसियाणि[७६]—यहां शायद हलके सुनहले काम वाली चादर से तात्पर्य है।

११—कणगयक—निशीथ[७७] में इसकी व्याख्या यों है 'अंता जस्स कणगेणकता' अर्थात् वह चादर जिसके किनारों पर सुनहरा काम हो।

१२—कणगफुल्लिय—निशीथ[७८] में इस प्रावार का निम्नलिखित अर्थ दिया गया है, 'कणगसुत्तेन फुल्लिया जस्स फुल्लिताउ दिण्णाउ तं कणग फुल्लियं जहा कद्दमेण उड्डेडिज्जति' कनक सूत्र अर्थात् कलाबत्तू से जो फूले फूल काढ़े गए हों। बाद का

७२—आचारांग, २, ५, १, ३—८
७३—वही
७४—निशीथ, ७, ४६७
७५—आचारांग, २, ५, १, ३—८
७६—वही
७७—निशीथ, ७, ४६७
७८—वही

अर्थ ठीक समझ में नहीं आता लेकिन उससे कलमदारी के काम की ओर संकेत मिलता है । कर्दम के अर्थ यहां मसाला या मोम से है जिसका कलमदारी में काफी काम पड़ता था।

१३-१५—उट्टाणि, वग्घानि, विवग्घानि—ऊंट, बाघ और चीते के चमड़ों से बनी चादरें[७९]।

१६—आभरणानि—पत्ती जैसे एक अलंकार से सुसज्जित—'पत्रिकादि एकाभरणेन मंडिता'। आभरण—विचित्त[८१] भरी नकाशीदार चादर थी जिसकी नकाशियों में पत्तियां चन्द्रलेखा, स्वस्तिक, घंटिका और मोती आते थे ।

इन वस्त्रों और चादरों के सिवाय निशीथ और दूसरे जैन ग्रंथों में निम्नलिखित वस्त्रों के उल्लेख हैं:—

१—पखंगाणि[८२]—निश्चय ही इससे पश्मीने का उद्देश्य है ।

२—पाणालाणि[८३]—आवरण के लिए कपड़े ।

३—तिरीड पट्ट—तिरीट वृक्ष (सिम्प्लिकोस रेसीमोसा) की छाल के रेशों से बना कपड़ा । निशीथ[८४] में इसकी चौड़ी व्याख्या की गयी है—'तिरीटरुक्खस्स वागो, तस्सा तंतुपट्टवरिसो सो तिरीडपट्टो तम्मि कयाणि तिरीडपट्टाणि अहवा कीडयलाला मलय विसये मलयाणि पत्राणि कोविज्जति तसु वालेसु पत्तुण्णाणि दुगुल्ललातो अभंतरहिरे जं जं उपज्जति तं अंसुयम्' अर्थात् तिरीट वृक्ष की छाल की रेशों से बना पट्ट और उससे बना तिरीट पट्ट अथवा मलय देश में मलय वृक्ष के पत्तों पर कीड़े अपनी लार इकट्ठे करते हैं इसकी ऊपरी छाल से तो पत्रोर्ण और दुकूल बनते हैं और भीतरी हीर से अंशुक । निशीथ की यह दूसरी व्याख्या दंतकथा सी मालूम पड़ती है ।

४—वडग—अंतगडदसाओ[८५] में राजकुमार गौतम के विवाह पर दहेज में मिले वस्त्रों में वडग के भी आठ जोड़े थे । वडग का मतलब यहां टसर से है ।

५—रल्लक—अमरकोश में इसे एक तरह का कंबल कहा गया है[८६]। युवान च्वांग ने भी होलाली अर्थात् रल्लक का उल्लेख किया है[८७]। उसके यात्रा विवरण के अनुसार यह ऊनी कपड़ा किसी जंगली जानवर के ऊन से बनता था। यह ऊन आसानी से कत सकता था और इससे बने कपड़े का काफी मूल्य होता था ।

७९-८१—वही

८२—निशीथ, ७, ४६७

८३-८४—वही

८५—अंतगडदसाओ, पृ० ३२

८६—अमरकोश, २, ६, ११६

८७—वाटर्स, युआन वान च्वांगस् ट्रावल्स इन इंडिया भा० १, पृ० १४८, लंडन, १९०४

६—शाणक—एक जगह युवान च्वांग[८८] का कहना है कि भिक्षु सन (शणक) के बने गहरे लाल कपड़े पहनते थे। शायद किसान और मजदूर भी सन से बने सस्ते कपड़े पहनते थे।

कपास के बने वस्त्र

गुप्त युग में प्रायः जितनी तरह के कपड़े बनते थे उनके उल्लेख हमें संस्कृत और प्राकृत साहित्यों से मिलता है। पर आश्चर्य की बात है कि इस युग में सूती कपड़ों के बारे में हमें अधिक जानकारी नहीं मिलती। इसका कारण यही हो सकता है कि सूती कपड़े इतने प्रचलित थे कि उनके बारे में कुछ अधिक कहना उचित नहीं समझा गया। इसमें शक नहीं कि इस युग में बनारस, बंगाल तथा दक्षिण में अच्छे से अच्छे कपड़े बनते थे। लगता है आचारांग में आये गर्जभ, स्फटिक इत्यादि सूती वस्त्र थे। बृहद् कल्पसूत्र भाष्य[८९] में एक जगह रुई कातने की विधि दी हुई है। पहले 'सेडुग' नामक रुई से बिनौले निकाल लिए जाते थे और बाद में वह धुन ली (पिञ्जितम) जाती थी। अंत में इस साफ रुई की पूलियां (पेलु) कातने के लिए बना ली जाती थीं।

कपड़े बनाने की प्रक्रिया

अमरकोश में कपड़े बिनने में करघे पर से ले कर माड़ी देने और कुंदी करने तक की क्रियाओं का वर्णन है। करघे पर से तुरन्त कपड़े को अनाहत (बिना कुंदी किया हुआ), निष्प्रवाणि (तुरन्त करघे से उतरा) या तंत्रक (करघे पर बुना) कहते थे[९०]।

कपड़ों के नाम—कपड़े के छोरों को दशा या वसति, लंबाई को दैर्ध्य, आयाम और आरोह और चौड़ाई को परिणाह या विशालता कहते थे[९१]।

कपड़ों के भिन्न भिन्न नाम और दाम—कपड़ों के छ पर्यायवाची यथा वस्त्र, आच्छादन, वास, चैल, वसन और अंशुक थे[९२]। कीमती वस्त्रों के लिए सुचेलक और पट शब्द आए हैं और मामूली कपड़ों के लिए वराशि और स्थूल शाटक[९३]। यहां यह बात गौर करने की है कि हलके और नकली कलाबत्तू की बनी साड़ी को आज दिन भी बनारस में रासी माल कहते हैं जो संस्कृत बराशि का का रूपांतर मात्र है। लेकिन वैदिक साहित्य में बरासि के अर्थ बरस की छाल के रेशे से बना एक घटिया कपड़ा होता है[९४]।

८८—वही, भा० १, पृ० १२०
८९—बृहद्, ३, २९९६
९०—अ० को०, २, ६, ११२
९१—अ० को०, २, ६, ११४
९२—अ० को०, २, ६, ११५
९३—अ० को०, २, ६, ११५
९४—भारतीय विद्या, १, १, पृ० ३४

चादरें—अमरकोश में ओढ़ने बिछाने की चादरों के भी कई नाम कहे गए हैं। ओढ़ने की चादर को निचोल और प्रच्छदपट और कालीन के लिए रल्लक और कंबल शब्द आए हैं [९५]।

कपड़े की धुलाई—नायाधम्म[९६] के अनुसार कपड़े पहने सज्जी के घोल में डाल दिये जाते थे। फिर इन्हें उबाल लिया जाता था और बाद में साफ पानी से धो लिया जाता था। आज दिन भी धोबी अक्सर कपड़े इसी तरह धोते हैं।

कपड़े बनाने के प्रसिद्ध स्थान

मथुरा की डोरिया—युवान च्वांङ का कहना है कि उसके समय में मथुरा की डोरिया प्रसिद्ध थी[९७]। इस संबंध में यह ध्यान देने योग्य बात है कि अजंटा के भित्तिचित्रों में स्त्री-पुरुष दोनों धारीदार कपड़े पहनते हैं।

मंदसोर के रेशमी बुनकर—कुमारगुप्त के काल के मंदसोर से मिले एक शिलालेख से पता चलता है कि लाट अर्थात् गुजरात से कुछ रेशमी कपड़े बुनने वाले मंदसोर में आ कर बस गए थे। इनमें से कुछ तो दूसरे व्यवसायों में लग गए पर बाकी ने एक अपनी अलग श्रेणी बना ली। इस श्रेणी ने स० ४३७-३८ में एक सूर्य का मन्दिर बनवाया जिसकी मरम्मत ४७३-७४ ई० में हुई और इसी अवसर पर उपरोक्त शिलालेख प्रस्तुत किया गया[९८]। इस लेख में कारीगरों ने अपने व्यवसाय और कारीगरी के प्रति अपना स्वाभालिक अभिमान प्रकट किया है। वे कहते हैं कि तारुण्य और कांति से युक्त होने पर भी, सुवर्णहार तांबूल और फूलों से सजे होने पर भी तब तक स्त्रियां प्रिय नहीं बनतीं जब तक वे रेशमी वस्त्र न पहनें। ये वस्त्र छूने में कोमल (स्पर्शवता) तथा वर्णान्तर विभाग से अलंकृत होते थे[९९]।

ऊपर के वर्णन से पता चलता है कि गुप्तयुग में मंदसोर के बने रेशमी जोड़े स्त्रियों को बहुत प्रिय थे। ये वस्त्र छूने में कोमल होते थे और इनमें रंगों का अपूर्व समतुलन होता था। वर्णन से ऐसा मालूम पड़ता है कि यहां पटोले से प्रयोजन है।

आसाम के रेशमी कपड़े

आसाम की अंडी और मूंगा आज दिन भी अपनी मजबूती के लिए प्रसिद्ध हैं। गुप्त-युग में आसाम में नकाशीदार रेशमी कपड़े बनते थे। आसाम के राजा ने श्री हर्ष के पास जो उपायन भेजे[१००] उनमें भोजपत्र जैसी कोमल जातीपट्टिका और कोमल चित्रपट के टुकड़े

९५—अ० को०, २।६।११६

९६—नायधम्म, ३, ६०

९७—वाटर्स, वही, भा० १, पृ० ३०१

९८—इंडि० एंटि०, १५, पृ० १७६

९९—वही, पृ० १७७

१००—हर्षचरित, पृ० २१४, (कावेल का अनुवाद)

भी थे । कावेल ने जाती पट्टिका का अर्थ यहां धोती अथवा साड़ी किया है पर यह ठीक नहीं है। वास्तव में इसके शाब्दिक अर्थ के अनुसार इसका अर्थ होता है रेशमी वस्त्र के लंबे थान जिनमें चमेली के फूलों की नकाशी बनी हो (जाती=चमेली, पट्टिका=पट्टियां) । भोजपत्र से इसकी तुलना से पता लगता है की जातीपट्ट किसी तरह का मूगा था क्योंकि आज दिन भी इसका रंग भोजपत्र जैसा ही होता है । चित्रपट में लगता है भरी नकाशी होती थी ।

बंगाल के धोती दुपट्टे

गुप्तयुग में भी बंगाल अपने कपड़ों के लिए प्रसिद्ध था । हर्षचरित में पौंड्र (उत्तरी बंगाल) के बने धोती दुपट्टे की तारीफ की गयी है।

गुजरात की बांधणी

गुजरात और राजपुताने की बांधणी या चूनरी आज दिन भी प्रसिद्ध है[१०१] । हर्षचरित में [१०२] इसे पुलकबंध कहा गया है और इससे कभी कभी स्त्रियों के कंचुक बनते थे ।

व्यवहारसूत्र में कपड़े बनने के प्रसिद्ध स्थल

व्यवहारसूत्र भाष्य में[१०३] एक जगह उन जगहों की सूची दी हुई है जहां कपड़े बनते थे। समुद्र पार (पारावतादि) विदेशों से भी लगता है कपड़े आते थे । टीकाकार के अनुसार यहां आदि से पौंड्र का मतलब है । व्यवहारसूत्र के भाष्य में जो शायद गुप्तयुग में लिखा गया था कोटंब, ताम्रलिप्ति और सिंधु कपड़े बनाने के बड़े केन्द्र थे । टीकाकार ने कोटंब की व्याख्या गौड़ देश के अर्थात् बंगाली कपड़े से की है पर शायद यह ठीक नही है। जैसा बौद्ध साहित्य से पता चलता है कोटुबर [१०४] औदुबर देश (पठान कोट) में बनता था। ऐसा पता चलता है कि ग्यारहवीं सदी में जब व्यवहार भाष्य की टीका लिखी गयी कोटुबर की याद इतनी हलकी पड़ गयी थी कि टीकाकार ने उसे पंजाब से उठा कर बंगाल में रख दिया । ताम्रलिप्ति अर्थात् कलकत्ते के पास आधुनिक तामलुक भी उस युग में कपड़े बनाने का प्रसिद्ध केन्द्र था । सिंधु प्रदेश भी कपड़ों के लिए प्रसिद्ध था ।

काशी के बने वस्त्र

इस युग में काशी के बने वस्त्रों का तो कोई साहित्य में उल्लेख नही मिलता पर लगता है कि पुष्पपट्ट [१०५] यानी किंखाब यहीं बनता था।

१०१—वही, पृ० ७२
१०२—वही, पृ० २६१
१०३—व्यवहारसूत्र भाष्य, ७, ३
१०४—भारतीय विद्या, १, १, पृ० ४०
१०५—हर्षचरित, पृ० ८५

विवाह में कपड़े देने की प्रथा

शान-शौकत और लेन-देन की प्रथा इस देश में विवाह की एक खास बात है। इस अवसर पर बराती और घराती दोनों दिखाव बनाव में एक दूसरे से होड़ लगाते हैं। इस प्रथा की प्राचीनता हमें हर्षचरित से लगता है। हर्ष की बहन राज्यश्री के विवाह के समय राज महल में अच्छे से अच्छे कपड़े दहेज में देने के लिए सजाये गए थे। क्षौम, सूती कपड़े (बादर), दुकूल, लालातंतुज, नेत्र और अंशुक इन कपड़ों में मुख्य थे।[१०६] यह ठीक पता नहीं लगता कि नेत्र क्या था। कावेल के अनुसार यह कलाबत्तू और रेशम से बिना एक तरह का वस्त्र होता था। अमरकोश[१०७] के टीकाकार क्षीरस्वामी के मत से नेत्र एक वृक्ष विशेष की छाल के रेशे से बनता था। १४ वीं सदी तक बंगाल में नेत्र अथवा नेत एक मजबूत रेशमी कपड़े को कहते थे। नेत की पाचूडी पहनी और बिछाई जाती थी[१०८]। श्री कावेल ने लालातंतुज का अर्थ स्पाइडर्स सिल्क अर्थात् बहुत महीन रेशमी कपड़ा किया है। इस संबंध में हम निशीथ चूर्णि की तिरीटपट्ट की व्याख्या की ओर ध्यान दिला देना चाहते हैं। यह तिरीटपट्ट कीड़ों के लार से बना माना गया है। ये कीड़े मलय वृक्ष के पत्तों पर अपनी लार इकट्ठा करते थे और उसके ऊपरी भाग से तिरीटपट्ट बनता था। जो भी हो पता ऐसा लगता है कि लालातंतुज किसी बहुत पतले रेशमी पारदर्शी कपड़े का नाम था।

संस्कृत साहित्य में सिले और बेसिले कपड़े

यह कहा जा चुका है कि अधिकतर भारतीय सिले कपड़े नहीं पहनते थे। पुरुष धोती और दुपट्टे पहिनते थे और स्त्रियां साड़ी। हमारे देश की जलवायु को देखते हुए जो वर्ष में अधिकतर गरम और खुश्क रहती है, धोती, दुपट्टा, चादर और साड़ी उपयुक्त और स्वास्थ्यकर पहरावे हैं। लेकिन इसके यह माने नहीं है कि भारतीयों को सिले कपड़े पहनने से कोई रुकावट थी। बिना सिले कपड़े सादे होते थे इसलिए धोती, दुपट्टा और चादर ऐसे कलात्मक ढंग से पहने जाते थे कि जिससे पहनने वाले के सौंदर्य में अभिवृद्धि होती थी और कपड़े भी बड़े सुहावने लगते थे।

अमरकोश में सिले और बेसिले कपड़ों के बारे में बहुत कम कहा गया है। इसमें धोती के लिए चार शब्द हैं यथा, अंतरीय, उपसंव्यान, परिधान और अधोंशुक,[१०८] तथा दुपट्टे और चादर के लिए पांच यथा, प्रावार, उत्तरासंग, वृहतिका, संव्यान और उत्तरीय[१०९]।

१०६—वही, पृ० १२५

१०७—अ० को०, वही, पृ० ३१३

१०८—तमोनाशचन्द्र दास, आसपेक्ट्स ऑफ बंगाली सोसाइटी फ्रोम बैंगाली लिटरेचर, पृ० १८०-१८१, कलकत्ता, १९३५

१०८—अमरकोश, २, ६, ११७

१०९—वही, २, ६, ११७-११८

धोती और दुपट्टे के लिए भिन्न समानार्थक शब्दों में, उनके नाम और बनावट के अनुसार क्या क्या भेद थे, यह कहना कठिन है ।

चोली

स्त्रियों की चोली के लिए चोल और कूर्पासक शब्द आये हैं [११०], पर यह नहीं बतलाया गया है कि इन दोनों में क्या भेद था । चोली अथवा कंचुक के अर्थ में कालिदास ने कूर्पासक शब्द का कई बार व्यवहार किया है [१११] । जैसा कि ऋतुसंहार से पता चलता है कूर्पासक एक तरह की चोली थी जो स्तनों पर कस के बैठती थीं।

लहँगा

आधे जंघों तक पहुंचते हुए घाघरे को चंडातक कहते थे [११२] । आगे चल कर हम देखेंगे कि चंडातक का अर्थ घाघरे तक ही सीमित न रह कर स्त्रियों और पुरुषों की एक तरह की कमीज के लिए भी होने लगा था ।

लबादा

जाड़े में पहनने के लबादे को नीशार [११३] कहते थे । और अंगरखे की तरह एक पैरों तक लटकते हुए सिले वस्त्र को प्रपदीन [११४] ।

गुप्तयुग में स्त्रियों के वस्त्र पहनने के ढंग

गुप्तयुग के साहित्य में विशेषत: कालिदास के नाटकों और बाण भट्ट की आख्यायिकाओं से तत्कालीन वेशभूषा पर काफी प्रकाश पड़ता है । स्त्रियां साड़ी और चादर के सिवाय वैकक्ष्य भी पहिनती थीं। सावित्री के पहिरावे का वर्णन करते हुए बाण भट्ट कहते हैं कि उनके अंग पर एक शाल (गात्रिका) था, जिसकी गट्ठी स्तनों के बीच बंधी थी, [११५] और उसका वैकक्ष्य बाएं कंधे से होता हुआ दाहिने हाथ के नीचे से जाता हुआ यज्ञोपवीत की तरह एक योगपट्ट (योग साधना के समय शरीर को बांधने वाली एक पट्टी) से बना था । स्त्रियां कभी कभी कंचुक भी पहनती थीं। मालती का पहिरावा बतलाते हुए बाण कहते हैं कि वह सांप के केंचुल से भी हलका और पैर के अंगूठों तक लहराता हुआ (प्रपदीन) धुले हुए सफेद नेत्र का बना

११०—वही, २, ६, ११८

१११—ऋतुसंहार, ४, १६, कूर्पासकं परिदधाति नखक्षतांगी; वही, ५, ८, मनोज्ञकूर्पासक पीड़ितस्तना:।

११२—अमरकोश, २, ६, ११६

११३—वही, २, ६, ११८

११४—वही, २, ६, ११६

११५—स्तनमध्य-गात्रिका-ग्रन्थि; योगपट्टेन विरचित वैकक्ष्य, हर्षचरित, पृ० ६,

हुआ कंचुक पहने थीं [११६]। उस कंचुक के नीचे रंग बिरंगे चूनरों से सुसज्जित केसरिया चंडातक था। यहां पुलकबंध से गुजरात और राजपूताने की बांधणी अथवा चूनरी से मतलब है। बाण के अनुसार थानेश्वर की स्त्रियां चोली पहनती थीं [११७]।

स्त्रियां कभी कभी सुंदर नक्काशीदार कपड़े पहनती थीं। बाण भट्ट ने एक जगह एक देवी को एक मलमल की चादर पहने दिखलाया है जिसमें सैकड़ों तरह के तरह तरह के पुष्प और चिड़ियों के नकशे बने थे और जो मंद वायु के धीमें झोंकों से तरंगित हो रही थी[११८]।

ऋतुओं के अनुसार स्त्रियों के कपड़े

स्त्रियां ऋतुओं के अनुकूल अपने कपड़ों में हेर फेर कर लेती थीं। ग्रीष्म में वे दुकूल की बनी एक हल्की साड़ी पहिनती थीं[११९] और बसंत में केसरिया साडी और केसरिया और लाल स्तनपट्ट [१२०]।

राजा का पहरावा

राजे सादे पर रोबदार कपड़े पहनते थे। हर्षचरित में [१२१] हर्ष को नेत्र सूत्र से मिश्रित धोती और सितारे टंका हुआ दुपट्टा पहने दिखलाया गया है। राजा की सफेद धोती हंस मियुन की नक्काशी से सुशोभित होती थी और उसके सिरे चमर से निकली हवा में फड़फड़ाया करते थे[१२२]। युद्धक्षेत्र को जाते हुए हर्ष को धोती और हंस मिथुन से अलंकृत दुपट्टा पहने बताया गया है[१२३]। नायाधम्म कहाओ[१२४] में राजकुमार गौतम को अंशुक की धोती और दुपट्टा जो रंगीन, महीन, और मुलायम थे और जिनके किनारों पर सुनहरा काम था, पहरे बतलाया गया है। अंतगडदसाओ[१२५] में राजकुमार गोतम को हंस लक्षण दुकूल पहने बताया गया है।

११६—तिरोहिततनुलता, कृत त्रकुसुंराग-पाटलं, पुलकबंध-चित्रं-चण्डातमभन्तःस्फुटम्, हर्षचरित, पृ० २६१, धौत-धवल-नेत्र-निर्मितेन निर्मोक-लघुतरेण प्रपदीनेन कंचुकेन

११७—हर्षचरित, पृ० ८३

११८—बहुविध-कुसुम-शकुनिशत-शोभितात्तपवन-चलितस्तनुतरंगादतिस्वच्छादंशुकात्, हर्षचरित, पृ० ९६

११९—ऋतुसंहार, १, ४

१२०—ऋतुसंहार, ६, ४, कुसुंभरागारुणितैर्दुकूलैर्नितंबबिंबानिविलासिनीनाम् रक्तांशुकैः कुङ्कुम रागगौरैरलंक्रियन्ते स्तनमण्डलानि

१२१—सतारागणेनोपकृतेन द्वितीयाम्बरेण विमलपयधौतेन नेत्रसूत्रनिवेशशोभिनाधरवाससा, हर्ष-चरित, पृ० ५९

१२२—अमृतफेनधवले गोरोचनालिखित-हंसमिथुन-सनाथ-पर्यन्ते चारुचमर-प्रनर्तित-दशे, कादंबरी (काले द्वारा- संपादित), पृ० १९

१२३—परिधाय-राजहंस-मियुन-लक्ष्मणि सदृशे दुकूले, हर्षचरित, पृ० १९८

१२४—नायाधम्म, १, १३

१२५—अंतगड, पृ० ४६

उच्च वर्ण के लोगों के कपड़े

उच्च वर्ण के लोग समाज में अपनी मान मर्यादा के अनुकूल कपड़े पहनते थे। बाण ने इसी श्रेणी के एक नवयुवक के धोती पहनने के ढंग का वर्णन किया है। "सरस्वती ने जिस युवक को देखा उसकी कमर हरे रंग की उस धोती से जिसका छोर जरा नाभि के नीचे था, जिसका सिरा कमरबंद के पीछे था और जिसके दोनों पक्ष इस तरह बंधे थे कि जांघ का एक तिहाई भाग देख पड़े, कसी थी[१२६]।"

पदाति और अश्वारोहियों के पहरावे

बाण भट्ट को तत्कालीन सिपाहियों के पहिरावों का अच्छा ज्ञान था। उस युग में पैदल सिपाही कृष्णागरुचर्चित कंचुक पहनते थे। उनके सिर रुमाल से ढंके रहते थे और कटार दोहरे कमरबंद के फेंटे में खुसी रहती थी[१२७]। घुड़सवार कभी कभी वारबाण पहनते थे[१२८]। सिपाही कभी कभी बाघंबरनुमा कपड़े से बने कंचुक और रंग विरंगी पट्टियों से बनी पगड़ियां पहनते थे[१२९]। युद्धक्षेत्र में जाने वाले योद्धाओं का निम्नलिखित वर्णन हर्ष-चरित में दिया है—"उनकी जंघाएं चित्रित और सुकुमार नेत्रपट से ढकी थीं। उनके ताम्र वर्ण पैर कीचड़ से सने वस्त्र से चित्रित थे और उनके पाजामे भौंरे से काले थे। उनके कंचुक लाजवर्दी रंग के थे। उनके ऊपर उन्होंने चीन-चोलक तथा तारमुक्ता वाले स्तवरक पहन रक्खे थे। उनके कूर्पासक रंग विरंगे और उनकी चादरें हरी थी। उनकी पगडियों में कर्णोत्पल की नालें खुसी थीं। बहुधा उनके सिर केसरिया उत्तरीय से भी ढंके थे[१३०]।

ऊपर के वर्णन में बहुत से शब्द वस्त्र और वेश भूषा के संबंध में आए हैं जिनके विषय में कुछ कहना आवश्यक है।

(१) नेत्र—इस रेशमी कपड़े के बारे में हम कुछ पहले ही कह आए हैं यहां नेत्र के वर्णन से पता लगता है कि वह कोमल नक्काशीदार रेशमी कपड़ा (उच्चित्रसुकुमार) रेशमी वस्त्र होता था।

१२६—पुरस्तादीषदधोनाभि-निहितैककोण-कमनीयेन, पृष्ठतः कक्ष्याधिकक्षिप्तपल्लवेनोभयतः सञ्चलनप्रकटितोरुत्रिभागेन हारीतहरितानिबिडनिपीडितेनाधरवाससा विभज्यमान-तनुतरमध्यभागम्, हर्षचरित, पृ० १७-१८।

१२७—पिनद्ध-कृष्णागुरु-पङ्ककल्कच्छुरण-कृष्ण-शबल-कषाय-कञ्चुकेन उत्तरीयकृतशिरोवेष्टनेन, द्विगुणपट्टपट्टिकागाढ़ग्रंथिग्रंथितासिधेनुना, वही, पृ० १६

१२८—धवलवारबाणधारिणं, धौतदुकूलपट्टिकापरिवेष्टितमौलिम्, वही, पृ० १६

१२९—जरद्व्याघ्रचर्म-शबल-वसन-कंचुकधारिभिः, अनेकपट्टचीरकोद्बद्धमौलिभिः, कादंबरी, पृ० १६१।

१३०—उच्चित्रनेत्र-सुकुमार-स्वस्थगण-स्थगितजंघाकांडैश्च, कर्दमिक-पट-कल्मषितपिशंगपिंगैः अलिनील मसृणसतुल-समुत्पादितकंचुकैः उपचितचीनचोलकैश्च, तारमुक्तास्तबकित-स्तवरक-वारबाणैश्च उष्णीषि पट्टावस्तब्ध-कर्णोत्पलनालैश्च, कुंकुमराग-कोमलोत्तरीयान्तरितोत्तमांगैश्च, हर्षचरित, पृ० २०२।

(२) कंचुक—अमरकोश के अनुसार[१३१] कंचुक और वारबाण शरीर के बख्तर को कहते थे। लेकिन योद्धाओं के कंचुक को लगता है कुरतानुमा होते थे। एक जगह तो यह बुंदकीदार कपड़े का और दूसरी जगह यह नीले कपड़े का बना बतलाया गया है।

(३) वारबाण—वारबाण वह स्तवरक कपड़े का बना होता था जिसके चमकीले मोती के गुच्छे टंके होते थे। स्तवरक शब्द सस्कृत का न हो कर पहलवी भाषा का है। कुरान शरीफ में भी इसका जन्नत के प्रकरण मे उल्लेख है। ऐसा मालूम पड़ता है कि यह काफी कीमती कपड़ा होता था। स्तवरक के उल्लेख से यह भी पता चलता है कि सासानी, ईरान और भारत से काफी व्यापारिक संबंध था[१३२]। स्तवरक के उल्लेख से यह भी साफ हो जाता है कि वारबाण लोहे का बना जिरह बख्तर नहीं था। हो सकता है कि वारबाण मुगल कालीन चिल्टे की तरह एक भरा हुआ कोट हो जिसे तलवार के वार से शरीर को वचाने के लिए पहना जाता था।

(४) चीन चोलक—कावेल चीन चोलक को जिरह बख्तर का चहार आइना समझते हैं। इसके वर्णन से एक बात तो पक्की हो जाती है कि यह कंचुक के ऊपर पहना जाता था और इसलिए शायद यह किसी तरह का चहार-आईना रहा हो। यह रूई भरा हुआ पूरी बांह का लंबा कोट भी हो सकता है जो मध्य एशिया में सर्वत्र पहना जाता है। जो भी हो प्रायः यह तो निश्चय है कि मध्य एशिया से आया हुआ कोई बख्तरनुमा वस्त्र था जिसे सातवीं शताब्दी में भारतीय योद्धा पहनते थे।

कूर्पासक—अमरकोश और ऋतु संहार में तो यह शब्द स्त्रियों की चोली के लिये आया है पर यहां तो उसे योद्धा पहनते थे। लगता है कूर्पासक आधे बांह वाली मिर्जई अथवा कोई गंजीनुमा वस्त्र रहा हो। अजंटा के भित्ति चित्रों मे सिपाही ऐसा वस्त्र पहने बहुधा दिखलाए गए हैं।

राज कर्मचारी, दूत, लेखक इत्यादि की पोशाकें

बाण ने बहुत सी जगहों मे राज्य कर्मचारियों, दूतों, भिक्षुकों, लेखकों इत्यादि के पहरावे का वर्णन किया है। बाण की वर्णनात्मक शैली इतनी प्रौढ़ थी कि वे जरा में ही एक व्यक्ति या घरका का सजीव चित्र खड़ा कर देते थे। उदाहरणार्थ, हर्ष के भाई कृष्ण द्वारा बाण के पास भेजे हुए इनकी वेश भूषा का चित्र एक पंक्ति में ही मिल जाता है। "उसका चंडातक कमरबंद से बंधा था और उसके खुले बाल पीछे की ओर एक कपड़े से बधे

१३१—अ० को०, २, ८ ६४

१३२—रिचार्ड जेफरी, ए वोकाबुलरी ऑफ फारेन वर्डस् इन कुरान, गायकवाड ओरियंटल सीरीज़ १९३८, कुरान में इस्तब्रक, ८, ३०; ४४, ५३, ७६, २१ का व्यवहार रेशमी किंखाब के अर्थ में हुआ है। अधिकतर टीकाकारों ने इसे फारसी से उधार लिया शब्द माना है। यह शब्द पहलवी स्तौर से निकला है जिसका अर्थ मोटा और सुन्दर कपड़ा होता है।

थे[१३३] "। दूत का यह छोटा सा वर्णन हमारे सामने धावा मार कर आये धूल धूसरित दूत की वेश भूषा का चित्र एक पंक्ति में मिल जाता है। ऐसा लगता है कि प्रतिहारी और महा प्रतिहारी सफेद कंचुक पहनते थे[१३४] और कमरबंद बांधते थे[१३५]।

सन्यासी भैरवाचार्य की वेशभूषा की तुलना अगर हम आज कल के सन्यासी की वेशभूषा से करें तो हमें बाण की दृष्टि की सत्यता का पता चल जायगा। एक जगह उन्हें वैकक्ष्य की तरह गेरुआ उत्तरीय तथा छाती तक पहुंचता गेरुआ कौपीन पहने दिखलाया गया है[१३६]। एक दूसरी जगह जब उनकी श्रीहर्ष से मुलाकात हुई तब वे काला कंबल[१३७] एक क्षौम का कोपीन पहने थे तथा रेशमी पर्यङ्क बंध से उनका शरीर बंधा था। वे पादुका भी पहने थे[१३८]।

पगड़ियाँ

अजंटा के भित्ति चित्रों में बहुत कम लोग पगड़ी पहने दिखलाये गए हैं लेकिन गुप्त सिक्कों पर अंकित मूर्तियों के सिरों पर तो अक्सर पगड़ियां देख पड़ती हैं। गुप्तकालीन साहित्य में बहुत जगह पगड़ी के उल्लेख हैं। हर्ष चरित मे[१३९] एक जगह पगड़ी बांधने के लिए मलमल की पट्टियों का उल्लेख है। एक दूसरी जगह पगड़ी के बीच के बड़े लट्टुओं का जिक्र है[१४०]। अजंटा के भित्ति चित्रों में पगड़ियों का कम आना किसी स्थानिक विशेषता का द्योतक है, अथवा शायद पगड़ियां चित्रकारों ने इसलिए नहीं बनायी क्योंकि उन्हें स्त्री पुरुषों के सुन्दर केश रचना से दिखलाता था, पगड़ियां रख कर वे ऐसा नहीं कर सकते थे।

४

जैन छेद सूत्रों में जिनका अभी बहुत कम अध्ययन हुआ है भारतीय वेश भूषा और कपड़ों के इतिहास के लिए बहुत सामग्री सुरक्षित है। इनसे हमें जैन साधुओं और गुप्त युग के नागरिकों की वेश भूषा का पूरा पता चलता है। छेद सूत्रों का विषय साधुओं का आचार विचार है। कुल मिला कर छ छेद सूत्र हैं जिनमें बृहत् कल्पसूत्र भाष्य का बड़ा स्थान है। सूत्रों में तो वस्त्र संबंधी सामग्री कम है पर बाद के लिखे भाष्यों और टीकाओं में काफी सामग्री है।

१३३—कार्दमिक-चेलचीरिकानियतोच्चण्डचण्डातकं, पृष्ठ-प्रेङ्खत-पटच्चरघटितगलितग्रन्थिम्, हर्षचरित, पृ० ४१।

१३४—धौतकञ्चुकाच्छिन्नवपुषा, हर्षचरित, पृ० ४६; कञ्चुकावच्छन्नवपुषा, कादंबरी, पृ० ३५।

१३५—हर्षचरित, पृ० ४६।

१३६—धातुरसारुणेन कर्पटेन कृतोत्तरासंग, हर्षचरित पृ० ८६।

१३७—कृष्णकंबल-प्रावरण, हर्षचरित, पृ० २६३

१३८—पाण्डर-पवित्रक्षौमावृत-कौपीनं, सावष्टंभ-पर्यंकबंध-मण्डिलतेनामृतफेन-श्वेतारुचायोग पट्टकेन, हर्षचरित पृ० २६५।

१३९—अंशुकोष्णीष-पट्टिकामिव, हर्षचरित, पृ० १४।

१४०—उष्णीषपट्टकल्ललाट-मध्यघटित-विकट-स्वस्तिक-ग्रंथि, हर्षचरित, पृ० ८०-८१।

बृहत् कल्पसूत्र भाष्य के, जो भारत के सामाजिक इतिहास के लिए एक अभूत पूर्व ग्रन्थ है, एक खंड में साधुओं के वस्त्र पर तथा अविहित वस्त्रों के पहनने से पाप और उसके दूर करने प्रायश्चित्त संबंधी नियम हैं। आनुषंगिक रूप से इस खंड में नागरिकों की वेश भूषा का भी वर्णन आ गया है। इस ग्रंथ का सूत्र भाग निश्चय ही बहुत प्राचीन है और इसके रचयिता भद्रबाहु चन्द्रगुप्त मौर्य के समकालीन माने जाते हैं। इसका भाष्य जिनदास ने शायद छठी सदी में लिखा। इसमें ईसा की आरंभिक शताब्दियों के सामाजिक इतिहास का मसाला है पर अधिकतर मसाला गुप्त युग का है।

कपड़े बदलने के समय

बृहत् कल्पसूत्र[१४१] में चार समय कपड़े बदलने की बात है यथा (१) नित्य निवसन, (२) नहाने के बाद का कपड़ा (निमज्जनिक), (३) उत्सवों पर पहने जाने वाले कपड़े (क्षणोत्सविकं) तथा (४) राजाओ, सभासदों इत्यादि से मिलने के समय के कपड़े (राजद्वारिकं)। उपरोक्त विवरण से पता चलता है कि ऊपरी वर्ग के भारतीय अपने कपड़े समय के अनुसार बदलते थे। आधुनिक समय में तरह तरह के कपड़े पहनने की प्रथा इस देश में छूटती जाती है फिर भी लोग कुछ कपड़े उत्सवों के लिए रख छोड़ते हैं।

कपड़े बासने की प्रथा

गुप्त युग में कपड़ों की धुलाई और तैयारी का बहुत ख्याल रक्खा जाता था। छेद सूत्रों में कपड़े धोने, कलफ करने और बासने की प्रथाओं का उल्लेख है। पहले कपड़ा धो लिया जाता था (धौत) फिर उस पर कुंदी कर के (घृष्ट) माड़ी (मृष्ट) दी जाती थी और अंत में धूप से वह बास (संप्रधूमित) दिया जाता था[१४२]।

कपड़े पर देवों का आवास

कपड़ों के भिन्न भिन्न भागों में देवताओं या राक्षसों का निवास माना जाताथा[१४३]। कपड़ों के चारों कोनों पर देवता किनारों और मध्य भाग में पितृ, कान के पास असुर और ठीक मध्य विन्दु में राक्षस निवास करते थे। कपड़ों के साथ देवताओं और असुरों का साथ दिखाने से शायद तात्पर्य यह था कि लोग धार्मिक अवसरों पर ठीक नाप के कपड़े व्यवहार में लावें जिससे देवता प्रसन्न रहें।

जैन साधुओं के विहित वस्त्र

बहुत प्राचीन प्रथा[१४४] के अनुसार इस युग में भी जैन साधुओं को जंगिम, भंगिम, शाणक, और पोत्तक कपड़े पहनने की अनुमति थी। जंगिम ऊंट के बाल से बना कपड़ा था।

१४१—बृहत् कल्पसूत्र भाष्य, १, ६४४
[१४२—वही, ३, ३००१
१४३—वही, ३, २८८३

ऊनी कपड़ों का जिक्र करते हुए भाष्य भेंड़ के ऊन से बने कपड़े को और्णिक, ऊंट के बाल से बने कपड़े को औष्ट्रिक और हिरन के रोएं से बने कपड़े को मृग रोम कहता है। कुतप को जीर्ण कहा गया है। किट्ट ऊन अथवा बाल से बनता था। किट्ट ऊन और बाल के उस बचे अंश को कहते थे जो अच्छे कपड़े बनाने के बाद बच जाता था[१४५]। बृहत् कल्पसूत्र भाष्य[१४६] की एक पाद टिप्पणी मे संपादक ने उपरोक्त ऊनी कपड़ों के सम्बन्ध मे दो चूर्णियों की राय दी है। एक चूर्णि के अनुसार मृग लोम की व्याख्या सलोममूषक्लोमंवा की गयी है सलोम का अर्थ यहां समूर हो सकता है। मूषक लोम का अर्थ साधारणतः मूसे के बाल है। पर यहां मूषक से ठंडे प्रदेशों में रहने वाले ऊन बिलवासी पशुओं से जिनके समूर कपड़े बनाने के काम मे आते थे प्रयोजन है। विशेष चूर्णि में मृगलोम की व्याख्या पव्वए यानं रोम याने बकरे का बटा हुआ रोआं है। कुतप भी बकरे के रोएं के किसी भाग से बनता था। इसका शायद यह तात्पर्य है कि कुतप तो बकरे के लबे बाल से बनता था और पश्मीना पेट के नीचे के बालों से। किट्टिम चूर्णि के अनुसार बकरे के रोएं से बनता था। भांगिक यानी भंगेला, शाण यानी सन्नी और तिरीट की छाल के रेशे के कपड़े भी जैन साधु पहन सकते थे।

जैन साधु ठीक नाप वाले (प्रमाणवत्), सम तल (समं), मजबूत (स्थिर) और सुंदर (रुचिकारक)[१४७] वस्त्र पहरते थे।

जैन साधुओं को शरीर स्पर्शी ऊनी कपड़े की इसलिए मनाही थी कि उनमें जू पैदा हो जाती थी और गर्द भी इकट्ठा हो जाती थी। लेकिन वे ऐसी ऊनी चादरे जिनके गंदे होने का भय नही था और जो शरीर को ठंडक से बचाती थी पहन सकते थे[१४८]। सूती धोती न मिलने पर जैन साधु तिरीट पट्ट और रेशम (कौशिकार) की बनी धोतियां पहन सकते थे। ऊनी चादर न मिलने पर छालटी की चादर ओढ़ने का आदेश है। उसके भी न मिलने पर रेशमी चादर और उसके भी न मिलने पर तिरीट पट्ट की चादर ओढ़ी जा सकती थी[१४९]।

उपरोक्त पांच तरह के विहित वस्त्रों में से जैन साधु एक साथ केवल दो तरह के वस्त्र ग्रहण कर सकते थे जैसे-सूती और ऊनी एक साथ, अथवा तिरीट पट्ट और छालटी एक साथ[१५०]। ऐसा न करने वाला दोष का भागी होता था।

बृहत् कल्पसूत्र भाष्य में कपड़े की कटाई संबंधी अनेक शब्द आये है। बिना काट जोड़ वाले अनसिले कपड़े प्राकृतिक (यथाकृतं) कहलाते थे। जिस वस्त्र के केवल किनारे

१४५—वही, ४, ३६६१
१४६—वही, ४, पृ० १०१८, पा० टि० २
१४७—वही, ३, २८३५
१४८—वही, ४, ३६६७
१५०—वही, ४, ३६७०

(दशिका) कटे होते थे अथवा जो वस्त्र दो कपड़े जोड़ कर बनाया जाता था अथवा जो वस्त्र सिला होता था (तुन्नं) उसे अल्पपरिकर्म यानी कम काम किया हुआ वस्त्र कहते थे। वस्त्र में अनेक काट और जोड़ अथवा उसके शरीर के नाप से बनने पर और उसमे काफी सिलाई होने पर उसे बहु परिकर्म अर्थात् बहुत काम वाला कपड़ा कहते थे[१५१]।

उपरोक्त सब तरह के कपड़े नागरिक पहन सकते थे लेकिन जैन साधुओं को केवल यथाकृत वस्त्र ही विहित था, उसके न मिलने पर कुछ प्रायश्चित्त करने के बाद वे अल्प परिकर्म और बहु परिकर्म वस्त्र भी पहन सकते थे। लेकिन बीमारी अथवा यात्रा इस साधारण नियम के अपवाद थे[१५२]।

नागरिकों के वे वस्त्र जिन्हें पहनने का जैन साधुओं को अधिकार न था:--

नागरिकों द्वारा व्यवहार में लाये जाने वाले पूरे कृत्स्न कपड़े जैन साधु व्यवहार मे नहीं ला सकते थे[१५३]। ये कृत्स्नवस्त्र, नाम, स्थापना, श्रेणी, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार छ श्रेणियों मे बंटे थे[१५४]।

द्रव्य वस्त्र दो विभाग में बंटे थे यथा सकल और प्रमाण। सकल वस्त्र गज्झिन बिना हुआ (घनं तन्तुभि. सान्द्रं), चिकना (मसृणं), बिना छीर का (निरुपहत, अञ्जनखंजनादि दोषरहितं) और किनारदार होता था। गुण के अनुसार पुनः सकल वस्त्र जघन्य उत्तम और उत्कृष्ट श्रेणियों में बंट जाता था। भाष्य की टीका के अनुसार जघन्य वस्त्र मुंह पोछने का रूमाल इत्यादि (मुखपोतिकादि), उत्तम वस्त्र सुगंध लिप्त (पटलकादि) और उत्कृष्ट वस्त्र माड़ी किया हुआ (कलपमादि, हिंदी कलफ) होता था। प्रमाण कृत्स्न वस्त्र की लंबाई चौड़ाई (विस्तारायाम) साधुओं के वस्त्रों से अधिक होती थी[१५५]।

क्षत्र कृत्स्न उन कपड़ों को कहते थे जो या तो देश के एक खास भाग में मिलते ही नहीं थे और अगर मिलते भी थे तो उनका दाम बहुत अधिक होता था। टीकाकार उदाहरण के लिए कहता है कि पूर्वी भारत के कपड़े लाट मे बहुत महंगे पड़ते थे[१५६]।

• काल कृत्स्न वस्त्र साल के कुछ महीनों में बहुत महंगे पड़ते थे और बहुत मुश्किल से मिलते थे। टीकाकार कहता है, जैसे गरमी में रक्त वस्त्र, जाड़े में चादरें (शिशिर प्रावरकादि) और वर्षा में केसरिया वस्त्र (वर्षासु कुंकुमखचितादि)[१५७]।

१५१--वही, ४, ३६७१
१५२--वही, ४, ३६७२
१५३--वही, ४ पृ० १०६७
१५४--वही, ४, ३८८०
१५५--वी, ४, ३८८१-८३
१५६--वही, ४, ३८८४
१५७--वही' ४, ३८८५

भाव कृत्स्न कपड़ों के दो भेद होते थे 'वर्णयुत' रंग के अनुसार और 'मूल्ययुत' मूल्य के अनुसार[१५८]। जघन्य, उत्तम और निकृष्ट श्रेणी के कपड़ों के अलग अलग मूल्य होते थे। जघन्य श्रेणी के कपड़े का दाम अट्ठारह कार्षापण होता था और उत्तम श्रेणी के कपड़े का मूल्य एक लाख। उत्तम श्रेणी के कपड़ों के दाम अट्ठारह और एक लाख कार्षापण के बीच में होते थे[१५९]। कीमती कपड़े पहनने वाले साधुओं के प्रायश्चित्त के संबंध में कपड़ों के दाम, १८, २०, ४९, ५००, ९९९, १००००, ५०००० और १००००० कार्षापण दिया है[१६०]। उपरोक्त दामों से यह पता नहीं चलता कि यह दाम एक गज के लिए अथवा पूरे थान के लिए होता था। शायद यह पूरे थान का दाम था। यह भी पता नहीं चलता कि यहां तांबे के कार्षापण से मतलब है अथवा चांदी के। जो भी हो यह तो निश्चित है कि इस देश में गुप्त काल में काफी कीमत के कपड़े बनते थे।

विदेशों में उनकी प्रथा के अनुसार वस्त्र पहिनने की साधुओं को आज्ञा

जैन साधुओं द्वारा कीमती वस्त्र पहिनने पर प्रायश्चित्त का विधान था। कपड़े पहनने में यह रोक टोक समझदारी की द्योतक थी, क्योंकि कीमती वस्त्र पहिन कर विहार यात्रा में जाने पर साधु को चोरों का डर था[१६१]। यही नही, कीमती कपड़े पहने हुए साधुओं को अक्सर चुंगी वाले भी गिरफ्तार कर लेते थे और इस संदेह पर कि कपड़े चोरी के होंगे, उन्हें दंड देते थे[१६२]। इस संबंध में एक जैन आचार्य की कथा दी है। एक समय किसी ने एक आचार्य को एक कीमती शाल (कंबल रत्न) भेंट में दिया। शाल ओढ़े आचार्य को किसी चोर ने रास्ते में देख लिया। आवास में पहुंच कर आचार्य ने शाल के दो टुकड़े कर डाले। रात में चोर आया और छुरी दिखला कर आचार्य से कम्बल मांगा। उन्होंने शाल के टुकड़े कर देने की बात कही पर चोर ने न माना, इस पर आचार्य ने उसे शाल के टुकड़े दिखला दिए। चोर क्रोधित हुआ पर टुकड़ों को जोड़ कर वह जैसे तैसे शाल को ले कर चम्पत हो गया[१६३]।

स्थूण देश में जैन साधुओं को कपड़े के बारे में कुछ स्वतन्त्रता थी। इस देश में न तो चोरों का भय था न अच्छे कपड़े पहनने से किसी को कोई आश्चर्य ही होता था। ऐसी अवस्था में जैन साधुओं को कीमती कपड़ों के किनारे हटा कर पहिनने की आज्ञा

१५८—वही, ३८८७

१५९—वही, ४, ३८९०

१६०—वही, ४, ३८९३

१६१—वही' ४, ३८९९, ३९००

१६२—वही, ४, ३९०१

१६३—वही, ४, ३९०३-४

थी[१६४]। पर कुछ अवस्थाओं में इन वस्त्रों के किनारे (दशिका) रखे जा सकते थे। कुछ कमजोर किनारों वाले वस्त्रों में छोरों पर इसलिए किनारे जोड़ दिये जाते थे कि वे अधिक टिकाऊ बन सकें। ऐसे वस्त्रों में साधु किनारे रख सकते थे। कुछ देशों में वस्त्रों के किनारे पतले होते थे इनको भी ज्यों की त्यों रखने की आज्ञा थी[१६५]। इस संबंध में टीकाकार सिंधु का दृष्टांत देता है।

उकवत से पीड़ित जैन साधुओं को विहित नाप वाले वस्त्रों से बढ़ घट कर नाप वाले वस्त्रों को भी पहनने की आज्ञा थी[१६६]। वैद्य को दक्षिणा देने के लिए भी साधु किनारे वाले वस्त्र रख सकते थे।

नेपाल, ताम्रलिप्ति और सिंधु-सौवीर (सिंध सागर दोआब और सिंध) बहुत कीमती कपड़े बनाने के प्रसिद्ध केन्द्र थे। इन देशों में साधुओं सहित सब लोग कृत्स्न वस्त्र पहनते थे[१६७]। नेपाल इत्यादि देशों में न तो चोरों का डर था और न कीमती कपड़े पहनने में कोई विशेष मान था। सिंधु-सौवीर में गंदे और भद्दे कपड़े पहनना बुरा माना जाता था। इस अवस्था में जैन साधु भी कीमती कपड़े पहन सकते थे[१६८]

कुछ देशों मे (टीकाकार महाराष्ट्र का नाम देता है) नील कंबल की काफी कीमत होती थी। लेकिन जैन साधुओं को इसे सरदी में इसलिए ओढ़ना पड़ता था क्योंकि और कोई दूसरा वस्त्र इतनी गरमी नहीं देता था[१६९]।

ऐसा लगता है कि जैन संघ खास कर अपने मध्य कालीन इतिहास म साधु व्रत धारण करने वाले राजकुमारों इत्यादि के आराम का ध्यान रखता था। उन्हें तब तक कोमल वस्त्र पहनने की आज्ञा थी जब तक वे साधुओं के खुरदरे वस्त्र पहनने के आदी न हो जायं[१७०].

साधुओं की वेश-भूषा

धोती और चादर के अलावा साधुओं को सूती कमरबंद (पर्यस्तक) जिनमें न तो रंग होता था न कोई नक्काशी (अचित्रा.) पहनने की आज्ञा थी यह बिना जोड़ का कमरबंद केवल चार अंगुल चौड़ा होता था[१७१]। इस उल्लेख से यह भी पता चलता है कि उस युग के नागरिक रंगीन और नकाशीदार कमरबंद पहनते थे।

१६४—वही, ४, ३९०५
१६५—वही, ४, ३९०६
१६६—वही, ४, ३९०७
१६७—वही, ४, ३९१२
१६८—वही, ४, ३९१३
१६९—वही, ४, ३९१४
१७०—वही, ४, ३९१४
१७१—वही, ४, ५९९८

बीमार साध्वी की परिचर्या करते समय जब उसकी सफाई के लिए करवट बदलवाने की जरूरत पड़ती थी, तब साधुओं को गोपालकंचुक नाम का एक वस्त्र विशेष पहिनने की आज्ञा थी[१७२]। इस वस्त्र के आकार का पता नहीं लगता पर यह घोघीनुमा अथवा पूरी बांहों वाला कंचुक था जिसे छत से बचने के लिए पहरा जाता था। हो सकता है यह 'एप्रन' जैसा कोई वस्त्र रहा हो।

चादरें

भिन्न भिन्न तरह के पांच पांच दूष्यों के दो जोड़ नागरिक व्यवहार में लाते थे। पहले जोड़ मे कोयव, प्रावारक, दाढ़िकालि, पूरिका और विरलिका आये हैं। जिनके निम्नलिखित अर्थ दिये गये हैं[१७३]।

१—कोयव—इसे रूई भरी दुलाई बतलाया गया है गो कि इसका प्राचीन अर्थ रोंएदार कंबल था।

२—प्रावारक—इसे नेपाल का थुल्मे जैसा बड़ा कंबल (नेपालदि, उल्बण रोमा बृहत् कंबला:) कहा गया है। लगता है टीका में तालिका के नंबर बदल जाने से कोयव और प्रावार के अर्थों मे गड़बड़ी पड़ गई है क्योंकि साधारणत. कोयव का अर्थ रोएंदार कम्बल और प्रावार का अर्थ रूई भरी दुलाई होती है।

३—दाढिकालि—यह बहुत सफेद धुली हुई चादर होती थी जिसके किनारों पर दांत जैसे अलंकार बने होते थे।

४—पूरिका—इसकी बिनावट झिल्लड़ होती थी। इसका दूसर अर्थ पाट की बनी चादर भी होता था।

५—विरलिका—दोसूती

दूसरे जोड़ मे उपधान, तूलि, आलिंगिका, गंडोपधान और मसूरिका नाम की तकियों का वर्णन है[१७४]।

(१) उपधान—परों से भरी तकिया।

(२) तूलि—साफ रूई (संस्कृत रूत) अथवा मदार की रुई से भरी तकिया।

(३) आलिंगणिका—गाव तकिया। यह तकिया शरीर की लंबाई जितनी होती थी, और सोते समय पैरों के बीच रख ली जाती थी।

(४) गंडोपधान—सिर के नीचे एक तरफ रक्खी जाने वाली तकिया। लगता है यह तकिया गोल होती थी।

१७२—वही, ४, ३७६५

१७३—वही, ४, ३८२३

१७४—वही, ४, ३८२४

(५) मसूरक—यह गोल गद्दी (चक्कल गद्दिकादि) कपड़े अथवा चमड़े की बनी होती थी और रूई से बनी होती थी ।

जैन साध्वियों की वेश भूषा

जैन साध्वियों की वेश-भूषा लंबी चौड़ी होतीथी । उनके पहरावे में इस बात का प्रयत्न रक्खा जाता था कि उससे उनका शरीर पूरी तरह से ढक जाय । वृहत् कल्पसूत्र भाष्य में उनके पहरावे के ग्यारह वस्त्र गिनाये गए हैं—यथा अवग्रह, पट्ट, अर्धोरुक, चलनिका। अभ्यंतरनिवसनी, बहिर्निवसनी, कंचुक, औपकक्षिकी, वैकक्षिकी, संघाटी और स्कंध-कारिणी[१७५] ।

(१) अवग्रह—शरीर के गुप्त भाग को ढाकने के लिए वस्त्र । यह बीच में चौड़ा और बगल में संकरा एक गज्झिन बिना हुआ मुलायम कपड़ा होता था[१७६] ।

(२) पट्ट—यह वस्त्र बंदों से कमरके बगल में बंधारहता था । इसकी चौड़ाई चार अंगुल होती थी और लंबाई साध्वी के कमर की नाप के अनुसार। यह वस्त्र अवग्रह के छोरों को ढकता था और इसका रूप जांघिया (मल्लकक्षाबद्ध) सा होता था । यह मध्य-कालीन नीवीबंध का ही एक प्राचीन रूप था[१७७] ।

(३) अर्धोरुक—अवग्रह और पट्ट के ऊपर का यह वस्त्र पूरी कमर ढाकता था। इसका रुप तहमत (मल्लचलनाकृतिः) की तरह होता था, केवल फरक इतना था कि इसका चौड़ा सिरा दोनों जांघों के बीच कस कर बांध दिया जाता था (उरुद्वये च कसावबद्धः)[१७८] ।

(४) चलनिका—यह अर्धोरुक जैसा ही वस्त्र था केवल फरक इतना ही था कि यह आधी जांघों तक पहुंचता था । यह बेसिला वस्त्र होता था और इसके आकार की तुलना बाँस पर नाचने वाले नट (लाङ्खिक) की कछाड़ेदार धोती से की जा सकती थी[१७९] ।

(५) अंतर्निवसनी—कमर से ले कर यह वस्त्र आधी जांघों तक पहुंचता था । यह कपड़े पहनने के समय नंगा दीखने से बचने के लिए पहना जाता था[१८०] ।

(६) बहिर्निवसनी—कमर से ले कर यह वस्त्र एंडी तक पहुंचता था । यह कमर से डोरी से बंधा रहता था[१८१] । यहां शायद साड़ी से अभिप्राय है ।

१७५—वही, ४, ४०८२-८३
१७६—वही, ४, ४०८४
१७७—वही, ४, ४०८५
१७८—वही
१७९—वही
१८०—वही
१८१—वही

(७) कंचुक—साध्वियों का कंचुक साढ़े तीन हाथ लंबा और एक हाथ चौड़ा बेसिला वस्त्र जो कमर के दोनों ओर बांध लिया जाता था। इससे कठोर स्तन भी जिनका उभार कसे वस्त्रों के पहनने से हो उठता था ढक जाते थे[१८२]। यहां गृहस्थ स्त्रियों की तरह साध्वियों के लिए कंचुक न पहन सकने के कारण बेसिले कंचुक का विधान है।

(८) औपकक्षिकी—यह कंचुक के ही समान डेढ़ हाथ मुरब्बे का एक चौखूटा वस्त्र था। यह छाती का एक भाग ढकते हुए दाहिने कंधे पर बांध दिया जाता था[१८३]।

(९) वैकक्षिकी—यह वस्त्र औपकक्षकी के प्रतिकूल बायीं ओर पहना जाता था। यह पट्ट, कंचुक और औपकक्षी को ढक लेता था[१८४]।

(१०) संघाटी—संघाटियां चार होती थीं। एक दो हाथ चौड़ी, दो तीन हाथ और एक चार हाथ। लंबाई में ये चारों संघाटियां साढ़े तीन हाथ से चार हाथ तक होती थीं। दो हाथ चौड़ी एक संघाटी साध्वियां आवसथ में पहनती थीं तीन हाथ चौड़ी दो संघाटियों में से एक तो साध्वियां भिक्षा मांगने के अवसर पर पहनती थी और दूसरी शौच जाने के समय। चार हाथ चौड़ी संघाटी धर्मोपदेश सुनते समय इसलिए पहनी जाती थी कि साध्वियों के सीधे खड़े होने पर उनका पूरा अंग ढक जाय[१८५]।

(११) स्कंधकरणी—यह एक चार हाथ मुरब्बे का चौखूटा कपड़ा होता था जो चार तह करके कंधे पर तेज हवा से बचने के लिए रक्खा जाता था। इस वस्त्र का उपयोग औपकक्षिकी और वैकक्षिकी से बांध कर सुंदर स्त्रियों साध्वियों को बौनी दिखलाने के लिए किया जाता था[१८६]। इसका मतलब यह था कि प्रसाधन के लिए साध्वियां वस्त्र न पहने।

साड़ी—साड़ी पहनते समय साध्वियां उसका एक हिस्सा चुन कर आगे या पीछे जैसा गृहस्थ स्त्रियां करती थीं, नहीं खोंस सकती थीं। साड़ी की चूनन को उक्ख कहते थे। निशीथ में उसकी व्याख्या है, अधो वस्त्र के बीच का चुना हिस्सा नाभि के पास गोल उभार में दिखाना[१८७]।

कमरबंद—साधारण स्त्रियों की तरह साध्वियां कमरबंद (पर्यस्तक) नही पहन सकती थी। बीमारी में वे ऐसा कर सकती थीं पर शर्त यह थी कि कमरबंद जालदार (अजालिक) न हो[१८८]। इससे यह पता चलता है कि इस युग की स्त्रियां जालीदार कमरबंद पसंद करती थीं।

१८२—वही, ४, ४०८८
१८३—वही,
१८४—वही, ४, ४०८९
१८५—वही, ४, ४०८९-९०
१८६—वही, ४, ४०९१
१८७—वही, २, पृ० १०९७
१८८—वही, ५, ५९९६

साध्वियों के वस्त्रों की तालिका से यह स्पष्ट है कि उसमें से सब नहीं तो अधिकतर वस्त्र गुप्त युग की स्त्रियां पहनती थीं । अजंटा और बाग के भित्ति चित्रों मे अर्धोरुक, चलनिका, बहिर्निवसनी, संघाटी और स्कंधकरणी जैसे वस्त्र आये है और इन सब का व्यवहार साधारण स्त्रियां करती दिखायी गयी हैं। ऐसा लगता है कि गुप्त युग में जैन साध्वियों का पहरावा साधारण स्त्रियों के पहरावे को ले कर बना । केवल उसमे कुछ और वस्त्र शरीर के नंगापन को, जो उस युग के पहिरावे में लज्जाजनक न मान कर प्रसाधन और सौंदर्य प्रकाशन का एक अंग माना था, दूर करने के लिए जोड़ दिये गये ।

नर्तक और नर्तकियों के पहरावे

यह आश्चर्य की बात है कि आराम पसंद गुप्त कालीन समाज जिसमें सुसंस्कृत यौनाकर्षण को कला मानते थे नर्तक और नर्तकियां अपने शरीर को पूरी तरह ढक लेते थे । अजंटा के भित्ति चित्रों में आये नर्तकों ने लगता कंचुक और पाजामे पहनते हैं। बृहत् कल्पसूत्र भाष्य[१८९] में कहा गया है कि अच्छी तरह से कपड़े पहने हुए नर्तकी को नृत्य में अपने पैर ऊपर उठाते हुए लज्जा का बोध नहीं होता । रंग मंच पर सैकड़ों तरह के खेल दिखलाती हुई नटी (लंखिका) को इसलिए लज्जा का बोध नहीं होता था कि वह पूरे कपड़े पहने होती थी। रायपसेणिय[१९०] में नर्तक और नर्तकियों की वेश भूषा का पूरा वर्णन बच गया है। इस वेश भूषा का वर्णन हमें उस समय मिलता है जब सूर्याभदेव की आज्ञानुसार नर्तक और नर्तकियों ने भगवान महावीर के सामने बत्तीस तरह के नाच रंग मंच पर दिखलाये। इन युवा और सुन्दर नर्तकों ने दोनों ओर लटकते हुए उत्तरीय , कसे हुए नकाशीदार कपड़ों से बने कमरबंद (उप्पीलिय - चित्र - पट्ट - परियर), दुपट्टे[१९१] और रंग बिरंगे वस्त्र (चित्त-चित्त-चिल्लगनियसणाम्) पहन रक्खे थे । वे एकावलियों और दूसरे आभूषणों से भी सुसज्जित थे उनके मस्तकों पर तिलक थे और जूड़ों में शेखरक (तिलयआमेलणं), उनके गले में तौकें थी और उन्होंने कंचुक पहन रक्खे थे (पिनद्धगेवज्जकंचुकीणं)[१९२] ।

जैन छेद सूत्रों में आए अनेक तरह के जूते

जैन छेद सूत्रों से पता चलता है कि उस युग में चमड़े के तरह तरह के जूते बनते

१८९—वही, ४, ४१२७

१९०—रायपसेणिय , पं० बेचरदास द्वारा संपादित, पृ० १२३-२४

१९१—इस वर्णन में दुपट्टे का स्पष्ट उल्लेख तो नही है पर जिस वस्त्र का उल्लेख है उसका वर्णन यह है—सफेणग-बत्तरइय-संगय-पलंब-वत्थन्ता—अर्थात् वस्त्र के लटकते भाग फेनयुक्त लहरियों की तरह घूमते थे और उसकी काट नाटयानुरूप थी। टीकाकार ने संगय की व्याख्या नाट्यविधौ उपपन्नाः की है । इस वर्णन के आशय से यह पता लगता है कि यह वस्त्र दुपट्टे अथवा एप्रन की तरह रहा होगा। नृत्य में गति दिखलाने के लिए दुपट्टा पहना जाता था ।

१९२—वही, पृ० १५५

थे । जूते बनाने के लिए बृहत् कल्पसूत्र में गाय, भैंसे, बकरे, भेड़ और दूसरे वन्यपशुओं के चमड़े गिनाये गये हैं[१९३] । जैन साधु और साध्वियां किसी तरह के नापदार अथवा रंगीन चमड़े की वस्तुओं का व्यवहार नहीं कर सकते थे[१९४] । इस उल्लेख से यह आशय निकाला जा सकता है कि उस युग में तरह तरह के नाप और शकल के तथा रंगीन चमड़ों से जूते बनते थे जिनकी जन साधारण में काफी मांग थी । प्रमाण और वर्ण के अनुसार इन्हें चार भागों में; यथा सकल कृत्स्न, प्रमाण कृत्स्न, वर्ण कृत्स्न और बंध कृत्स्न में बांट दिया गया है[१९५] ।

सकल कृत्स्न—ये एक तल्ले जूते (एकपुटं या एकतलं) होते थे[१९६] । इस एक तल्ले जूते को जिसे तलिका कहते थे जैन साधु रात में कांटों से बचने के लिए पहन सकते थे । दिन में ये जूते तब पहने जा सकते थे जब सार्थवाह जिसके साथ जैन साधु चल रहे हों पगदंडी का रास्ता पकड़े क्योंकि ऐसे समय जूते पहनने से चलने में आसानी होती थी[१९७] ।

प्रमाण कृत्स्न—इन जूतों में दो तीन अथवा इनसे भी अधिकतर तल्ले होते थे[१९८] ।

खल्लका—टीका के अनुसार इसके अर्ध खल्लक और समस्त खल्लक दो भेद होते थे । अर्ध खल्लक जूते आधे पैर ढंकते थे और समस्त खल्लक पूरे पैर[१९९] ।

खपुसा—ये जूते घुटनों तक पहुंचते थे[२००] । इनके संबंध में हम आगे चल कर कुछ और कहेंगे ।

वागुर—इन जूतों से पैर और अंगुलियां ढंक जाती थीं।

कोशा—इससे चलने में अंगूठों के नखों की पत्थरों की ठोकरों से रक्षा होती थी

जंघा और अर्धजंघा—जंघा पूरे जंघे को और अर्ध जंघा आधे जांघ को ढंक लेता था[२०१] ।

पुटक—यह जूते तसमों से बने होते थे और इनके पहनने से जाड़े में पैरों की फटने से रक्षा होती थी[२०२] ।

कोशक और खपुसा नाम के जूते, सरदी, बरफ, सांप और कांटों से बचने के लिए

१९३—बृहत् कल्पसूत्र, ४, ३८२४
१९४—वही, पृ० १०५९
१९५—वही, ४, ३८४६
१९६—वही, ४, ३८४७
१९७—वही, २, २८८४
१९८—वही, ४, ३८४७
१९९-२००—वही
२०१—वही, ४, ३८४७
२०२—वही, ३, २८८४

पहने जाते थे । यह साफ है कि वे जूते ठंडे देशों में पहने जाते थे । जैन साधुओं को भी इन देशों में बिना प्रायश्चित्त के ऐसे जूते पहनने की आज्ञा थी[२०३] ।

सकल कृत्स्न जूतों की निम्नलिखित व्याख्या दी गयी है । ये जूते (क्रमणिका) परों के नाप के अनुसार बनाये जाते थे और मध्य या और किसी भाग मे ये कटे जुड़े नहीं होते थे[२०४] । तात्पर्य यह है कि ये जूते एक पूरे चमड़े से बनते थे ।

वर्ण कृत्स्न जूते सफेद अथवा रंगीन चमड़ों से बनते थे[२०५] ।

बंधन कृत्स्न—इन जूतों में तीन से अधिक बंद होते थे[२०६] । एक दूसरी जगह[२०७] इस जूते में सन अथवा सूत की दो या उससे अधिक पंक्तियों में सिलाइयां अथवा बंद होने की बात आयी है ।

जूतों के बंद—जूतों अथवा बूटों में दो बंद होते थे, सन का बना एक बंद घुटने पर होता था दूसरा पैर की अंगुलियों पर । कुछ जूतों में तीन बंद होते पर एक घुटने पर होता था दूसरा पैर के अंगुठे पर और तीसरा पैरों की शेष चार अंगुलियों पर[२०८] ।

जूतों की उपरोक्त किस्मों में खल्लक और खपुसा अजंटा के भित्ति चित्रों और गुप्त सिक्कों में आते हैं ।

जैसा हम पहले कह आए हैं उपरोक्त किस्मों के जूते जो शोभाजनक समझे जाते थे जैन साधु नहीं पहन सकते थे । उनके जूते अट्ठारह टुकड़ों में कटे और सिले होते थे। रंगीन चमड़ों से उनके जूते नहीं बन सकते थे और उनमें केवल एक तल्ला और एक ही बंद (एकबंधं) विहित था[२०९] ।

जैन साधुओं को भिन्न भिन्न तरह के जूते न पहनने देने के निम्नलिखित कारण थे, (१) चमड़े के व्यवहार के माने, गाय और दूसरे पशुओं के प्रति क्रूरता थी[२१०] ।(२) जूतों कड़ाई से चलने में छोटे छोटे जंतुओं की हत्या होती थी[२११] । (३) बिना जूता पहन कर चलने में लोग सावधानी से कांटे इत्यादि देख कर चलते थे। ऐसा करने से उन्हें क्षुद्र कीटादि

२०३—वही, ३, २३८५

२०४—वही, ४, ३८४८

२०५—वही, ४, ३८५१

२०६—वही

२०७—वही, ४, ३८६९

२०८—वही, ४, ३८७०

२०९—वही, ४, ३८७३

२१०—वही, ४, ३८५६

२११—वही, ४, ३८५७

भी दीख जाते थे और उन्हें बचा कर वे आगे बढ़ते थे, लेकिन जूते पहन कर चलने से मनुष्य कांटों और जीवों की कम परवाह करता था[२१२]। जूते पहनते ही हम पशुओं के प्रति क्रूरता स्वीकार कर लेते हैं[२१३]। क्षुद्र जीव स्वभाव से ही कोमल होते हैं इसलिए वे जूते की चाप सह नहीं सकते[२१४]।

धार्मिक दृष्टि से जूते न पहनना चाहे जितना पुण्य कार्य रहा हो दैनिक जीवन में यह संभव नहीं था कि जैन साधु जूते पहनने से बच सकें, और इसीलिए हम इनके जूते न पहनने के साधारण नियम में कुछ अपवाद पाते हैं। विहार करते समय, बीमारी में, प्राकृतिक रूप से कोमल पैर वालों को, चोरों और वन्य पशुओं से सर्वदा ग्रस्त साधुओं को, कुष्ठ, अर्श से पीड़ित तथा कम देखने वाले साधुओं को, तथा विहार में निकले छुल्लकों और साध्वियों को जूते पहनने की आज्ञा थी। पारिवारिक विपत्ति तथा संघ और देश पर आयी विपत्तियों के समय भी अविहित जूते बिना किसी संकोच के पहने जा सकते थे[२१५]। विहार यात्रा में साधुओं को कोश तथा खपुसा नाम के जूते पहिनने का आदेश था[२१६]। अगर साधुओं को अविहित जूते पहनने ही पड़ते थे तो उन्हें काले रंग के जूते पहनने का आदेश था, उनके न मिलने पर लाल अथवा किसी दूसरे रंग के जूते पहने जा सकते थे पर ऐसा करने के पहले यह आवश्यक था कि उनके रंग विकृत कर दिये जावें[२१७]।

जैन साधुओं और साध्वियों की उपरोक्त वेश भूषा में हम एक सामाजिक विकास की क्रिया का दर्शन कर सकते हैं। हमें आचारांग सूत्र के पहले भाग से पता लगता है कि घोर कष्टमय तपस्या ही जैन धर्म का चरम लक्ष्य था। सामाजिक बंधनों को ख्याल में रख कर दो चार मोटे वस्त्र वे अपने अंग ढांकने के लिए रख सकते थे पर इन वस्त्रों का उद्देश्य होता था केवल शरीर रक्षा और सामाजिक नियमों का पालन। गुप्त काल में सामाजिक व्यवस्था बदल गयी थी अच्छी और सुसंस्कृत वेश भूषा लोगों को अत्यंत रुचिकर हो गयी थी। बौद्ध भिक्षुओं को तो इस समय कपड़ों के विषय में विशेषकर विदेशों में जाने पर काफी स्वतंत्रता थी। जैन साधुओं को भी झखमार कर यह स्वतंत्रता कुछ अंशों में देनी ही पड़ी और प्राचीन वस्त्र संबधी कठोर नियम ढीले करने पड़े। वस्त्र संबंधी इन्हीं नये आदेशों को बृहत् कल्प सूत्र में पाया जाता है। अगर जैन धर्म को सजीव होकर आगे बढ़ना था तो उन्हें जैसा देस वैसा भेस स्वीकार करने की आवश्यकता थी। इसी उद्देश्य की कहानी छेद सूत्रों में है।

२१२—वही, ४, ३८५८
२१३—वही, ४, ३८५९
२१४—वही, ४, ३८६१
२१५—वही, ४, ३८६२
२१६—वही, ४, ३८६३
२१७—वही, ४, ३८६७

५

युवानच्वांङ् द्वारा वर्णित भारतीयों की वेश-भूषा

हम ऊपर जैन छेद सूत्रों में वर्णिति वेश भूषा का वर्णन कर आए हैं। इस खंड में हम चीनी यात्रियों द्वारा भारतीय वेश भूषा पर जो प्रकाश पड़ता है उसका वर्णन करेंगे। युवानच्वाङ, जिनका भारतीय वेश-भूषा का ज्ञान शास्त्रीय आधार पर अवलंबित जान पड़ता है, का कहना है कि भारतीय बिना सिले सफेद कपड़े पसंद करते थे। पुरुष कमर में एक कपड़ा जो कांख तक पहुंचता था लपेट लेते थे और दाहिना कंधा खुला छोड़ देते थे। स्त्रियां एक लंबा वस्त्र जो दोनों कंधों को ढंकता हुआ ढीले तौर से नीचे लटका करता था पहनती थीं[२१८]। युवानच्वांङ द्वारा वर्णित स्त्रियों के पहिरावे का वर्णन साफ नहीं है और हम यह निश्चित करने में असमर्थ है कि लंबे ढीले कपड़े से उनका उदेश्य, साड़ी, चादर या कंचुक इन तीन वस्त्रों में से किससे है। इन साधारण वस्त्रों मे सिवाय, युवानच्वांङ के अनुसार, उत्तर भारत में जहां काफी सरदी पड़ती थी लोग तातारियों की तरह चपके जाकेट पहनते थे[२१९]। शायद यह जाकेट बाद की रूईदार पूरी बांहों वाली और बायी ओर बंधने वाली बगलबंदी की तरह कोई वस्त्र रहा हो।

इत्सिंग द्वारा वर्णित बौद्ध भिक्षुओं का पहरावा

इत्सिंग नाम के एक दूसरे चीनी यात्री ने बौद्ध भिक्षुओं और नागरिकों के पहिरावे का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। मूल सर्वास्तिवादी बौद्ध भिशुओं के पहिरावे का वर्णन करते हुए इत्सिग कहता है कि उनके पहिरावे में निम्नलिखित वस्त्र होते थे। संघाटी (दोहरी चादर), उत्तरासंग (चादर) और अन्तरवास (धोती)[२२०]। इन वस्त्रों के अलावा निम्नलिखित वस्तुओं का व्यवहार भी विहित था, (१) निषीदन (बैठने या सोने की चटाई), निवसन (अधो वस्त्र), (३) प्रति निवसन (एक दूसरा अधो वस्त्र), (४) संकक्षिका (बगल ढंकने का वस्त्र), (५) कायप्रोंछन (बदन पोछने का गमछा), (६) मुखप्रोञ्छन (मुंह पोछने का रूमाल), (७) केश प्रतिग्रह (हजामत के समय बाल गिराने के लिए वस्त्र), (८) भेष परिष्कार चीवर (दवाई का दाम देने के लिए वस्त्र)। उपरोक्त वस्तुओं के सिवाय और दूसरे वस्त्र ग्रहण करने की सर्वास्तिवादी भिक्षुओं को आज्ञा न थी लेकिन वह ऊनी कपड़ों के व्यवहार के लिए स्वतंत्र था

रेशमी कपड़ों की अनुमति

ऐसा प्रतीत होता है कि संपूर्ण भारतवर्ष में बौद्ध भिक्षु बढ़िया घटिया दोनों तरह के

२१८—वाटर्स, वही, भा० १, पृ० १४८

२१९—वही

२२०—ए रेकर्ड ऑफ दि बुधिस्ट रिलिजन एज प्राक्टिस्ड इन इंडिया एंड दी मलाया आर्म्चि पेलिगो पृ० ५४, जे० तक्कुसु द्वारा अनूदित, आक्सफोर्ड १८९६।

रेशमी वस्त्र पहन सकते थे और इस संबंध में किसी प्रतिषेधात्मक आज्ञा को इत्सिग ठीक नहीं समझते थे। उनकी राय में यह बात हास्यास्पद थी कि कठिनता से मिलने वाला क्षौम तो विहित था पर आसानी से मिलने वाला रेशमी वस्त्र अविहित। इत्सिग उस मत की आलोचना करता है जिसके अनुसार रेशमी वस्त्र इसलिए नहीं पहिनना चाहिए क्योंकि वह जीवों को मार कर बनता था। इत्सिग इस तर्क की हंसी करता हुआ कहता है कि जीव हिंसा का यह सिद्धान्त अगर अपनी चरम सीमा पर पहुंचा दिया जाय तो भिक्षुओं को प्रायः सब चीजें छोड़ देनी होंगी[२२२]। रेशमी वस्त्रों के प्रति इत्सिग का यह प्रेम शायद इसलिए है कि वह उस देश का वासी था जहां रेशम तो बहुत होता था पर क्षौम कठिनाई से मिलता था। इस तर्क से इत्सिग के वैज्ञानिक विचार का भी पता चलता है।

बौद्ध निकाय के चारों भेद के अनंतर उनके मानने वाले भिक्षुओं के निवसन पहनने के ढंग के अंतरों से मिलता है। मूल सर्वास्तिवादी भिक्षु अपने निवसन के छोर कमरबंद के बाहर निकाल देते थे। महासांघिक भिक्षु निवसन का दाहिना छोर बायीं ओर ले जाकर कमरबंद में कस कर खोंस लेते थे। स्थविर निकायवादी और सम्मित निकायवादी भिक्षु अपने निवसन महासांघिक भिक्षुओं की तरह पहनते थे, सिवाय इसके कि पहले दोनों अपने निवसनों के छोर बाहर छोड़ देते थे और महासांघिक उनको कस कर कमर में खोंस लेते थे। इन चारों निकाय के भिक्षुओं के कमरबंद भी भिन्न भिन्न तरह के होते थे[२२३]।

भिक्षुणियों के वस्त्र

भिन्न भिन्न निकाय की भिक्षुणियों के वस्त्र पहनने की रीति उन निकायों के भिक्षुओं के वस्त्र पहिरने की रीतियों के अनुसार होती थी[२२४]। वे उत्तरासंग, अन्तरवास और संकक्षिका तो अपने निकाय के भिक्षुओं के तरह की पहनती थीं पर उनके निवसन पहनने का तरीका भिन्न था। निवसन के लिए कुसूलक शब्द का प्रयोग होता था क्योंकि इसका आकार कुसूल की तरह होता था। यह घाघरेनुमा वस्त्र एक वस्त्र के दोनों सिरों को सीकर बनाया जाता था। कपड़ा चार हाथ लंबा और दो हाथ चौड़ा होता था। घाघरा नाभि से ले कर एंडी के चार अंगुल ऊपर तक पहुंचता था। पहिनने में पहले घाघरे के अंदर खड़े हो कर फिर उसे ऊपर खींच लिया जाता था। घाघरे का सिरा कमर पर संकुचित कर के पीछे बांध लिया जाता था[२२५]। साधारणतः भिक्षुणियां अपनी छाती और बगलें नहीं ढांकती थीं, पर युवावस्था स्तनों के उभार होने पर वे उन्हें ढंक सकती थीं[२२६]।

२२१—वही, पृ० ५५
२२२—वही
२२३—वही, पृ० ६६-६७
२२४—वही, पृ० ६७
२२५—वही, पृ० ७८
२२६—वही, पृ० ७८

भिक्षुओं के वस्त्र रंगने के रंग

कपड़े रंगने के लिए रंग कांड (रह्मानिया ग्लूटिनोसा, पीतचूर्ण (प्टेरोकार्पस इंडिकस) को गेरू और लाल पत्थर के चूरे से मिला कर बनाते थे । कपड़े रंगने के सस्ते रंग खजूर, लाल मिट्टी, लाल पत्थर के चूरे, हुरमुजी मट्टी और जंगली नाशपाती से तैयार कर लिए जाते थे[२२७] ।

नागरिकों के वस्त्र

इत्सिंग के अनुसार उच्च वर्ण के भारतीय जिनमें राज कर्मचारी भी होते थे सफेद कपड़ों का एक जोड़ पहनते थे । पर गरीब केवल एक ही वस्त्र पहनते थे । धोती आठ फुट लंबी होती थी और वह केवल कमर में लपेट ली जाती थी[२२८] ।

ठंडे प्रदेशों की वेश-भूषा

कश्मीर से ले कर मंगोल प्रदेशों तक जिनमें सूली (रूसी तुर्किस्तान), तिब्बती और तुर्की नस्ल की जातियां आ जाती थीं लोग चमड़े के कपड़े पहनते थे । सूती वस्त्रों का व्यवहार तो यहां के लोग यदा कदा ही करते थे। शीत की वजह से लोग कमीज और पाजामे पहनते थे । भिक्षु और साधारण जन लि-प नाम का एक विशेष वस्त्र पहिनते थे[२२९] । यह लि-प शायद संस्कृत रेफ से निकला है और इसके बनाने का निम्नलिखित तरीका दिया गया है—रेफ बनाने के लिए कपड़ा इस तरह काटा जाता था कि उसमें पीछा न पड़े और एक कंधा भी न ढंके । इसमें बांहे भी नही होती थीं और बायां कंधा ढंकने वाला भाग सकरा होता था । ठंडी हवा से बचने के लिए इसे दाहिनी बगल में बांध लिया जाता था। मोटा और गरम बनाने के लिए इस वस्त्र में रूई भर दी जाती थी । कभी कभी यह वस्त्र दाहिनी ओर सिला होता था और उसके सिरे पर बंद जोड़ दिये जाते थे । इत्सिंग ने पश्चिमी भारत में उत्तरापथ से आये भिक्षुओं को रेफ पहने देखा था। बिहार की गरम जलवायु की वजह से नालंदा में यह वस्त्र नही पहना जाता था। कुछ लोग कमीज भी पहनते थे, गो कि भिक्षुओं के लिए यह वस्त्र अविहित था[२३०]

बौद्ध भिक्षुओं के वस्त्रों के नाम

ताकाकुसु द्वारा इत्सिंग की यात्रा विवरण के उस भाग का अनुवाद, जहां भिक्षुओं के वस्त्र पहनने की विधि दी गयी है, ठीक तरह से समझ में नहीं आता । संघाटी चार हाथ चौड़ी होती थी जिसमें गले से पांच अंगुल हट कर एक चार अंगुल चौखूटा कपड़ा जोड़

२२७—वही, पृ० ७७

२२८—वही, पृ० ६७-६८

२२९—वही

२३०—वही, पृ० ६७-७०

दिया जाता था । इसके बीच में एक छेद होता था जिसके बीच से रेशमी अथवा सूती फीते बाहर निकाल कर छाती पर बांध दिये जाते थे[२३१] । उपवसन में भी इसलिए फीते लगे रहते थे कि वह जरा ऊपर खींच कर बांधा जा सके[२३२] । एकहरा अथवा दुहरा निवसन पांच हाथ लंबा और दो हाथ चौड़ा होता था और वह नाभि को ढंकते हुए पहना जाता था। इसके दोनों छोरों में तीन गांठे लगा दी जाती थीं और वे पीछे इस तरह खोंस ली जाती थीं कि वे आंखों से छिपी रहें । निवसन के ऊपर कमरबंद भी पहना जाता था[२३३] ।

कुरता

इस युग में आजकल का सर्व साधारण वस्त्र कुरते का पता भारतीय साहित्य से नहीं चलता, पर इसका उल्लेख लि-येन (मृत्यु ७८५-७९४ के बीच में) के संस्कृत चीनी कोश में हुआ है। चीनी शब्द चान् का जिसका अर्थ कमीज होता है संस्कृत पर्यायवाची कुरतउ दिया गया है[२३४] । कुरता की समानता पुर्तगाली कुरता-कबाया से की गयी है। पर यह निश्चित है कि पुर्तगालियों ने यह शब्द भारतीय भाषा से ही ग्रहण किया है। पुर्तगाली में कुरता कबाया के संयोग से यह पता लगता है कि कुरता और कबाया का बहुत नजदीक संबंध था। कुरता कबा, जो फारसी में एक लंबे गाउन जैसे वस्त्र का द्योतक है, के नीचे पहरा जाता था और यह दोनों वस्त्र मुगल पहरावे में अपना विशेष स्थान रखते थे । लेकिन लि-येन के कोश में उल्लिखित कुरतउ किस भाषा का शब्द था इसका अभी तक पता नहीं चला है । क्या यह तुर्की का शब्द है ? आशा है कि विद्वान् इस पर प्रकाश डालेंगे ।

जूते

गुप्त-युग में प्रचलित जूतों पर भी चीनी साहित्य से कुछ प्रकाश पड़ता है। फान-यु-त्सा-मिंग में चीनी शब्द हियु का जिसके माने बूट होते हैं पर्यायवाची शब्द कवशि दिया है पर यह शब्द संस्कृत साहित्य में नहीं आता । पेलियो के अनुसार यह शब्द जूते के लिए फारसी कफ्स से बहुत कुछ मिलता है जो मध्य एशिया की तुर्की भाषाओं में कापिश तथा किपिश शब्दों में जिनके माने जूते होते हैं बच गया है । इस शब्द की तुलना तिब्बती कब-श, जिसके माने धनी तिब्बतियों का भारतीय ढंग का जूता होता है, की जा सकती है। ले-फान-तांग्-सियाओ-सी (ब्रम्ह-चीन-वर्तमुख) में जो इत्सिग के चीनी कोश का एक उपोद्घात है, दो चीनी शब्द हियु और हिआइ जिनके अर्थ बूट और जूते होते हैं पर्यायवाची संस्कृत शब्द क्वनस और पूल दिये गये हैं । महाव्युत्पत्ति में बूट और जूतों के लिए उपानह, पादुका,

२३१—वही, पृ० ७२-७३

२३२—वही, पृ० ७३

२३३—वही, पृ० ७५-७६

२३४—बागची, द्व लेक्सीक संस्कृत-चिनुआ, टोम, २ पृ० ३५७, पैरिस १९२७।

पादवेष्टनिका पूल और मंडपूल (मुंडपूल) शब्द आए हैं । ले-फान-तांग-सियाओ-सी और महाव्युत्पत्ति के पूल एक ही हैं पर शवनस और पूल की व्युत्पत्तियों का ठीक ठीक पता नहीं चलता[२३५] । लगता है कि जूतों के लिए ऊपर आये शब्द या तो मध्य एशिया में बनाये गये या देशी भाषा से लिये गये । हमें पूल का तो पता नहीं लगता लेकिन महाव्युत्पत्ति के मुंडपूल का संबंध उत्तर भारत के मुंडे जूते से हो सकता है, जिसमें अलंकारिक चोटियां नहीं होतीं। पूर्वी युक्त प्रदेश में अब भी मुंडा जूता पहना जाता है । फान-युत्सा-मिंग के कवशि का प्राकृत रूपान्तर हमें बृहत् कल्पसूत्र भाष्य[२३६] के घुटने तक पहुंचने वाले खपुसा नाम के जूते में मिलता है। इस बात की काफी संभावना है कि खपुसा या कवशि ईरानी बूट थे जिन्हें शक और कुषाण इस देश में लाये

२७५ २७६ २७७ २७८

२७९ २८० २८१ २८२

२८३
२८४
२८५ ए०
२८५ बी०
२८५ सी०
२८६
२८७
२८८
२८९
२९० ए०
२९० बी०
२९१
२९२
२९३
२९४

दसवां अध्याय

मूर्तियों और चित्रों में गुप्त-युग की वेश-भूषा

गोली के अर्धचित्रों में दक्षिण भारतीयों के चौथी शताब्दी की वेश-भूषा का सुंदर चित्रण हुआ है । इस वेश-भूषा का वर्णन करने के पहले यह जान लेना आवश्यक है कि दक्षिण भारत के लोगों की चौथी शताब्दी के वेश-भूषा में और नागार्जुनीकुण्ड और अमरावती के अर्ध चित्रों में चित्रित दक्षिण भारत की वेश-भूषा में बहुत अंतर नहीं है ।

उच्च पदस्थ लोगों की वेश-भूषा

धोती—राजकुमार और उच्चवर्ग के लोग कमरबंद से बंधी धोती और पगड़ी पहनते थे । नागराज की मूर्ति में[1] तत्कालीन धोती पहनने का सुंदर चित्रण है (आ० २७१) जरा घुटनों के ऊपर तक पहुंचती धोती कमर के साथ एक फंदेदार कमरबंद से बंधी है । धोती का फंदेदार और छुट्टे सिरे एक चूड़ी से निकाल दिये गये हैं, एक दूसरी जगह एक राजकुमार की धोती का सिरा चुन कर आगे खुंसा है । कमर के साथ धोती एक फूंदनेदार उमेठी पेटी से बंधी है । पेटी के अंदर से कमरबंद निकाल कर पहना गया है । पगड़ी में पान के आकार का एक शीर्षपट्ट, जिस पर एक पक्षी बना है, लगा है (आ० २७२)[2] । अपने घर के एकान्त में दोनों सिरे आगे लटकते हुए कमरबंद के साथ लोग धोती पहनते थे (आ० २७३)[3] ।

सिपाहियों की वेश-भूषा

युद्ध यात्रा पर निकले सिपाही अपनी धोती का अगला हिस्सा मोड़ कर कमर में खोंस लेते थे, जिससे चलने में धोती लपटे नहीं । धोती के बंधन में मजबूती लाने के लिए कमरबंद भी पहनते थे (आ० २७४)[4] । इस कमरबंद के सिरे नाभि के नीचे लगी दो चूड़ियों के बीच से निकाल दिये जाते थे । अक्सर उनकी धोती घुटनों तक ही पहुंचती थी (आ० २७५)[5] । सिपाही पगड़ी भरी बांह के कंचुक और धोती भी पहनते थे (आ० २७६)[6] ।

एक जगह भगवान बुद्ध की पूजा करते हुए एक भक्त की पीठ दिखलाई गयी है जिससे

१—रामचन्द्रन्, बुधिस्ट स्कल्पचर्स फ्राम ए स्तूप नियर गोली विलेज, गुंटूर डिसट्रिक्ट, प्ले० ४ जे मद्रास, १९२९।

२—वही, प्ले० ९, ६

४—वही, प्ले० ५, बी०

५—वही, प्ले० ४, ६

६—वही, प्ले० ४

पता लगता है कि लोग लांग खोंसते थे । शीर्षपट्ट को यथास्थान स्थिर रखने के लिए पगड़ी के पीछे एक चौपतिया कोंढ़ा भी लगा दिखलाया गया है (आ० २७७)[७] ।

ब्राह्मणों की वेश-भूषा

अधिकतर ब्राम्हण धोती जिसका एक सिरा कमर के बगल में खुंसा होता था और वैकक्ष्य पहनते थे (आ० २७८)[८] ।

प्रतिहारी की वेश-भूषा

प्रतिहारी भरी बांह का कंचुक ऊंची टोपी और वैकक्ष्य पहने दिखलाया गया है (आ० २७९)[९] ।

स्त्रियों की वेश-भूषा

स्त्रियां पतली साड़ी पहने दिखलायी गयी हैं । एक जगह एक विदेशी स्त्री टोपी पहने दिखलायी गयी है (आ० २८०)[१०]।

२

गुप्त-युग की वेश-भूषा के जिन अंगों पर साहित्य से कम प्रकाश पड़ता है, उनका पुरातत्व से समाधान हो जाता है । इस युग की मूर्ति-कला अमरावती के अर्ध चित्रों की तरह हमें तात्कालिक सामाजिक जीवन के चित्र नही देती और इसका कारण इस युग की कला के उद्देश्य में परिवर्तन है, जिसमें अनुप्राणित हो कर वह अध्यात्मचिंतन की ओर उन्मुख हो जाती है । इससे उसमें वर्णनात्मकता की तो कमी हो जाती है, पर रसभावना कहीं अधिक बढ़ जाती है । पर भाग्यवश यह चिंतनशीलता मूर्तियों तक ही सीमित रही । इस युग के भारतीय चित्रकार तो अपने पुरानों की तरह चित्रों को तत्कालीन समाज और संस्कृति के प्रतिबिंब मानते रहे । अजंटा के भित्ति-चित्र गुप्त-युग के वस्त्रों के लिए कोश के समान हैं। नक्काशियां इन वस्त्रों पर कम मिलती हैं । चित्रों में सादे और सिले वस्त्र दोनों आते है ।

गुप्त-युग के सिक्के भी हमें तत्कालीन राजकीय वेश-भूषा के बारे में काफी मसाला देते हैं । इनमें अंकित राजाओं को छोटी शबीहों में भी वेश-भूषा का आकर्षक चित्रण हुआ है।

वेश-भूषा पर विदेशी प्रभाव

गुप्त-साम्राज्य के स्थापित होने के सैकड़ों वर्ष पहले तक उत्तर पश्चिमी भारत हिन्द-यूनानियों, शकों और कुषाणों के आधीन रहा । देशी और विदेशी संस्कृतियों के पारस्परिक संबंध और आदान-प्रदान से दोनों संस्कृतियां एक दूसरे का दृष्टिकोण समझ गयीं । मध्य एशिया का विशाल सांस्कृतिक क्षेत्र शकों और कुषाणों ने खोल कर भारतीय और चीनी

७—वही, प्ले० ६, ५
८—वही, प्ले० ४, एफ
९—वही, प्ले० २, ई
१०—वही, प्ले० ३, जी

संस्कृतियों का संपर्क स्थापित किया । गुप्त युग में भारतीय संस्कृति का बृहत्तर भारत में प्रसार होने से यह देश एशिया की बहुत सी जातियों का तीर्थ क्षेत्र बन गया। अजंटा के भित्ति-चित्रों में अपने जातीय पहरावों से अलंकृत, भारतीय, अफगान, तथा मध्य एशिया वासी बुद्ध की पूजा करते दिखलाये गये हैं। यात्रियों की इस रंग बिरंगी भीड़ से और अपने जातीय पहरावे पहरे हुए व्यापारियों के वस्त्रों से इस देश की वेश-भूषा पर प्रभाव पड़ना कुछ असंभव न था। बाणभट्ट की आख्यायिकाओं से भी इस बात का पता चलता है कि सातवीं शताब्दी में यहां कुछ सिले विदेशी वस्त्रों का व्यवहार होता था । इसका कारण भारतीय संस्कृति का ईरानी, अफगानी और चीनी संस्कृतियों से व्यापारिक और धार्मिक संबंध था। इसी संबंध की वजह से हम अजंटा के भित्ति चित्रों में भारतीय पहरावों के सिवाय पड़ोसी देशों के पहरावों का भी अध्ययन कर सकते है ।

अजंटा के भित्ति-चित्रों में बोधिसत्वों की रूढ़िगत वेश-भूषा

गुप्त-युग के सिक्के और अजंटा के भित्ति-चित्र ही हमारे गुप्त कालीन वेश-भूषा की जानकारी के प्रधान साधन है । अजंटा के भित्ति-चित्रों में राजे और राज पुरुष धोती और गहरे काम वाले मुकुट पहने दिखलाये गये हैं । पगड़ी तो शायद ही कहीं आती है । लेकिन सिक्कों में तो गुप्त राजे धोती, दुपट्टा, कंचुक और पायजामे पहने दिखलाये गये हैं। वे पगड़ी और कभी कभी टोपी भी पहनते थे, पर प्राय: वे अपने सिर नंगे रखते थे । अजंटा के भित्ति-चित्रों में और सिक्कों पर आये राजाओं की वेश-भूषाओं में जो फ़र्क आ जाता है, उसका कारण शायद भित्ति-चित्रों में बोधिसत्वों के देवत्व की कल्पना है। इन बोधिसत्वों की वेश-भूषा में हम मूर्ति रचना के मध्यकालीन नियमों का आरम्भ देखते है। अजंटा के भड़कीले मुकुट उन्हीं मध्यकालीन नियमों की देन मालूम पड़ते हैं, क्योंकि तत्कालीन साहित्य मे तो ऐसे मुकुटों के वर्णन नही से हैं । भड़कीले मुकुट और गहने पहने हुए अजंटा के बोधिसत्वों को हम तत्कालीन ऐसी ही विष्णु की मूर्तियों की श्रेणी मे रख सकते हैं और इसीलिए हम इनके वस्त्राभूषणों से उस युग के राजाओं के वस्त्राभूषणों की तुलना नहीं कर सकते । जैसा हम पहले देख चुके हैं, हर्षचरित के राजों का पहरावा कीमती कपड़ों का तो अवश्य होता था, पर वह चड़क भड़क से तो बहुत दूर रहता था । अजंटा के भित्ति-चित्रों और गुप्त सिक्कों पर राजाओं की वेश-भूषा में अन्तर के कारण सिक्कों पर आई वेश-भूषा का ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्व बढ़ जाता है । नीचे के पृष्ठों में सिक्कों और चित्रों में आई राजाओं की वेश-भूषा का वर्णन दिया जाता है ।

सिक्कों पर अंकित गुप्त राजाओं की वेश-भूषा

समुद्रगुप्त

साधारण भांति के सिक्कों पर समुद्रगुप्त अधबंहिया कंचुक अथवा (कोट) जिसके चाकदार नुकीले कोने नीचे लटक रहे हैं तथा जिसके आगे पर दोनों घुंडीदार

कसीदे का काम है पहिने हैं (आ० २८१)[११]। अधिकतर सिक्कों में तो कंचुक के दो ही नुकीले कोने होते है लेकिन एक सिक्के मे[१२] चारों कोने दिखलाये गये हैं। इस कंचुक की तुलना मथुरा से मिलीहुई एक शक योद्धा की मूर्ति के कंचुक से की जा सकती है[१३]। समुद्रगुप्त का पाजामा ढीला शलवार न हो कर चूड़ीदार है और इनके सिर पर सटकर बैठने वाली टोपी है। जूते अर्धजंघा किस्म के हैं।

साधारण भांति के कुछ दूसरे सिक्कों मे कंचुक पूरी बांह का है बांहें चपकी न हो कर ढीली हैं और कलाइयों पर मोड़ी हुई हैं (आ० २८२)[१४]। बूट जंघा किस्म का है और उसमें बटन लगे हैं।

साधारण भांति के तीसरी किस्म के सिक्कों में अधबहियां कंचुक का संयोग जांघिये के साथ है। घुटनों के नीचे तक पहुंचते जूतों के जोड़ पर फुल्ले लगे हैं (आ० २८३)[१५]। ये बूट साहित्य में आये खपुसा की तरह हैं।

व्याघ्र-पराक्रम भांति के सिक्कों में राजा मुड़ी आस्तीन वाला कसा हुआ कंचुक, बटा हुआ कमरबंद, घुटनों के ऊपर तक पहुंचती जांघिया और कुषाण कालीन पगड़ी, जिस पर शीर्षपट्ट लगा हुआ है, पहने है (आ० २८४)[१६]।

चंद्रगुप्त-कुमार देवी भांति के सिक्कों में चन्द्रगुप्त चाकदार जामा, जिसके गले पर घुंडीदार काम है और फूंदने लटक रहे हैं, पहनता है। जामा के मध्य में तुक-मेक की पंक्ति है (आ० २८५ ए० बी० सी०)[१७]। ब्रीचेस ऐसे पाजामे पर गरारीदार खपुसा किस्म के जूते हैं।

समुद्रगुप्त के बीणावादक भांति के सिक्कों से पता चलता है कि राज के थकाने वाले कामों से छुट्टी पा कर आराम के समय अथवा संगीत का आनंद लेते हुए गुप्त राजे सादी धोती और टोपी पहनते थे (आ० २८६)[१८]। अपने घरेलू जीवन में गुप्त राजे ऐसी सादी वेश-भूषा पसंद करते थे, इसका पता हमें चन्द्रगुप्त द्वितीय के आसंदिक सिक्कों से लगता है[१९]। यहां आसंदी पर बैठे राजा एक धोती पहने हैं।

११—एलन, केटलाग ऑफ दि कॉयन्स ऑफ दि गुप्त डाइनेस्टी एण्ड शशांक किंग ऑफ गौड, प्ले० १, ११, लंडन १९१४

१२—वही, प्ले० १, ५

१३—अग्रवाल, हेंड बुक ऑफ दि कर्जन म्यूजियम ऑफ आर्कियोलोजी, प्ले० २१ तथा जे० आई० एस० ओ० ए०, १९४०, पृ० २०९।

१४—एलन, वही, प्ले० १, ११-१३

१५—वही, प्ले० १

१६—वही, प्ले० १, १४-१७

१७—वही, प्ले० २, १४

१८—वही, प्ले० ३, १

१९—वही, प्ले० ५

चन्द्रगुप्त द्वितीय की वेश-भूषा

चन्द्रगुप्त द्वितीय के धनुर्धारी भांति के सिक्कों में राजा एक सटा कंचुक पहनते हैं जो कभी कभी कमरबंद से बंधा होता है। इसका फंदा बांयीं ओर होता था और उसी ओर इसके सिरे जमीन पर लहराते थे[२०] (आ० २८७)। धनुर्धारी भांति के दूसरे सिक्कों में राजा जांघिया और दाहिनी ओर फंदेदार कमरबंद पहनते हैं[२१]।

एक सिंह-पराक्रम भांति के सिक्के में राजा कंचुक, कमरबंद, धोती और चोटीदार फुल्ले वाला खौद पहने दिखाये गए हैं (आ० २८८)[२२]। एक दूसरी तरह के खौद में चोटी से ले कर पीछे तक घुंडियां बनी हैं (आ० २८९)[२३]।

अश्वारोही भांति के सिक्कों में चन्द्रगुप्त द्वितीय के पहरावे में धोती और कमरबंद, जिसके छोर पीछे फड़फड़ा रहे है, मुख्य हैं (आ० २९० ए० बी०)[२४]। पर कभी घोड़े पर सवार राजा कमरबंद से कसा कंचुक और धोती भी पहनते हैं (आ० २९१)[२५]।

एक तांबे के सिक्के में बरामदे में आराम से खड़े चन्द्रगुप्त द्वितीय को दोनों कंधों पर पड़ा दुपट्टा, जिसका एक छोर उनके बांयें हाथ में हैं, पहरे दिखलाया गया है (आ० २९२)[२६]।

कुमारगुप्त प्रथम

कुमारगुप्त प्रथम के राज्यकाल में जब गुप्त-साम्राज्य अपनी चोटी पर पहुंच चुका था, हम उस जातीय पहरावे की चलन देखते हैं जिसमें से कुषाण युग के पाजामें और पूरे बूट निकाल दिये गये थे। साधारणतः कुमारगुप्त प्रथम चाकदार कंचुक और घुटनों तक की धोती पहने दिखलाये गये हैं (आ० २९३)[२७]। कभी कभी यह धोती एड़ी तक पहुंचती थी[२८]। पगड़ी की जगह चूर्ण कुंतल देख पड़ते है। कमरबंद का फंदा बायीं ओर होता है और उसके सिरे उसी ओर लटका करते थे[२९]।

कुमारगुप्त के चांदी के सिक्कों में वेश-भूषा की दृष्टि से आकर्षक वस्तु चपकी

२०—वही, प्ले० ६, ८-९
२१—वही, प्ले० ६, १०-११
२२—वही, प्ले० ७, १८
२३—वही, प्ले० ८, ११
२४—वही, प्ले० ८, १३
२५—वही, प्ले० ९-१०
२६—वही, प्ले० १०
२७—वही, प्ले० १०, ९
२८—वही, प्ले० ११, ११
२९—वही, प्ले० १२, ४

टोपी[३०] अथवा सजी पगड़ी[३१] है जिसका छज्जा ऊपर मुड़ा है (आ० २९४)[३२]।

अजंटा के भित्ति-चित्र में राजाओं और उच्चपदस्थ राजकर्मचारियों की वेश-भूषा

अजंटा के भित्ति-चित्रों में राजाओं का पहरावा बड़ा सादा यानी केवल धोती दुपट्टे का होता था, लेकिन वस्त्रों के इस सादेपन को वे अपने रत्न जटित मुकुटों की कारीगरी से पीछे डाल देते थे। इस बात में संदेह है कि पेचीदी कारीगरी वाले मुकुट यथार्थ मे व्यवहार में लाये जाते थे अथवा नहीं, क्योंकि तत्कालीन साहित्य इनकी ओर सकेत नहीं करता, तथा तत्कालीन गुप्त सिक्कों की राजमूर्तियों की वेश भूषा में भी इनका पता नही चलता। संभव है सादी कारीगरी वाले मुकुट यथार्थ में राजाओं द्वारा पहने जाते हों, लेकिन बहुत पेचीदी कारीगरी वाले मुकुट तो देवताओं और बोधिसत्वों के लिए ही थे।

अजंटा के एक भित्ति-चित्र में राजा बिंबिसार एक लाल और नीली धारियों वाली धोती और झब्बेदार कमरबंद पहने हैं। इनकी पगड़ी अथवा टोपी एक सरपेच से, जिसके दोनों ओर टिकरे लगे हैं, सुसज्जित है (आ० २९५)[३३]।

अजंटा में चित्रित काशिराज बारीक धोती जो कमर पर पेटी से बंधी है पहने हैं। पटके का छोर जमीन पर लहरा रहा है। उनके बायें कंधे पर एक संकरा धारीदार दुपट्टा है। उनकी ऊंची टोपी फुल्लों और सितारों से सज्जित है (आ० २९६)[३४]।

एक दूसरी जगह राजा धारीदार धोती जिसका एक खाना मोटी धारियों से सज्जित है, पहरे हैं। उनकी धातु-निर्मित टोपी के चोटी और बगलों पर फुल्ले है (आ० २९७)[३५]।

विश्वंतर जातक के चित्रण में राजकुमार विश्वंतर राज महल के बाहर निकलते समय आधे बांह का कसा हुआ कंचुक (कूर्पासक), कमरबंद सहित धोती और कुलाहनुमा टोपी पहने दिखलाये गये हैं (आ० २९८)[३६]। उसी चित्र में राजमहल के अंदर ब्राह्मणों को दक्षिणा बांटते हुए विश्वंतर खूब कामदार मुकुट, छाती को ढंकता हुआ आधे बांह का कसा कंचुक (कूर्पासक) जो मोढ़ियों पर गोंट से सजा है, उमठे दुपट्टे से बना वैकक्ष्य, छोटी धोती तथा करधनी, जिसके फूंदने नीचे लटक रहे हैं, पहरे हैं (आ० २९९)।

एक दूसरे चित्र में घोड़े पर सवार एक राजकुमार एक पूरे बांहों वाला कंचुक,

---

३०—वही, प्ले० १२, ८
३१—वही, प्ले० १५, ६
३२—वही, प्ले० १६, ५
३३—हेरिंगम, अजंटा फ्रेस्कोज, प्ले० १, १, केव १७
३४—वही, प्ले० २५, २७
३५—वही, प्ले० २२, २४
३६—वही, प्ले० २२, २४

२९५
२९६
२९७
२९८

२९९

३००

३०१

३०२

३०३
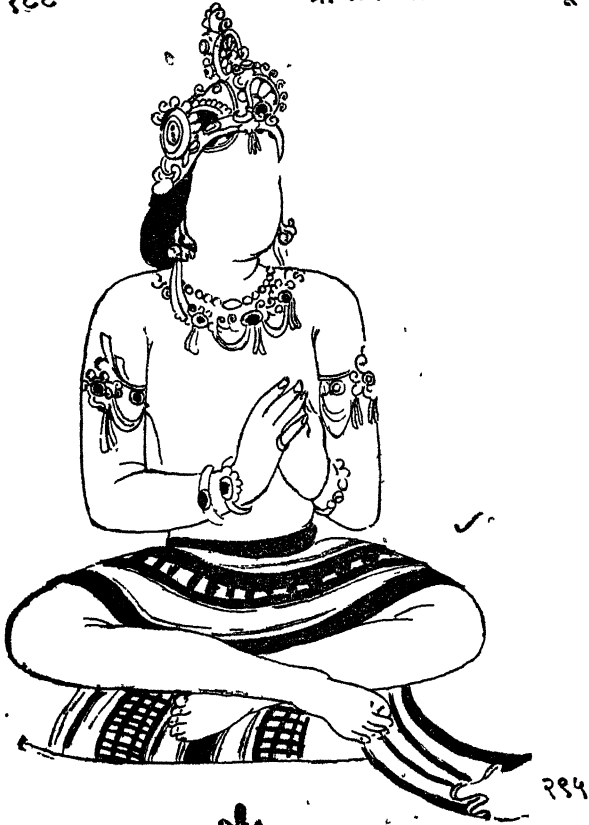
छोटी धोती और कमरबंद, जिसमें कटार खुसी है, पहने दिखलाया गया है (आ० ३००)[३७]।

बाग गुफा के एक भित्ति-चित्र में एक राजा धारीदार धोती और जड़ाऊदार चौखूटा मुकुट पहने है (आ० ३०१)। उसी चित्र में एक दूसरा राजा तिकोना मुकुट पहने दिखाया गया है (आ० ३०२)[३८]।

राजाओं की रूढ़िगत वेश-भूषा का सुंदर चित्रण पद्मपाणि के चित्र में हुआ है। इसमें आभूषणों की संख्या कम, पर आकर्षक है। धोती धारीदार है और उसके कुछ खानों में चारखाने बने हैं (आ० ३०३)[३९]। एक दूसरी जगह अवलोकितेश्वर करधनी से बंधी लाल हरी धारियों वाली धोती और जड़ाऊदार त्रिकूट मुकुट पहने दिखलाये गये हैं[४०]। एक तीसरी जगह एक राजा धारी और चारखाने दार धोती और पैरों के बीच लटकता दुपट्टा पहरे है तथा दीवार में लगे एक फंदे में अपना बायां हाथ डाल कर सुखपूर्वक खड़े हैं (आ० ३०४)[४१]। एक नागराज बारीक काम का मुकुट, तथा कमरबंद के कई फेटों से बंधी धोती पहने हैं[४२]। लेण १७ के एक भित्ति-चित्र में एक राजा भरे काम वाला मुकुट, धोती और करधनी पहने हैं और उनके कमरबंद के छोर नीचे लटक रहे हैं[४३]।

ईरानी बादशाह की पोशाक

दीवान पर बैठा एक ईरानी राजा एक हलके नीले रंग का कोट, जिसके मोरियों, गले और बाजुओं पर काम है, पहने है। यह कसीदे का काम जरा हलके रंग का है। टोपी में फीते लगे हैं और उसके जूते या मोजे कोमल ऊन के बने मालूम पड़ते हैं (आ० ३०५)[४४]।

अजंटा में आये मुकुट

१—मुकुट का आकार लंबोतरा है। इसके अलंकारों में हम वृत्त, घुंडियां अथवा मनके और फूल देख सकते हैं (आ० ३०६)[४५]। लेण, १७

२—अनेक चोटियों वाला पगड़ी से लगा मुकुट (आ० ३०७)[४६]। लेण, १७

३—दो पुरुषों के राजमुकुट—एक लंबोतरे रत्न जटित मुकुट में मोती की लड़ें लगी

३७—वही, प्ले० ८, १०

३८—वही, प्ले० ८, १०

३९—मार्शल, दि बाग केव्स, प्ले० बी०

४०—हॅरिंघम, वही, प्ले० १०, १२

४१—वही, प्ले० १०, १२

४२—ग्रिफिथ, अजंटा, भा० १

४३—हेरिंगम, वही

४४—याजदानी, अजंटा, भा० १, पृ० ५०, प्ले० ३९

४५—हेरिंगम, प्ले० १६, १८

४६—वही, प्ले० २९, ४८; २४, २६

हैं (आ० ३०८)[४७]। दूसरा मुकुट वृत्तों, अर्धचंद्रों और मोती की लड़ों से अलंकृत है और उसके बगल के उभरे अंश कटावदार हैं (आ० ३०९। लेण, १७

४—राजकुमार के त्रिभुजाकार मुकुट की नक्काशी में वृत्त, फुल्ले, खिले फूल इत्यादि देख सकते हैं। मुकुट फीतों से पीछे बंधा है[४८]। लेण, १

५—इस मुकुट का आकार टिकरेदार पट्टी की तरह है। पट्टी में लगे कई कलंगों में दो दिखलायी देते हैं। इनमें एक का आकार तीन आमलकों से मंडित कूट के समान है। फुल्ले से अलंकृत बीच का कलंगा त्रिभुजाकार है[४९]। लेण, १

६—त्रिभुज के दोनों पक्ष लहरियादार है। मुकुट पुष्पों और जड़ाऊ तख्तियों से सजा है और उसके दोनों ओर गोल तख्तियां हैं। मुकुट पीछे बंदों से बंधा है[५०]। लेण, १

७—मुकुट का आकार चिपकी टोपी जैसा है जिस पर एक पेचक और फूले कमल के आकार हैं (आ० ३१०)[५१]। लेण, २

८—ऊंची टोपी जैसा मुकुट। यह घुंडीदार वृत्तों और खिले पुष्पो से सुसज्जित है[५२]।

घुड़सवारों की वेश-भूषा

अजंटा की नं० १ लेण में एक घुड़सवार एक योगी से बातचीत करता हुआ बताया गया है (आ० ३११)[५३]। इसका पूरा बाहों वाला कंचुक काली बुंदकियों से सजा है। ये काली बुंदकियां हमें अगरुपंक से लिप्त बाणभट्ट द्वारा वर्णित कंचुक की याद दिलाती हैं[५४]। दुपट्टे के सिरे पीछे फड़क रहे हैं और बाल एक फीते से बंधे हैं।

अजंटा के सिंहल-युद्ध नामक चित्र में घुड़सवार आधी बाहों वाले कूर्पासक और जांघिया पहने हैं। इस कूर्पासक के गले और मुहरियों पर गोटें लगी मालूम पड़ती हैं (आ० ३१२)[५५]।

१७ नंबर की लेण के एक भित्ति-चित्र में दो घुड़सवार नुकीले गले वाले कंचुक पहरे दिखलाये गये हैं। गले पर छाया से पता लगता है कि शायद वह समूर का बना होगा। बायें ओर के अश्वारोही की टोपी का ऊपर मुड़ा छज्जा कटावदार है तथा उसके चोटी पर एक

४७—वही, प्ले० २६, २८
४८—वही, प्ले० ११, १३
४९—वही, प्ले० १४, १६
५०—वही, प्ले० १५, ७
५१—वही, प्ले० ११, ४९
५२—ग्रिफिथ, अजंटा
५३—हेरिंगम, वही, प्ले० ६, ८
५४—हर्षचरित, पृ० १६
५५—हेरिंगम, प्ले० १७, १९
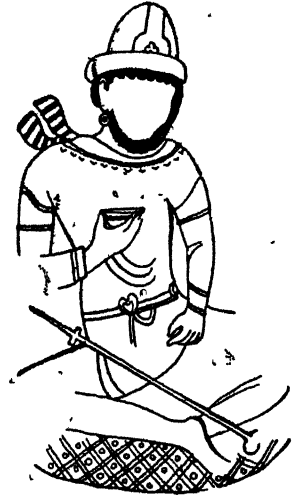
३०४
३०५
३०६
३०७

३०८ ३०९ ३१० ३११ ३१२ ३१३ ३१४ ३१५

फूंदना है । अपनी वेश-भूषा और आकृति से ये अश्वारोही ईरानी अथवा हूण विदित होते हैं (आ० ३१३)[५६]।

१७ नं० की लेण के एक दूसरे भित्ति-चित्र में आगे के दो घुड़सवारों में बायीं ओर का घुड़सवार पूरी बांहों वाला आगे से खुला कोट (वारबाण) पहने है । उसका साथी चाकदार कंचुक, पाजामा और पूरा बूट पहने है । इसके एक वस्त्र का जिसका कोना बाहर निकला है, क्या रूप था ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता (आ० ३१४)[५७]।

१७ नंबर की लेण के मातृपोषक जातक वाले भित्ति-चित्र में बायीं ओर एक घुड़सवार एक बहुत चौड़े कालर वाला हलके नीले रंग का पूरे बांह का कंचुक पहरे है । उसका फेंटा कसा हुआ और पैरों में बूट हैं (आ० ३१५)[५८]।

बाग के एक भित्ति-चित्र में सत्रह घुड़सवारों का एक समूह तरह तरह के कंचुक पहरे हैं (आ० ३१६)[५९]। घुड़सवारों का सरदार नीली बुंदकीदार पीला कंचुक पहने है, इसके दाहिने ओर एक दूसरा सवार फूलदार चारख़ाने का कंचुक पहने है । यह कहना कठिन है कि चारखानों का मतलब सकरपारेदार सीयनों से है अथवा अलंकार से । अगर इसका मतलब सीयन से है तो इस वस्त्र से शायद वारबाण का तात्पर्य हो सकता है । सरदार के बायें ओर दूसरा सवार एक गेरुए रंग का कोट और नीले रंग के सूक्ष्म अलंकारों से सज्जित पीली टोपी पहने है । आगे के तीन सवारों में एक सवार के कंचुक में रूढ़िगत पक्षियों जैसे अलंकार हैं । घुड़सवारों के तीसरी पंक्ति के चार सवारों में एक सवार कोणाकार गले वाला कंचुक और पाजामा पहरे है और इसका साथी चूंदरी का बना कंचुक (पुलकबंध) पहने है । पीछे के चार सवारों में एक सवार पूरी बांह का वारबाण पहने है । सवारों के सिर प्राय: नक्काशीदार रंगीन रुमालों से ढंके हैं । यह चित्र हमें बाणभट्ट द्वारा वर्णित श्रीहर्ष के घुड़सवारों की याद दिलाता है[६०]।

फीलवानों की वेश-भूषा

फीलवान प्राय: अधबहियां मिरजई (कूर्पासक), जिसमें कोणाकार गला और मोहरियों पर सादी गोटें लगी रहती थीं, पहनते थे (आ० ३१७)[६१]। पर कभी कभी वे पूरे बाहों वाला कंचुक भी पहनते थे (आ० ३१८)[६२]और उनके बाल एक रुमाल अथवा चपकी टोपी से ढंके

५६—वही, प्ले० २२, २४
५७—वही, प्ले० ८, १०
५८—प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम में प्रतिकृति
५९—मार्शल, वही, प्ले० एफ०
६०—हर्षचरित, पृ० २०२
६१—याजदानी, अजंटा, भा० २, प्ले० १४
६२—हेरिंगम, वही, प्ले० १९, २१

होते थे । बाग के एक चित्र में फीलवान सुनहरे धारीदार कपड़े से बनी जांघिया पहरे है[६३]।

१७ नं० कीलेण के एक भित्ति चित्र में सिपाही छोटी धोतियां पहने दिखलाये गये है (आ० ३१९)[६४] कभी कभी वे पट्टियों से अपने बाल बांध लेते थे (आ० ३२०) । १७ नं० की लेण में सिंहलयुद्ध वाले भित्ति-चित्र में सिपाही धोती अधबहियां मिर्जई (कूर्पासक) जो छाती को ढाकती है और जिसके गले और मोहरियों पर गोंट लगी है, पहनते हैं । उनके सिर रूमाल से ढंके होते हैं (आ० ३२१)[६५]।

पैदल सिपाहियों की वेश-भूषा

१७ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में एक असिवाहक अधबहियां, घुटनों तक पहुंचता हुआ तथा कमरबंद से बंधा चाकदार कंचुक पहने है (आ० ३२२)[६६]। उसी चित्र में एक कुंतल-ग्राहक भी अधबहियां कंचुक पहने है । इसका कमरबंद दो फेंटों में बंधा है (आ० ३२३) । १ नं० की लेण में एक सिपाही पत्रों की नकाशी से सज्जित कंचुक पहने है[६७]। उसी चित्र में एक ढाल-ग्राहक ने एक कंधों को ढांकती चादर, जिसमें एक गट्ठी लगी है, पहन रक्खा है ।

युद्धभूमि में राजाओं और सामंतों की वेश-भूषा

युद्धभूमि में, जैसा कि सिंहलयुद्ध नामक चित्र में दिखलाया गया है, राजे और राजकुमार अधबहियां मिर्जई (कूर्पासक) और सरपेंच से युक्त भारी भरकम पगड़ियां पहनते हैं[६८]।

शिकारी और बहेलियों की वेश-भूषा

१७ नं० की लेण में मातृपोषक जातक नाम के भित्ति-चित्र मे शिकारी और बद्धक छोटी धोती पहने दिखलाये गये हैं, और उनके बाल फीतों से बंधे है[६९]। उसी लेण के षड्दंत जातक नामक चित्र में बद्धक जो किसी जंगली जाति के मालूम पड़ते हे पेटीदार जांघिया जिसमें कटार खुंसी है, पहनते हैं (आ० ३२४)[७०]। पकड़े ग षड्दंत गज को दंडवत करते हुए एक बद्धक की चप्पल दर्शनीय है । यह चप्पल आधुनिक पठानी चप्पलों की तरह एड़ी पर एक तस्मे से बंधी है (आ० ३२५) । लंगोटी पहरे हुए तथा धनुषबाण और दंड से युक्त

६३—मार्शल, बाग, प्ले० जी०

६४—हेरिंगम, वही, प्ले० १७, १९

६५—वही, प्ले० १७, १८

६६—वही, प्ले० ३८, ४६

६७—याजदानी, अजंटा, १, प्ले० १४

६८—हेरिंगम, वही, प्ले० १७-१९

६९—वही, प्ले० २०, २२

७०—प्ले० २७, २९
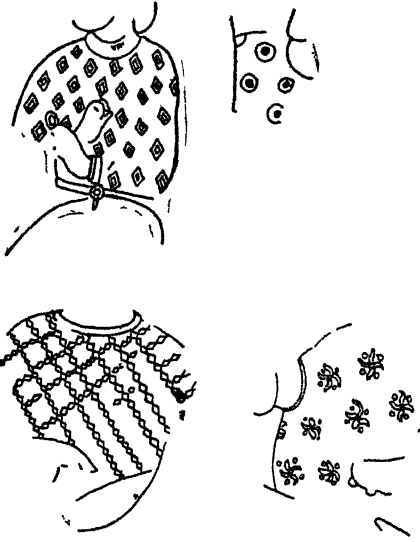
३१६ ३१७
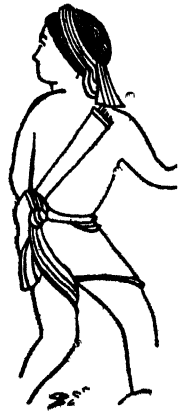
३१८ ३१९ ३२०

एक ठेठ जंगली आदमी भी उसी दृश्य में दिखलाया गया है (आ० ३२६)। शंखपाल जातक में दाहिनी ओर एक नाग को रस्सी से घसीटता हुआ शिकारी चारखानेदार लंगोटी पहने है (आ० ३२७)[७१]। इसी दृश्य में एक दूसरे शिकारी की धारीदार लंगोटी की धारियों पर तीर के फल अथवा उड़ती चिड़ियों के रूढ़िगत अलंकार बने हैं।

शिकारी की वेश-भूषा

उच्चपदस्थ मनुष्यों की शिकारी वेश-भूषा दूसरे ही तरह की होती थी। १७ नं० की लेग के एक भित्ति-चित्र में एक बाणसंधान करता हुआ जमीन पर खड़ा शिकारी कमर तक पहुंचता कंचुक जिसमें नीचे सुनहरी गोंट लगी है, सफेद पाजामा और बूट पहने है (आ० ३२८)। उसका साथी एक चाकदार कंचुक जिसके ऊपर किसी दूसरे वस्त्र का कोना देख पड़ता है पहने है।

कंचुकी की वेश-भूषा

१७ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में सांवले बदन का कंचुकी एक बटे कपड़े की चपटी पगड़ी पहने है। पूरे बांह वाले कंचुक के ऊपर तिरछे बल एक चादर, जिस पर सेहरे की तरह अलंकार बने हैं, पड़ी है (आ० ३२९)[७२]।

१ नं० की लेण में राजा का स्नान दिखलाते हुए एक भित्ति-चित्र में एक वृद्ध कंचुकी तिकोने गले वाला पूरे बांह का कंचुक, जिसका छोर इकट्ठा कर के कमरबंद में खोंस लिया गया है; और लाल धारी वाली धोती पहने है (आ० ३३०)[७३]।

मंत्रियों की वेश-भूषा

१७ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में राजमंत्री एक सफेद पूरी बांह का कंचुक और चादर पहने दिखलाये गये हैं। उसका सिर अनावृत है और वह खल्लका किस्म का पूरा बूट पहने है (आ० ३३१)[७४]।

शिबि जातक के एक चित्र में जहां इन्द्र को अपनी आंखें देने के बाद राजा घोर कष्ट में है एक राज मंत्री का चित्रण हुआ है। मंत्री एक अधबहियां मिर्जई (कूर्पासक) जिसकी मुहरियों पर वृत्त और चारखाने के जाल बने हैं और जिनमें मोती की झालरें हैं तथा छाती पर तिरछी तरह से चादर डाले हैं। गले में एक वैकक्ष्य भी है जिसके दोनों सिरे एक कांटे से फंसे हैं। बालों के चारों तरफ एक फूलों से सुशोभित पट्टी है (आ० ३३२)[७५]।

७१—याजदानी, वही १, प्लेट ११
७२—हेरिंगम, वही, प्लेट २५, २८
७३—वही, प्लेट १२, १४
७४—वही, प्लेट २५, २७
७५—वही, प्लेट ३९, ४७

सामंतों और उच्चवर्ण नागरिकों की वेश-भूषा

राजाओं का पहरावा तो सादा होता था पर उनके मुकुट काफी कामदार और रत्न जटित होते थे । सामंतों और उच्च पदस्थ नागरिकों के पहरावे भी इसी तरह सादे होते थे, पर उनमे मुकुट का अभाव होता था । ऐसा लगता है कि मुकुट पहनने के अधिकारी केवल राजे ही थे । सादापन होते हुए भी सामंत अपने कपड़े खूब सजा कर पहनते थे । हम नीचे इन वस्त्रों के पहरने के भिन्न भिन्न तरीकों की समीक्षा करेंगे ।

मीरपुर खास (सिंध) से मिले एक मिट्टी के अर्ध चित्र में गुप्त-युग के एक समृद्ध नागरिक की मूर्ति है (आ० ३३३)[७६]। उसने जांघिया के ऊपर धोती इस तरह से पहन रक्खी है कि उसका सामना तो घुटनों तक पहुंचता है पर पीछा एंडियों के जरा ऊपर । ढीले तौर से बंधे कमरबंद के दोनों मुक्त छोर बायीं ओर लटक रहे हैं । जांघिये के ऊपर धोती पहनने की इस युग में साधारण प्रथा थी । अजंटा की १७ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में भी एक नागरिक जांघिया के ऊपर एक छोटी धोती पहरे दिखलाया गया है । बायीं ओर सफाई से बंधे पटके का छोर नीचे लटक रहा है । वैकक्ष्य के दोनों छोर छाती पर एक मोती के कांटे से फंसे हैं[७७]।

ईडर रियासत के सामलाजी पहाड़ी से मिली एक बेसिर वाली शिव की मूर्ति में एक उच्च गुप्त नागरिक की वेश-भूषा अकित है । धोती घुटनों के नीचे तक पहुंचती है और उसका चुना हुआ छोर सामने लटकता है । कमर पर बंटे हुए कमरबंद के तीन फंदे हैं। कमरबंद के चुने हुए छोर दोनों ओर देख पड़ते हैं (आ० ३३४)[७८]। ईडर से मिली एक दूसरी शिव की मूर्ति एंड़ी तक पहुंचती कमर पेटी से बंधी है तथा एक ढीला कमरबंद जांघों को घेरे है (आ० ३३५)[७९]। जोधपुर रियासत के मंडोर नामक स्थान से मिले एक स्तंभ पर गोवर्धन-धारी कृष्ण एंड़ी तक पहुंचती धोती पहने हैं। कमरपेटी में एक घुमावदार कमरबंद सकर मुद्धी लगा कर दाहिनी ओर बंधा है (आ० ३३६)[८०]।

ग्वालियर रियासत के उदयगिरि के पांच नंबर के लेण में वराह अवतार के अर्ध चित्र में समुद्र की वेश-भूषा तत्कालीन भद्रपुरुष की सी है[८१]। धोती और कंधों को ढांकते दुपट्टे के सिवाय वह एक शीर्षपट्ट युक्त पगड़ी भी पहने है जो मथुरा की कुषाण मूर्तियों में आई पगड़ी का ध्यान दिलाती है । सारनाथ से मिली अवलोकितेश्वर की मूर्ति में हम धोती और

७६—ए० एस० आई० एन० रि०, १९०९-१०, प्ले० ३८, बी०

७७—हेरिंगम, वही, प्ले० ४१, ५५

७८—इनामदार, सम आर्कियोलोजिकल फाइंडस् इन ईडर स्टेट, प्ले० १, १, अहमदाबाद, १९३६

७९—वही, प्ले० २, ५

८०—ए० एस० आई० एन० रि०, १९०५-०६, पृ० १३६

८१—एन० रि० आर० डि० ग्वालियर स्टेट, १९२८-२९, प्ले० ५

३३०

३३१

३३२

३३३

३३४

३३५

३३६ ३१७ ३३८
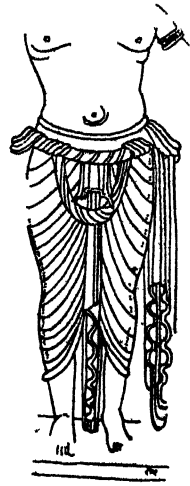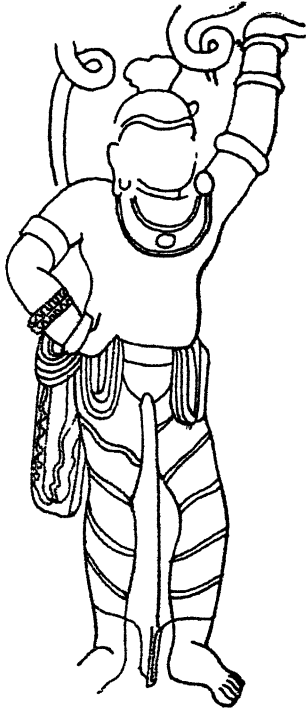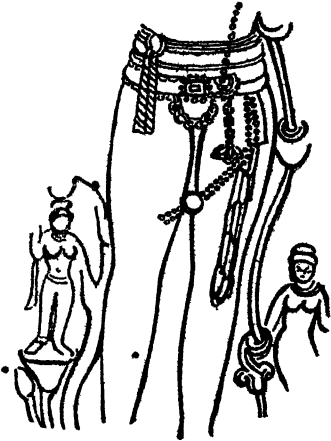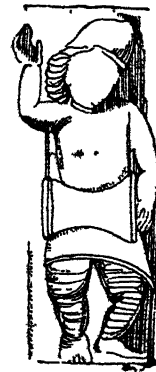
३३९ ३४० ३४१

कमरबंद पहनने के आकर्षक ढंग को देख सकते है। अवलोकितेश्वर के शरीर का निचला भाग एक चुनी धोती से, जिसकी चुन्नट पैरों के बीच में लटकती है, ढंका है। कमर से यह धोती एक रत्न जटित पेटी से बंधी है। कमर के ऊपर हम ढीले तरीके से बंधे एक रूमाल को देखते हैं जो दाहिनी बाहु के पास बंधा है और जिसके लहराते छोर दाहिने पैर के पास नीचे लटक रहे हैं (आ० ३३७)[८२]।

१७ नं० की लेण में सारिपुत्रप्रश्न नामक एक भित्ति-चित्र मे एक सामंत या राजा का जो उच्च पदाधिकारी बायीं ओर दिखलाया गया है, खड़ी धारियों वाली धोती और छाती को ढंकती हुई चादर जो बायें कंधे पर डाल दी गयी है पहरे है। इसकी चक्करदार छोटी पगड़ी के एक तरफ सोने का फुल्ला लगा है (आ० ३३८)[८३]।

सारनाथ से मिली सातवीं सदी के अंतकी मंजुश्री की मूर्ति घुटने के नीचे तक पहुंचती धोती, जिसका एक भाग चुन कर बायीं ओर खुसा है, पहरे है। एक भारी करधनी कमर में है। कमरबंद का एक बटा हिस्सा एक चूड़ी से निकाल कर दाहिनी जांघ पर लटका दिया गया है (आ० ३३९)[८४]।

वादकों की वेश-भूषा

गुप्तकालीन भूमरा के मंदिर में अर्ध चित्रों में एक नरसिंहा बजाने वाला कुलाहनुमा टोपी, जिसकी चोटी जरा आगे झुकी है, घुटनों के नीचे पहुंचता चाकदार कंचुक और पाजामा पहने है (आ० ३४०)[८५]। हुडुक्क बजाता हुआ एक दूसरा वादक चोटीदार टोपी, कामदार कोट और पाजामा पहने है (आ० ३४१)। एक गायक कूर्पासक और सकच्छ धोती पहने है (आ० ३४२)। एक शहनाई बजाने वाला हलकी चोटीदार टोपी पहने है (आ० ३४३)। ढोल बजाने वाले की टोपी गोल है (आ० ३४४) और नर्तक की टोपी झालरदार है (आ० ३४५)।

१७ नं० की लेण के एक भित्ति चित्र में आकाशचारी एक गंधर्व सफेद और भूरी रंग की धारियों वाली धोती और भूरी और हरी धारियों से सज्जित कमरबंद, जो धोती से मिलान खाता है, पहरे है[८६]। उसी लेण के एक दूसरे भित्ति-चित्र में एक दूसरा गवैया सफेद जमीन पर हरी लहरिया वाली धोती पहने है[८७]।

८२—साहनी, केटलाग ऑफ दि म्यूजियम ऑफ आर्कियोलोजी एट सारनाथ, प्ले० १३ बी०, पृ० ११८

८३—हेरिंगम, वही, प्ले० ४२, ५६

८४—साहनी, वही, पृ० १२०-१२१, प्ले० १३ सी०

८५—बेनर्जी, दि शिव टेंपिल एट भूमरा, प्ले० १०, कलकत्ता, १९२४

८६—हेरिंगम, प्ले० २, २

८७—वही, प्ले० २

एक वीणावादक का, जो अपनी वीणा कंधे पर रक्खे है, पहरावा आकर्षक है। वह औरों की तरह धोती, कमरबंद और पेटी पहने है। एक रूमाल गले से बंधा है। कमरबंद और रूमाल के छोर हवा में फड़फड़ा रहे हैं। दो जूड़ों में बंधे बालों में शेखरक लगे हैं (आ० ३४६)[८८]।

द्वारपालों की वेश-भूषा

गुप्तयुग के द्वारपाल या तो सिले हुए कपड़े अथवा अपने कपड़ों को संवार सुधार कर पहिनते थे। उदयगिरि के ६ नं० की लेण में द्वारपाल एक धोती, जिसका चुना हुआ भाग खुंसा है और जो नाभि के नीचे कमरबंद और सकर मुद्धी दार पेटी से बंधी है, पहरे है। कमरबंद के दोनों छोर कमर पर पंखे के आकार में सुसज्जित हैं (आ० ३४७)[८९]।

अजंटा के भित्ति-चित्रों में द्वारपाल प्रायः सिले कपड़े पहने दिखलाये गये हैं। नं० १ की लेण के एक भित्ति-चित्र मे द्वारपाल सफेद और काले चारखानों वाले कपड़े से बना पूरे बांह का कंचुक पहने है जो कमर से एक चौड़ी पेटी से बंधा है (आ० ३४७)[९०]। उसी लेण के एक दूसरे भित्ति-चित्र में एक द्वारपाल गोल टोपी (आ० ३४८)[९१] जिसका छज्जा उलटा हुआ है और एक कसी भर बांहों वाला हलके रंग का फूलदार कोट पहने हैं। याजदानी के मत से कोट का कपड़ा किंखाब हो सकता है[९२]। दूसरे नं० की लेण में एक भित्ति चित्र में द्वारपाल कमर के नीचे पहुंचता पूरे बांह का कंचुक, जिसके किनारों पर कसीदे का काम है, (आ० ३४९)[९३] पहने है।

राजभृत्योंकी वेश-भूषा

अजंटा के भित्ति-चित्रों में राजभृत्य सिले कपड़े अथवा सादी धोती पहने दिखलाये गये हैं। ७ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में बुद्ध के बायीं ओर खड़ा एक सेवक एक चारखानेदार धोती पहरे है (आ० ३५०)[९४]। १ नं० की लेण के अवलोकितेश्वर वाले प्रसिद्ध भित्ति-चित्र में फूलचंगेर लिए हुए सेवक गहरे भूरे रंग की धारियों वाला कंचुक और एक सुंदर मुकुट पहने हैं (आ० ३५१)[९५]। इसी लेण के एक दूसरे भित्ति-चित्र में एक सेवक घुमावदार नक्काशी से सज्जित कंचुक पहने है। अलंकार पट्टियों में बने हैं और उनमें फुल्ला

८८—वही, प्ले० ३६, ४०

८९—एन० रि० आ० डि० ग्वालियर स्टेट, १९२८-२९, केव ६, प्ले० बी०

९०—याजदानी, अजंटा, १, प्ले० १

९१—वही, प्ले० ३५

९२—वही, पृ० ४२, फु० नो० २

९३—याजदानी, अजंटा, भा० २, प्ले० २५, पृ० २५

९४—हेरिंगम, वही, प्ले० ४२, ५६

९५—वही, प्ले० १०, १२
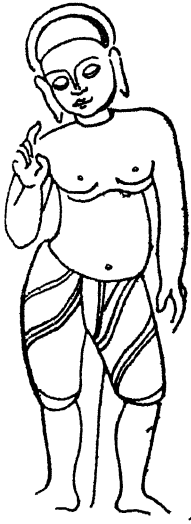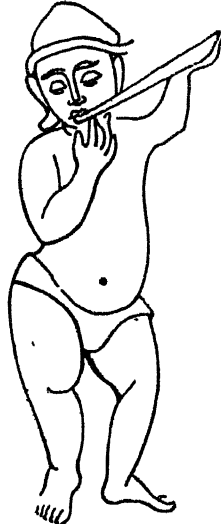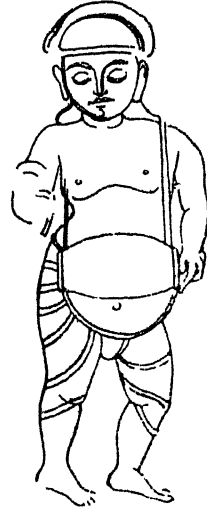
३४२ ३४३ ३४४ ३४५

३४६ ३४७

३४८ ३४९ ३५०
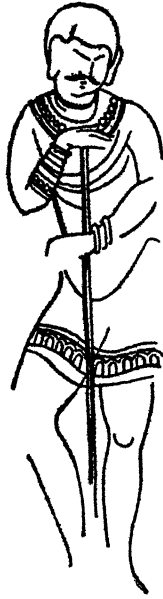
३५१ ३५२
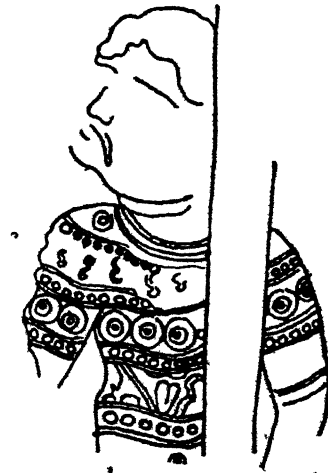
वस्त्र और सिबाड़े मुख्य हैं (आ० ३५२)[९६]। इसी लेण के एक तीसरे भित्ति-चित्र में फर्श पर बैठा हुआ सेवक एक रुपहले किमखाब, जिस पर गहरे मटमैले रंग से बना पुष्पालंकार है, से बना कंचुक पहने है (आ० ३५३)[९७]।

युद्ध अथवा यात्रा में अपने स्वामियों के पीछे चलते हुए सेवक समयानुकूल पहरावे पहरते थे। यथा सिंहलयुद्ध वाले चित्र में हाथी के पीछे बैठा हुआ एक सेवक, दुमचीदार खोद, कूर्पासक, और कमरबंद से बंधी एक छोटी धोती पहने है (आ० ३५४)[९८]।

स्नापकों की वेश-भूषा

१ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में स्नापक एक महीन वस्त्र की लाल धारियों वाली छोटी धोती पहरे है। उसका सिर एक रूमाल से ढंका है (आ० ३५५)[९९]।

साधारणजन की वेश-भूषा

अभी तक हम राजा, राव, सेवकों तथा सिपाहियों की वेश-भूषा का वर्णन करते आये हैं, हमने साधारण जनों की वेश-भूषा की ओर ध्यान भी नहीं दिया। यह मानने के काफी कारण है कि साधारणजन की वेश-भूषा आज की तरह धोती, दुपट्टा और पगड़ी वाली थी। १७ नं० की लेण के विश्वंतर जातक के एक भित्ति-चित्र में साधारण जन की वेश-भूषा का सुंदर चित्रण हुआ है[१००]। इस चित्र मे साधारण जन की वेश-भूषा तीन भागों में विभाजित की जा सकती है यथा—

(१) एक छोटी धोती और पूरे बदन को ढंकने वाली चादर (आ० ३५६)।

(२) पूरी धोती और किनारों पर गोंट लगा हुआ कमरबंद (आ० ३५७)।

(३) छोटी धोती और वैकक्ष्य (आ० ३५८)। इसी चित्र में विश्वंतर को प्रणाम करता हुआ एक दूकानदार धोती के ऊपर करधनी से लगा हुआ एक गमछा पहने है (आ० ३५९)। एक तेली जांघिया पहने है (आ० ३६०)।

ब्राह्मणों की वेश-भूषा

ब्राह्मण साधारणतः धोती और दुपट्टा पहनते थे (आ० ३६१)[१०१]। नं० १ की लेण के एक भित्ति-चित्र में एक ब्राह्मण कंटोप पहने दिखलाया गया है[१०२]। एक दूसरी जगह छाता लिये हुए एक ब्राह्मण वैकक्ष्य पहने है (आ० ३६२)[१०३]।

९६—याजदानी, अजंटा, भा० १, प्ले० ७ बी०, पृ० ९
९७—वही, प्ले० २४, बी०, पृ० ४१
९८—हेरिंगम, वही, प्ले० ४२, ५; ३७, ४३
९९—वही, प्ले० १२, १४
१००—वही, प्ले० ३९, ४८
१०१—वही, प्ले० ३९
१०२—याजदानी, अजंटा, भा० १, प्ले० ३५
१०३—हेरिंगम, वही, १३, १५

विदूषकों की वेश-भूषा

प्राचीन भारत में, जैसा कि संस्कृत नाटकों से पता लगता है, विदूषक राजाओं को अपनी बातों और कामों से हंसाने के लिए उनके साथ रहा करते थे । १ नं० की लेण के एक भित्ति चित्र में चेटी[१०४] से स्नेह प्रदर्शित करता हुआ विदूषक पूरे बांह का कंचुक और पटका, जिसके दोनों सिरे जुटे हैं, पहरे हैं। २ नं० की लेण के एक भित्ति चित्र में विदूषक धोती और दुपट्टा पहरे है[१०५] । उसी लेण के एक दूसरे भित्ति-चित्र में सांवलें रंग का विदूषक सितारों से सजा एक लंबा कंचुक, जो कमर पर एक पेटी से बंधा है, पहने है । उसका अधोवस्त्र धोती अथवा पाजामा हो सकता है। उसके पैरों में धारीदार बूट हैं (आ० ३६३)[१०६] । एक दूसरी जगह विदूषक कंचुक और पीठ और कंधों को ढांकता हुआ दुपट्टा पहने है। ये दोनों उसकी तोंद को पूरी तरह से ढंकने में असमर्थ हैं[१०७] । कभी कभी विदूषक गाते बजाते अथवा एक दूसरे से लपट झपट करते दिखलाये गये हैं। १ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र मे[१०८] (आ० ३६४) दो विदूषक दिखलाये गये हैं । बायी ओर वाला विदूषक फूलों से सजी एक गोल टोपी और धोती पहरे है । अपने साथी के गले में एक दुपट्टा डाल कर खींच रहा है। दूसरा विदूषक जो खींचा जा रहा है चपकी टोपी और धोती पहरे है। डा० अग्रवाल[१०९] एक विचारात्मक प्रबंध मे बतलाते हैं कि बाणभट्ट के युग में बहुधा उत्सवों पर लोग वृद्ध प्रतिहारियों के गले में रेशमी दुपट्टे डाल कर और उन्हें आगे खींच कर विनोद करते थे । मथुरा से मिली हुई गुप्तयुग की एक मट्टी की तख्ती में उपरोक्त दृश्य दिखलाया गया है। इसमें एक स्त्री विदूषक के गले में दुपट्टा डाल कर उसे घसीट रही है[११०] । डा० अग्रवाल नागानंद नाम के सातवीं शताब्दी के एक नाटक से एक उद्धरण देते हैं, जिसमें एक चेट भागते हुए विदूषक के गले में दुपट्टा डाल कर खींचते हुए दिखलाया गया है । इस तरह के कौतुक का स्त्रोत डा० अग्रवाल के मत से पालि साहित्य के चेलुक्खेप से है जो खुशी के अवसरों पर वस्त्र हिला कर आनंद प्रकट करने की क्रिया का नाम है । ऐसे अवसरों पर कंधों से दुपट्टे उतार कर लोग उन्हें हिलाते थे । भरहुत के अर्ध चित्रों में भी एक जगह चेलुक्खेप का अंकन हुआ है ।

गले में दुपट्टा डाल कर कौतुक करने की रीति का अंकन मथुरा की कुषाण कालीन

१०४—वही, प्ले० ४०, ५०

१०५—याजदानी, अजंटा, भा० २, प्ले० ११ बी०

१०६—वही, प्ले० २४, पृ० २२

१०७—वही, प्ले० ३५, पृ० २५

१०८—प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम की प्रतिकृति से

१०९—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, ए पैलेस सीन ऑन ए टेराकोटा प्लाक फ्रॉम मथुरा, जे० आई० एस० ओ० ए०, १९४२, पृ० ६९-७४

११०—वही, पृ० ७३

३५३ ३५४ ३५५

३५६ ३५७ ३५८ ३५९
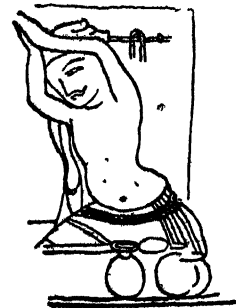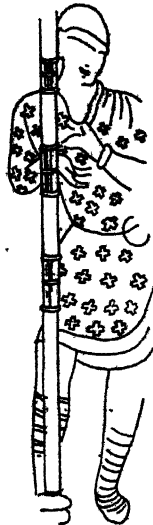
३६० ३६१ ३६२ ३६३ ३६४

मूर्तियों में भी हुआ है । मथुरा म्यूजियम में एक स्तंभ पर उत्कीर्ण नंद और सुदंरी की कथा में एक स्त्री विदूषक के गले में दुपट्टा डाल कर खींचती दिखलायी गयी है ।

१ नं० की लेण के एक दूसरे चित्र में धोती और कंचुक पहने विदूषक वीणा बजा रहा है । एक फूलों से सजी गोल टोपी पहरे चेटी मजीरा बजा रही है (आ० ३६५) ।

मदारी की वेश-भूषा

१ नं० की लेण के एक भित्ति चित्र में एक मदारी नीली और हरी धारियों के चारखाने वाली छोटी धोती, और छाती पर बंधा चारखाने दार दुपट्टा पहने है (आ० ३६६)[१११] ।

विदेशियों की वेश-भूषा

जैसा हम पहले कह आये हैं गुप्त-युग में भारत और एशिया के और देशों से विशेषकर चीन और ईरान से सांस्कृतिक सम्बन्ध बढ़ा- जिसका उदाहरण हम अजंटा के भित्ति-चित्रों में ईरानियों के चित्रों से पा सकते हैं । मध्य एशिया की भारतीय औपनिवेशिक संस्कृति का, जिस पर भारत और चीन दोनों देशों की स्पष्ट छाप है, अध्ययन हम मध्य एशिया के भित्ति-चित्रों और मंडल चित्रों से कर सकते हैं । इन चित्रों में अजंटा के चित्रों की स्पष्ट छाप है । यह स्पष्ट है कि भूस्थापकों और यात्रियों द्वारा इस देश की संस्कृति मध्य एशिया में पहुंची और वहां की संस्कृति यात्रियों , व्यापारियों तथा विजेताओं द्वारा इस देश में आयी। मध्य एशिया का प्रभाव हम इस युग में भारतीय वेश-भूषा पर साफ तरह से देखते हैं। यह प्रभाव कोई नगण्य नहीं था, क्योंकि अजंटा के भित्ति-चित्रों में बहुधा हम टोपियां, पाजामे, कंचुक और पूरे बूट देखते हैं जो इस देश में मध्य एशिया से आये ।

हम इस पुस्तक के आरंभिक अध्यायों में इस बात पर जोर देते आये हैं कि वैदिक युग में भी सिले वस्त्रों का व्यवहार होता था, पर इस देश की गरम आबहवा के अनुकूल साधारणतः लोग धोती, दुपट्टे और साड़ी जैसे सादे वस्त्र पहरते थे । हम यह भी कह आये हैं कि किस तरह ईसा पूर्व तीसरी सदी से ले कर चौथी सदी तक सिले कपड़े विशेषकर नौकर, चाकर, सिपाही, शिकारी और विदेशी इत्यादि ही पहनते थे । ऐसा लगता है कि ईसा की पहली शताब्दी में कुषाण राज्य की स्थापना के बाद मध्य एशिया के सिले वस्त्रों का प्रभाव इस देश में विशेष तरह से पड़ा और 'यथा राजा तथा प्रजा' की रीति के अनुसार लोग विदेशी वस्त्रों को भी अपनी वेश-भूषा में स्थान देने लगे । हमारे इस मत का पोषण गुप्त सिक्कों पर आयी राजाओं की वेश-भूषा से होता हैं । लेकिन अजंटा के भित्ति-चित्रों से पता लगता है कि दक्षिण भारत में सिले कपड़े नौकर, चाकर, सिपाही और दासियों इत्यादि तक ही सीमित रहे । अजंटा के भित्ति-चित्रों में कुछ विदेशियों की वेश-भूषा भी आई है, जिसका हम यहां प्रसंगवश वर्णन कर देना आवश्यक समझते हैं।

१११—याजदानी, वही, प्ले० १० बी०

मध्य एशिया वालों के वस्त्र

१७ वीं लेण के सारिपुत्र प्रश्न नामक एक भित्ति-चित्र में[११२] ईरानी नस्ल के बहुत से विदेशी एक साथ दिखलाये गए हैं । चित्र के बायें ओर एक विदेशी हाथी पर सवार कंचुक पहने है जिसके गले मुहरियों और आगे पर कसीदे का काम है । गले और मुहरियों पर गोटें लगी है, जिन पर दांते और चारखाने जैसे अलंकार हैं (आ० ३६७) । उसी चित्र में एक घुड़-सवार नुकीले गले वाला कंचुक पहने है, जिसके दोनों ओर दंतालकार से सजी पट्टियां लगी हैं। बाहों पर लगी पट्टियां सेहरे और पत्तियों से अलंकृत हैं (आ० ३६८) । इसी चित्र में एक सिपाही तिकोने गले वाला कंचुक पहने है जिसकी बांहों की पट्टियां शायद समूर की बनी थीं। इसका साथी सिपाही एक गोल गले वाला कंचुक पहने है (आ० ३६९) । एक मोटा ताजा विदेशी सेवक कुलाह और धारीदार पगड़ी पहने है । उसके कंचुक का गला कोणाकार है जिसके दोनों ओर दांतों और लहरियों से सुसज्जित पट्टियां लगी हैं। बाहों की पट्टियां भी दांते और बिंदुओं से सजी हैं । कमरबंद कई फेंटों से बंधा है (आ० ३७०) ।

२ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में एक विदेशी, जो शायद ईरानी नस्ल का है, फीतेदार गोल टोपी पहने है। उसके कंचुक और पाजामे कसे हैं और मोजे धारीदार हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि उसके गले में रूमाल बंधा था, क्योंकि इसके किनारे पीछे फड़फड़ाते दिखलायी देते हैं (आ० ३७१)[११३] । इसी लेण के एक दूसरे चित्र में एक विदेशी का अधो-वस्त्र डोरिया और हंस के अलंकारों से सुसज्जित है[११४] ।

अजंटा के तथा कथित राजदूत वाले दृश्य में सीरियन लोगों की वेश-भूषा

विदेशियों की वेश-भूषा में सब से विचित्र वेश-भूषा हमें अजंटा की पहली लेण के एक भित्ति चित्र से, जिसकी पहचान ईरानी प्रणिधि वर्ग-कह कर की गयी है, मिलता है । विद्वानों में इस चित्र की पहचान में काफी मतभेद है । कुछ लोग तो इस चित्र में सातवीं शदी के आरंभ में ससानी बादशाह खुसरो द्वारा चालुक्य राज पुलकेशी के पास भेजे गए प्रणिधि वर्ग का चित्रण देखते हैं । दूसरों का विचार है कि अजंटा के धार्मिक चित्रों में इस तरह के लौकिक चित्र का होना संभव नहीं है और इसलिए इस चित्र का संबंध किसी जातक से होना चाहिए। जो भी हो, इन दोनों विचार वालों ने यह माना ही है कि इस दृश्य में उपायन देते हुए लोगों की वेश-भूषा ठेठ विदेशी है । हमारी समझ में इस चित्र का एक जातक से संबंध होने की राय ठीक है । एक इसी तरह का अर्ध चित्र अमरावती में आया है जिसकी पहचान श्री शिवराम-मूर्ति ने वेस्सन्तर जातक के राजा बन्धुम वाले प्रकरण से की है[११५] । अमरावती केइस अर्धचित्र

११२—हेरिंगम, वही, प्ले० २२, २४

११३—याजदानी, अजंटा, भा० २, प्ले० ११, पृ० ९

११४—वही, प्ले० २०, पृ० १९

११५—शिवराममूर्ति, अमरावती स्कल्पचर्स इन दि मद्रास म्यूजियम, प्ले० २५, पृ० २३४-२३५,

३६५ ३६६ ३६७ ३६८ ३६९ ३७०

३७१ ३७२ ए० ३७२ बी० ३७३
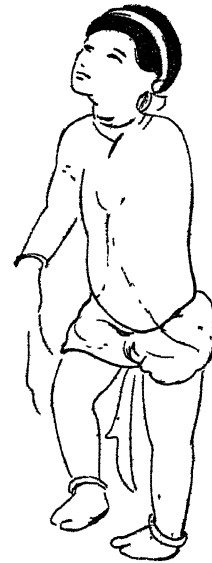
३७४ ३७५ ३७६ ३७७

में राजा सिंहासन पर बैठे हैं और उनके अगल बगल दो चामर-ग्राहिणियां और पीछे एक पंखे वाला है। बायीं ओर एक मोढ़े पर राजमहिषी दासियों से घिरी बैठी हैं। राजा के सामने कंचुक, पाजामा, कमरबंद और बूट पहने हुए चार विदेशी घुटने टेक कर उपायन भेंट कर रहे हैं। दाहिनी ओर सभासदों की भीड़ में हम इन विदेशियों के नेता द्वारा राजा को मोती की माला भेंट करते देख सकते हैं। राजद्वार के पास हम एक हाथी और घोड़ा तथा एक विदेशी को खड़े पाते हैं[११६]। अजंटा में भी तथाकथित ईरानी प्रणिधि वर्ग वाला चित्र अमरावती वाले अर्ध चित्र की प्रतिकृति है। अजंटा के भित्ति-चित्र में राजद्वार के पास एक विदेशियों का गिरोह है जिसमें से दो विदेशी उपायन लिए हुए राजसभा के अंदर दाखिल हो गए हैं। राजसभा सभासदों से भरी है और उनमें हम तीन विदेशियों को देख सकते हैं। सभा के बीच में सिंहासन पर राजा बैठे हैं और उनके पीछे पंखे और चमर लि हुए दासियां खड़ी हैं, बायी ओर और भी बहुत सी सेवक सेविकाएं हैं[११७]। अजंटा के इस चित्र का अमरावती के अर्ध चित्र से इतना मेल है कि हम यह कह सकते हैं कि दोनों दृश्य एक ही प्रकरण को व्यक्त करते हैं। यह संभव है कि इन दोनों दृश्यों की सजावट तत्कालीन राजसभाओं से ली गयी हो जिनमें समय समय पर विदेशी प्रणिधि वर्ग और व्यापारी उपायन ले कर आते थे। बहुत संभव है कि अमरावती के अर्ध चित्र के विदेशी सिकंदरिया के रहने वाले यूनानी व्यापारी हों जिनका दूसरी सदी में भारत के साथ घनिष्ट व्यापारिक संबंध था।

अजंटा के भित्ति-चित्र में[११८] सामने खड़ा हुआ विदेशी राजा को एक मोती की माला भेंट दे रहा है (आ० ३७२ ए० बी०)। याजदानी के कथनानुसार वह धारीदार कपड़े की बनी नुकीली टोपी और उसी कपड़े का बना कोट पहने है। लेकिन प्लेट से तो पता लगता है कि वह दो कपड़े यानी एक लंबी धारीदार कमीज और एक कोट, जिसका गला कोणाकार है, पहने है। इसके दाहिने हाथ के पास दो कबा बांधने के बंद हैं। उसके पहरावे में कमर पेटी नहीं है। कमर के नीचे की जमीन सफेद है और कोट कमीज की धारियों का पता नहीं चलता। यह संभव है कि सफेद जमीन पाजामे की द्योतक है। इन विदेशियों के

११६—याजदानी, अजंटा, भा० १, पृ० ४६-४८

११७—राजा बंधुम और उनकी कन्याओं की कथा (जातक, ६, २४७) इस तरह दी गयी है। बुद्ध विपस्सी के युग में बंधुमती के राजा बंधुम के पास एक राजा ने उपायन भेजे जिनमें सोने की कीमती माला और चंदन थे। राजा ने चंदन तो अपनी बड़ी कन्या को दे दिया और छोटी को सोने का हार। राजा की अनुमति से इन दोनों ने चंदन और हार विपस्सी को भेंट कर दिया। विपस्सी से बड़ी कन्या ने तो दूसरे जन्म में बुद्ध-माता होने का वर मांगा और छोटी कन्या ने यह वर मांगा कि वह दूसरे जन्म में गले पर सोने के हार से सहित जन्म ले और वह उसके बुद्धत्व प्राप्त करने तक उसके गले में बना रहे। विपस्सी के आशीर्वाद से दोनों की मनोकामनाएं पूरी हुईं।

११८—याजदानी, वही, पृ० ४६-४७

कोट और कमीज पहनने का पता बीच में खड़े हुए एक विदेशी की वेश-भूषा से ठीक ठीक चल जाता है । वह खुले गले का एक हरा कबा पहने है । खुले गले के बीच से कमीज की धारियां साफ साफ देख पड़ती हैं । घुटनों तक पहुंचते हुए कोट में जहां उसमें चाक पड़ जाती है, उसके बीच से हम घुटनों को ढकते हुए नीचे जाते पाजामे को देख सकते है । टोपी की चोटी पर एक फूदना है । उपायन की थाली लिए हुए तीसरे विदेशी के पहरावे मे कोई खास बात नही है । दाहिनी ओर द्वार के भीतर घुसते हुए विदेशी दिखलाये गये हैं । सामने वाला विदेशी तो साधारण चोटीदार टोपी, घुटनों तक पहुचता कबा, पाजामा और नोकदार चोटी वाले बूट पहने है । उसकी दोहरी पेटी से तलवार लटक रही है ।

अब प्रश्न उठता है कि उपरोक्त विदेशी किस देश के वासी है ? अजंटा के इस भित्ति-चित्र में ईरानी प्रणिधि-वर्ग का अंकन मानने वालों की राय से तो ये ईरानी होने चाहिएं। याजदानी इनको तुर्की नस्ल का मानते हैं[११९] । लेकिन इन विदेशियों की शारीरिक गठन, जिसमें सीधी समुन्नत घोणा, सुविभाजित अंगकद और खरहरी दाढ़ी मुख्य है, मध्य एशिया के निवासियों के शारीरिक गठन से जिसका अजटा के चित्रों में अनेक बार प्रदर्शन हुआ है, नहीं मिलती। ये ईरानी जरा भारी शरीर वाले होते थे और उनके बाल बड़े गज्झिन होते थे। उनके कपड़े भी मोटे ऊनी कपड़ों के बने होते थे । इन सब बातों को देखते हुए यह तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि तयाकथित ईरानी प्रणिधिवर्ग वाले चित्र में आये विदेशी ईरान अथवा मध्य एशिया के निवासी तो नहीं हैं । इनके नुकीले अंग शायद इनकी शामी नस्ल के द्योतक हैं। इन्हें जल्दी में हम अरब भी कह दे सकते हैं ; क्योंकि पश्चिमी भारत के साथ अरबों का व्यापारिक संबंध बहुत प्राचीन काल से चला आया है । लेकिन ठीक तौर से विचार करने पर हमें पता लगता है कि यह संभव नहीं है क्योंकि अरब पहरावा जैसा कि हमें प्राचीन अरब सिक्कों और मूर्तियों से पता लगता है एक ढीली कमीज और सिर पर बंधे रूमाल का था, और प्राचीन अरब चोटीदार टोपी कभी नहीं पहनते थे। इन विदेशियों के नस्ल पर प्रकाश डूचरा यूरोपास से मिले एक भित्ति-चित्र में कोनोन और उसके परिवार की पोशाक से पड़ता है। डूचरा यूरोपास मध्य अफ्रात नदी के दाहिने किनारे पर, अंतिओख और सेलूकिया के बीच में सिल्यूकस द्वारा २८० ई० पू० में निर्मित मेसीडोनियन उपनिवेश था जो बाद में क्रमशः रोमनों, पार्थियनों और ईरानियों के अधिकार में आता रहा[१२०] । कोनोन और उसके परिवार की पोशाक में चोटीदार टोपी पूरे बांह की लंबी कमीज और जूते हैं। कोनोन की दाढ़ी खसखसी है और उसके शरीर के अवयव शामिओं की तरह नुकीले । श्री रोस्तोवत्जेफ[१२१]

११९—वही, पृ० ४७

१२०—प्रोसीडिंग्स् ऑफ दी ब्रिटिश एकेडमी, भा० १९, पृ० ३१९

१२१—दि सोशियल एंड एकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ दी हेलेनिस्टिक वर्ल्ड, भा० २, प्लेट० ९७ ऑक्सफोर्ड, १९४१

३७८
३७९
३८०
३८१
३८२
३८३
३८४
३८५
३८६

भा० २८
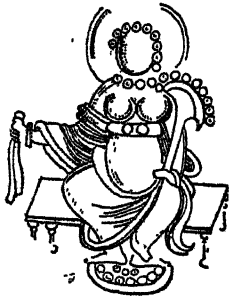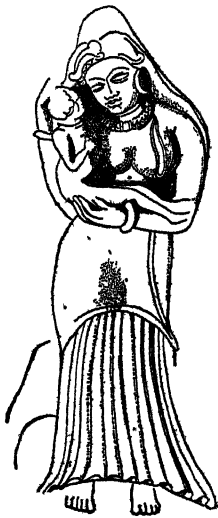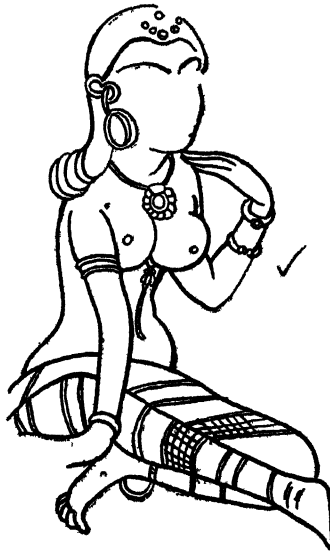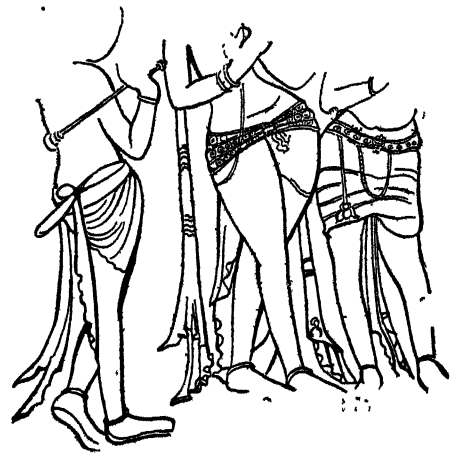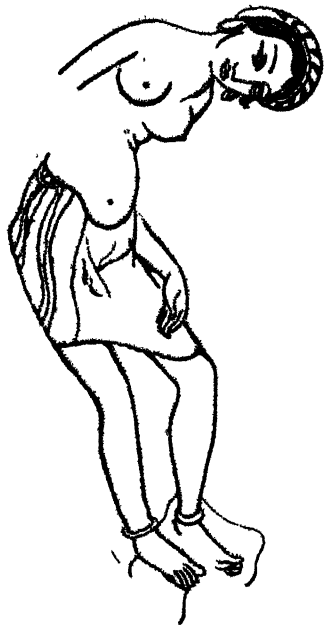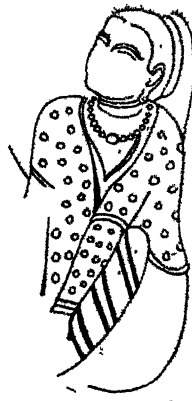
इस पोशाक को यूनानी-सीरिया (शायद कुछ ईरानी पुट के साथ) का मेल मानते हैं। अजंटा के तथाकथित ईरानी प्रणिधिवर्ग वाले चित्र में विदेशियों की पोशाक कोनोन की उपरोक्त पोशाक से बहुत कुछ मिलती है। लेकिन डूचरा यूरोपास के भित्ति-चित्र पहली शताब्दी ई० स० के हैं और अजंटा के लेण नं० १ के चित्र सातवीं शताब्दी ईस्वी सन् के। समय के इस बड़े अंतर के कारण हम दृढ़तापूर्वक किसी राय पर नहीं पहुंच सकते। फिर भी यह तो निश्चित है कि पूर्वी देशों में पांच सौ वर्षों के बीच पहरावे में कोई गहरे फेरफार होने की संभावना कम है। इसलिए हमें यह कहने में कोई झिझक न होनी चाहिए कि अजंटा में तथाकथित ईरानी प्रणिधिवर्ग वाले चित्र में सीरिया अथवा शाम के व्यापारी थे।

विदेशी टोपियों का वर्णन हम विदेशी वेश-भूषाओं के साथ साथ करते आये हैं, फिर भी कुछ खास तरह की टोपियों का वर्णन हम नीचे कर देते हैं, यथा:—

(१) एक कुलाहनुमा टोपी जिसकी चोती आगे झुकी है और जिसके दोनों फटके ऊपर उठे हैं (आ० ३७३)[१२२], (२) लट्टूदार चोटी और लहरियेदार किनारे वाला खौद (आ० ३७४), (३) दुमचीदार कुलाह (आ० ३७५)।

बच्चों का पहरावा

अजंटा के भित्ति-चित्रों में राजा रानियों की सेवा करते और खेलते हुए बच्चे दिखलाये गये हैं। १७ नं० की लेण के माता पुत्र नाम के प्रसिद्ध भित्ति-चित्र में पुत्र धारीदार धोती और छन्नवीर पहने है। बालों को यथा स्थान रखने के लिए फीतों का उपयोग हुआ है (आ० ३७६)[१२३]। उसी लेण में एक दूसरी जगह एक लड़का धोती और पटका पहने दिखलाया गया है और उसके बाल फीते से बंधे हैं (आ० ३७७)[१२४]।

उसी लेण के एक दूसरे चित्र मे (आ० ३७८)[१२५] एक हाथ में पीकदान लिए हुए लड़का जांघिया और कंचुक पहरे है और उसके बाल फीते से बंधे हैं। नं० १ की लेण के एक गुफा चित्र में एक बालक कभी जांघिया, पूरे पैर के बूट और फूलों से सजी टोपी पहरे है (आ० ३७९)[१२६]। उसी चित्र में एक लड़का छन्नवीर और कमरपेटी पहने है (आ० ३८०)

प्रतीत होता है कि बच्चे बड़े चाव से टोपी पहरते थे। एक भित्ति चित्र में लड़का

१२२—ग्रिफिथ, अजंटा, भाग १

१२३—हेरिंगाम, वही, प्ले० ६, ७.

१२४—वही, प्ले० ५, ६.

१२५—वही, प्ले० ३, ४

१२६—प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम की एक प्रतिकृति से

चक्करदार टोपी पहने दिखलाया गया है[१२७]। लड़के धारीदार बूट अथवा मोजे भी पहनते थे[१२८]।

गुप्त-युग में रानियों और दूसरी स्त्रियों की वेश-भूषा

समुद्रगुप्त के साधारण भांति के सिक्कों के पट पर लक्ष्मी देवी एडी तक पहुंचती साड़ी और घुटने तक पहुंचता पूरे बांह का कंचुक पहनती हैं, स्तनों के नीचे एक पट्ट बंधा है जिसकी मुद्धी बायीं ओर दिखलाई गयी है। उनके कंधे चादर से ढंके है (आ० ३८१)[१२९]। धनुर्धारी भांति के सिक्कों में लक्ष्मी धोती और अधबहियां कूर्पासक पहने दिखलायी गयी हैं (आ० ३८२)[१३०]। कोसम से मिली एक गुप्तकालीन शिवपार्वती की मूर्ति में एक जालीदार टोपी, जिसके दोनों ओर फुल्ले हैं, पहने दिखलायी गयी है (आ० ३८३)[१३१]।

देवगढ़ से मिली नंद-यशोदा की मूर्ति में यशोदा का पहरावा आजकल के बंजारों की पोशाक जैसा है। वह सिर को ढंकती हुई एक चादर, भरी बांह का करता जिसके बायीं ओर घुंडी है और लहंगा पहने दिखलायी गयी है (आ० ३८४)[१३२]। यह वेश-भूषा भारतीय कला में सर्व-प्रथम प्रदर्शित की गयी है और बहुत सम्भव है कि जाट इस पहिरावे को पांचवी या छठी शताब्दी में मध्य एशिया से यहां लाये। इतने दिन बीत जाने पर भी जाट, बंजारे लंबाड़ी इत्यादि इस पहिरावे को अपनाये हुए हैं।

अजंटा के भित्ति-चित्रों में रानियां एंड़ी तक पहुंचती साड़ी या धारीदार घघरो पहनती हैं (आ० ३८५)[१३३]। दर्पण में अपना मुख देखती हुई एक राजकुमारी तीनलड़ी करधनी और सुनहरे किनारों वाले कमरबंद से बंधी साड़ी पहने है (आ० ३८६)[१३४]। उसकी एक सेविका पेटी से बंधी साड़ी पहने हुए है और उसके कमरबंद के छोर पीछे लटक रहे हैं। इसी चित्र में एक चामरग्राहिणी की साड़ी की सिलवटें बड़ी सुंदरता से बतायी गयी हैं। उसमें कमरबंद की मुद्धी पीछे बंधी है। एक दूसरी जगह एक रानी धारीदार घघरी और टोपी अथवा पगड़ी पहने है (आ० ३८७)[१३५]।

कभी कभी अजंटा के भित्ति-चित्रों में रानियां और कुलीन स्त्रियां सिले कपड़े भी

१२७—हेरिंगम, वही, प्ले० ३, ७

१२८—याजदानी, वही, भा० १, प्ले० २४ बी०, पृ० ४१

१२९—एलेन, वही, प्ले० १, १–९

१३०—वही, प्ले० ७, १

१३१—ए० एस० आई० एन० रि०, १९१३-१४, प्ले० ७०, ६

१३२—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, गुप्त आर्ट, प्ले० १, २, लखनऊ १९४७।

१३३—हेरिंगम, वही, प्ले० ३, ४

१३४—वही, प्ले० ५, ६

१३५—वही, प्ले० २७, २९, केव १७

पहने दिखलायी गयी हैं। १ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में एक रानी महीन कपड़े की बनी बुंदकीदार चोली पहनती है[१३६]। उसी लेण के पद्मपाणि वाले चित्र में एक राजकुमारी झीनी मलमल की चोली और[१३७] एक छोटी घघरी जिसके खानों में पक्षी और सीढ़ियां बनी हैं और जिसके एक मध्य के खाने में लहरिया बनी है, पहने है। रानी के सिर पर कामदार टोपी अथवा मुकुट है (आ० ३८८)[१३८]। एक दूसरी जगह एक रानी हल्के रंग का कंचुक, जिसके किनारेपर जवाहिर बने हैं, पहने है (आ० ३८९)[१३९]। १ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में एक चौकी पर बैठी रानी धारीदार घघरी स्तनपट्ट और चादर पहने है (आ० ३९०)[१४०]। उसी लेण के एक दूसरे चित्र में एक स्त्री धारीदार घघरी, जिसके ठीक बीच में फुल्लों से सजी एक गोट लगी है, पहने है (आ० ३९१)[१४१]। २ नं० की लेण के एक भित्ति चित्र में एक स्त्री महीन कपड़े की चोली और किनारेदार चंडातक पहने है (आ० ३९२)[१४२]।

दासियों की वेश-भूषा

जैसा हम ऊपर देख चुके हैं रानियों और उच्चकोटि की स्त्रियों की वेश-भूषा गहनों को छोड़ कर काफी सादी होती थी, पर आश्चर्य की बात तो यह है कि दासियों की वेश-भूषा में हम काफी चड़क भड़क पाते हैं। दासियां मामूली तौर से साड़ी कमरबंद और कमरपेटी पहनती हैं[१४३], पर अनेक दासियां कसीदे के काम की हुई घघरियां और कंचुक भी पहनती हैं।

अजंटा के चित्रों में दासियां अक्सर घुटनों तक पहुंचता पूरे बांह का सफेद कंचुक पहनती हैं (आ० ३९३)[१४४]। वे कभी कभी दुहरे जाकेट भी पहनती हैं[१४५]। १ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में एक स्त्री कंचुक के ऊपर जाकेट पहने है जो चूंदरी से बना है और सामने से खुला है, पूरे बांह का हरा कंचुक आगे से बंद है (आ० ३९४)। उसी लेण के एक दूसरे चित्र में एक दासी बुंदकीदार छोटे बांह की चोली पहरे है जिसका आगा घुटनों तक पहुंचता है और जिसके ऊपर एक चूंदरी का टुकड़ा पीठ पर बंधा है। इसका सिर रूमाल से ढका है (आ० ३९५)[१४६]। उसी लेण के एक चित्र में एक चामरग्राहिणी नीचे गले का

१३६—याजदानी, वही, भा० १, प्ले० १७, पृ० २१

१३७—वही, प्ले० २४; हेरिंगम, वही, प्ले० ११, १३, चित्र में चोली नहीं दिखाई देती।

१३८—वही

१३९—याजदानी, वही, भा० १, प्ले० ६ बी०

१४०—हेरिंगम, वही, प्ले० १४, १६

१४१—वही, प्ले० १५, १७

१४२—याजदानी, वही, भा० २, प्ले० २१, पृ० २०

१४३—हेरिंगम, वही, प्ले० ५, ६, लेण १७

१४४—याजदानी, वही, भा० १, प्ले० ६ की

१४५—वही, प्ले० १४

१४६—वही, प्ले० १७

डोरीदार फ्राक की तरह कपड़ा पहने है (आ० ३९६)[१४७]। उसी लेण के एक दूसरे चित्र में एक चामरग्राहिणी हंस दुकूल का बना कपड़ा पहने हुए है (आ० ३९७)[१४८]। पद्मपाणि वाले चित्र में बोधिसत्व के पीछे खड़ी हुई दासी जो विदेशी नस्ल की मालूम पड़ती है, लंबा कंचुक और विचित्र तरह की कुलाहनुमा टोपी जिसके चार कसीदेदार फटके ऊपर मुड़े हुए है, पहने है (आ० ३९८)[१४९]। चामरग्राहिणियां साड़ी भी पहनती थीं। १ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में राजसिंहासन के नीचे एक चामरग्राहिणी साड़ी, जिसका एक हिस्सा मोड़ कर उसने कंधे पर चादर की तरह डाल रक्खा है, पहने है[१५०]। नं० १७की लेण के एक भित्ति-चित्र में एक चामरग्राहिणी गले में रूमाल, धारीदार जांघिया और दुपट्टा, जिसके छोर लहरा रहे हैं, पहरे है[१५१]। अजंटा के काशिराज की सभा वाले चित्र में राजा के पीछे खड़ी चामर-ग्राहिणी एक फूल से सुशोभित ऊंची टोपी पहने है (आ० ३९९)[१५२]। उसी चित्र में दायीं ओर मंत्री के पीछे एक चामरग्राहिणी कुलाहनुमा टोपी और छाती ढंकती हुई एक पतली चादर पहने है (आ० ४००)।

मध्यवर्ग की स्त्रियों की वेश-भूषा

चामरग्राहिणियों की वेश-भूषा के उपरोक्त वर्णन से यह न समझ लेना चाहिए कि यह वेश एक खास तरह की सेविकाओं तक ही सीमित था। यह वेश-भूषा हर तरह की राज सेविकाओं में प्रचलित था और विचार करने पर यह पता चलता है कि गुप्त-युग में यही मध्य वर्ग के स्त्रियों की वेश-भूषा थी। राजमहल से संबंधित स्त्रियों की वेश-भूषा नीचे दी जाती है:—

। नं० २ की लेण में चंपेय जातक के एक चित्र की पृष्ठिका में खड़ी एक स्त्री पतले तथा फूलदार कपड़े का बना कंचुक पहने है। दुपट्टे पर के अलंकार का प्रतिकृति में तो पता नहीं चलता पर मूल चित्र में बिल्कुल स्पष्ट है[१५३]।

ईरानी नस्ल की दासियां

१ नं० की लेण के एक मौज मजे के दृश्य में दाहिनी ओर खड़ी एक दासी अपने स्वामी को शराब पिला रही है। वह एक समूर के किनारे वाली लाल टोपी, जिसकी चोटी में पर लगे हैं, पहरे है। उसका पूरे बांह का लंबा कंचुक लाल रंग का है और उसके गले, मोहरियों और

१४७—वही, प्ले० १७
१४८—वही, प्ले० ,१८
१४९—वही, प्ले० २८ ०, लेण १,
१५०—हेरिंगम वही, ले० ३८
१५१—वही,गले०,, प्ले० ९, ११
१५२—याजदानी, वही, प्ले० २७
१५३—याजदानी, वही, भा० १, प्ले० ३४ बी०, पृ० ४१ एफ० एन० १, केव २

३९६ ३९७ ३९८ ३९९ ४००
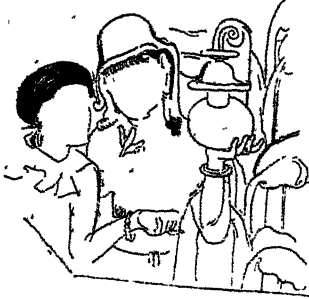
४०१ ४०२ ४०३ ४०४ ४०५
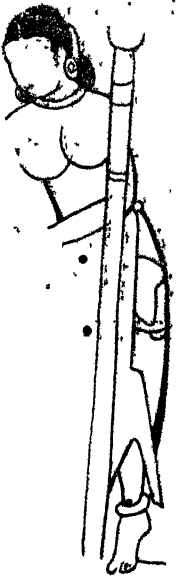
४०६ ४०७ ४०८ ४०९

कंधों पर कसीदे का काम है । लंबे और सफेद घाघरे में हल्के नीले रंग की चूंदनदार झालरें लगी हैं (आ० ४०१)[१५४] । बायीं ओर की दासी का पहरावा कुछ थोड़े फरक के साथ वैसा ही है । इसकी लाल टोपी के साथ एक पीठ पर लहराता रुमाल लगा है जिसका एक सिरा कमर में खोंस दिया गया है । कंचुक के कंधों, मोहरियों और गले पर समूर लगा मालूम पड़ता है । लंबे घाघरे की चुनी झालरें हल्के हरे और नीले रंग की हैं (आ० ४०२) ईरानी सरदार के साथ बैठी हुई स्त्री की वेश-भूषा दासियों के वेश-भूषा सी ही है ।

१७ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र के मध्य में एक दासी जो अपनी वेश-भूषा से विदेशी मालूम पड़ती है, फुल्लों से अलंकृत कंचुक तथा गोल टोपी, जिसके छज्जे ऊपर मुड़े हैं और जिसके चोटी पर कुब्बा है, पहने है[१५५] । उसी लेण के एक दूसरे चित्र में एक सेविका कंचुक और रुमाल, जिसके दोनों छोरों की गट्ठी गले पर लगी है, पहरे है (आ० ४०३)[१५६] । उसी चित्र में एक दूसरी दासी दो बगल मे लगे हुए तस्मों वाली टोपी पहरे है (आ० ४०४) ।

१७ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में एक विदेशी दासी काही रंग की एक अधबहियां जाकेट पहने है जो कमर तक चपकी है और जिसका आगा और कोने खुले हुए हैं (आ० ४०५)[१५७] । जाकेट के कपड़ों पर चौफुलियों की नकाशी है । उसका लहंगा शायद धारीदार रेशमी कपड़े से बना है । उसकी खौदनुमा टोपी के किनारे घुंडीदार हैं ।

२ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में एक स्त्री छोटे बांहों वाली नीले रेशमी कपड़े की बनी कसी चोली, जिसकी मोहरियों पर मोतियों की झालर है, पहने है[१५८] । दक्षिण में अब भी चोली की मुहरियों पर सोने के दानों की लड़ें लगाने की प्रथा है । उसी लेण के एक दूसरे चित्र में हम एक दासी के पहरावे में तीन कपड़े यथा, एक कसी चोली जिसके ऊपर शरीर के अंगों के सुगमता से संचालन के लिए बगलों में ऊपर से नीचे तक कटा हुआ सुंदर कंचुक है, तथा अंग सौष्ठव को दिखलाती एक साड़ी अथवा घघरी है (आ० ४०६)[१५९] । इसी लेण में एक दूसरी जगह हम इसी तरह के एप्रन से मिलते जुलते वस्त्र देख सकते हैं जो सफेद जमीन पर काले सितारों वाले कपड़े से बना है । इसमें शरीर की बगलें दिखलायी देती हैं[१६०] ।

१६ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में पंखा हांकने वाली स्त्री एक स्तनपट्ट और

१५४—याजदानी, वही, प्ले० ३९ ए०
१५५—हेरिंगम, वही, प्ले० २८, ३१
१५६—मुकुल दे, अजंटा एण्ड बाग १४० पृ० के सामने लगा प्लेट
१५७—हेरिंगम, वही, प्ले० ४५, प्ले० ७
१५८—याजदानी, वही, भा० २, प्ले० ७ पृ० ४
१५९—वही, २ प्ले० १७ ए०
१६०—वही, २ प्ले० २५

घघरी पहने है (आ० ४०७)[१६१]। उसी दृश्य में मृतप्राय राजकुमारी के पास बैठी एक दासी अधबहियां जाकेट पहने है।

१६ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में एक बैठी हुई दासी घुटनों तक पहुंचता कसा हुआ अधबहियां कचुक पहने है (आ० ४०८)[१६२]। दवा तैयार करती हुई एक दूसरी दासी छाती को ढंकता हुआ और शायद और नीचे की ओर जाता हुआ अधबहियां कचुक पहने है, पीछे का निचला भाग अनावृत मालूम पड़ता है (आ० ४०९)।

१७ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र मे एक स्त्री पारदर्शी कपड़े की बनी घघरी और वैकक्ष्य पहने हुए उपवन में घूम रही है (आ० ४१०)[१६३]।

१७ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र मे बुद्ध की सेवा में निरत एक स्त्री बिना कंधों और बांहों वाला धारीदार कंचुक और रत्न जटित छ पहली टोपी पहने है (आ० ४११)[१६४] उसी दृश्य में एक दूसरी स्त्री चौखूटी टोपी (आ० ४१२) और एक तीसरी स्त्री घाटदार (tiered) टोपी पहने हैं।

अजंटा में एक जगह जमीन पर पीठ पीछे बैठी एक मध्यवर्ग की स्त्री एक नीचे काले और बिना बांह की चोली पहने है जिसका ऊपरी हिस्सा हरा, पीला, और नीला है और निचला हिस्सा धारीदार (आ० ४१३)[१६५]।

हाथी पर सवार स्त्रियों की वेश-भूषा

बाग के भित्ति-चित्र में एक जगह हाथी पर सवार स्त्रियां दिखलायी गयी हैं। पृष्ठिका में हाथी का महावत सुनहरी धारियों वाली जांघिया पहने है। तीन स्त्रियों में एक जो महावत के पीछे बैठी है किमखाब की बनी छोटी बांहों वाली जिसकी मुहरियों पर हरी गोंट लगी है पहरे है। चोली का आगा स्तनों और पेट को ढंकता हुआ नीचे बढ़ता हुआ जांघों पर समाप्त होता है। इसका निचला भाग अर्धवृत्ताकार कटा है और दोनों छोर चाकदार हैं। यह स्त्री एक धारीदार घघरी भी पहनती है। एप्रन की तरह का उपरोक्त वस्त्र अजंटा के भित्ति चित्रों में कई बार आ चुका है। तीसरी स्त्री का पहिरावा पहली स्त्री का सा ही है केवल चोली का निचला भाग अर्धवृत्ताकार न हो कर सादा है। इसका कपड़ा नीली चित्ती पड़ा हुआ पीला है[१६६]।

१६१—हेरिंगम, वही, प्ले० ३५, ३८

१६२—मुकुल दे, वही

१६३—हेरिंगम, वही, प्ले० ३५, ३९

१६४—वही, प्ले० ४२, ५६

१६५—याजदानी, वही, १, प्ले० ११

१६६—मार्शल, दि बाग केवस, प्ले० जी०
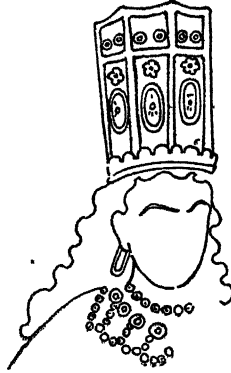
४१० ४११ ४१२

४१३ ४१४
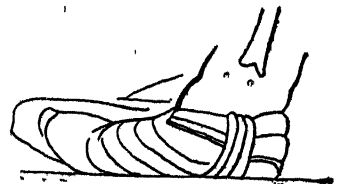
४१५ ए० ४१५ बी०

४१६ ४१७ ४१८

४१९ ४२० ४२१

अजंटा में स्त्रियों के शिरोवस्त्र और मुकुट

अजंटा के भित्ति-चित्रों मे प्रायः स्त्रियां नंगे सिर होती है, पर रानी और दूसरी उच्च श्रेणी की महिलाये कभी कभी मुकुट पहनती हैं। कुछ सेविकाये टोपियां भी पहनती है। कभी कभी चित्रकार हमे स्त्रियों के स्थानिक शिरोवस्त्रों की भी झलक दे देते हैं। १७ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में एक स्त्री, जिसके तन पर यों ही मामूली सा कपड़ा है, एक छपे अथवा कसीदा किये रूमाल से अपना सिर ढंके है[१६७]। २ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में एक स्त्री धारीदार और कामदार टोपी पहने है। फीतों की तरह कंधों पर लटकती चिद्धियां शायद टोपी की झालर की प्रतीक हैं (आ० ४१४)[१६८]। इस तरह का शिरोवस्त्र अजंटा के भित्ति-चित्रों और एलोरा की मूर्तियों मे काफी आता है।

जंगली स्त्रियों की वेश-भूषा

१७ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में एक जंगली स्त्री पर्णनिर्मित घघरी पहने दिखलायी गयी है। इस घघरी की बनावट बहुत सादी है, केवल पत्रों सहित टहनियां एक मनकों की तिलड़ी करधनी से आगे पीछे लटका दी गयी है (आ० ३२४)[१६९]।

ग्रामीण स्त्रियों की वेश-भूषा

अजंटा की कला का संबंध राजमहलों से है और इसमे ग्रामवासियों के चित्र कम ही आते हैं। अजंटा के भित्ति-चित्रों में ग्रामीण स्त्रियां छोटी साड़ी पहनती है। नं० २ की लेण के एक भित्ति-चित्र में अपने प्रसाधन में निरत ग्रामीण स्त्रियां सकच्छ धारीदार छोटी साड़ियां पहनती हैं। उनके बाल या तो एक रूमाल से ढके होते हैं या फीते से बंधे होते हैं (आ० ४१५ ए० बी०)[१७०]।

नाचने, बजाने और गाने वाली स्त्रियों की वेश-भूषा

ग्वालियर रियासत के पवांय नामक स्थान से मिले हुए एक प्राक्-गुप्त या नाग-युग के उतरंग में एक नृत्य का दृश्य अंकित है। इस अर्ध चित्र में आयी वेश-भूषा का काफी महत्व बुंदेलखंड मालवा की वेश-भूषा के इतिहास के लिए है। इस दृश्य में आठ बजाने वाली मध्य में एक नर्तकी को घेर कर बैठी हैं। यह नर्तकी घुटनों तक की धोती पीछे लांग मार कर पहने है। साड़ी अथवा धोती पहनने का यह ढंग बुंदेलखंड में अभी तक प्रचलित है। उसकी छाती बायें कन्धे पर सकरमुद्धी लगे वैकक्ष्य से ढंकी है। उसका केश वेश फेरवटदार है।

१६७—हेरिंगम, वही, प्ले० ३५

१६८—याजदानी, वही, भा० २, प्ले० ३२ तथा ३३बी

१६९—हेरिंगम, वही, प्ले० २७, २९

१७०—प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम की प्रतिकृति से

पृष्ठिका में बजानेवालियां तथा नर्तकी तरह तरह की धोतियां और सामने बंधने वाली चोलियां पहने हैं (आ० ४१६)[१७१]।

१७ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में मजीरा बजाती हुई एक परियों का गिरोह दिखलाया गया है। वे साड़ियां और सुंदरता से बंधे कमरबंद पहनती हैं और उनके दुपट्टे पीछे फड़कते हैं[१७२]। १ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में एक गायक एक लंबा नीला और धारीदार रेशम का बना कंचुक पहने है। धारियों के बीच मे हम पेचक, वृषभ और हंसो की आलंकारिक आकृतियां देखते हैं (आ० ४१७)[१७३]। ये अलंकार पड़ी पट्टियों में है जिनके दोनों ओर वृत्तों से सजी पट्टियां है। उसी गरोह में एक नर्तकी चूंदरी का बना कंचुक पहनती है।

१ नं० की लेण के महाजनक जातक वाले भित्ति-चित्र मे नर्तकी एक लंबा, गहरे भूरे रंग का वृत्तों से अलंकृत पूरे बांह का कंचुक पहरे है (आ० ४१८)[१७४]। इस कंचुक के ऊपर एक एप्रन जैसा वस्त्र है जिसके पक्ष अंग संचालन के सुभीते के लिए ऐसे कटे हैं कि उसके निचले कोने अलग से झूलते है[१७५]। उसका लंबा घाघरा बैगनी, हरी और पीली धारियों से सुसज्जित है जिन की सफेद जमीन पर नग बने हैं। ढोल बजाने वाली की छाती एक धारीदार स्तनपट्ट से, जिसकी गट्ठी पीछे बंधी है और छोर नीचे लटक रहे हैं, ढंकी है। उसकी जांघिया अथवा घघरी के बीच में एक नग जवाहिर से सुसज्जित पट्टी लगी हैं (आ० ४१९)।

बाग के एक भित्ति-चित्र में गायिकाओं के दो गिरोह दिखलाये गये हैं। बायीं ओर के गिरोह में एक नर्तकी को चारों ओर से घेर कर सात बजाने वालियां खड़ी हैं। नर्तकी एक पूरे बांह का हरियाली लिए हुए घुटने तक पहुंचता पीले रंग का कंचुक, जो वृत्त-विंदु अलंकार से सुसज्जित है, पहने है। कंचुक चाकदार है और उसके मुहरियों और चाकदार किनारों पर गोंट लगी है। चौड़ा कोणाकार गला लगता है पीछे से पोशाक की सुन्दरता बढ़ाने के लिए लगा दिया गया था। पाजामा हरियाली लिए हुए पीली धारियों से सुसज्जित है और उसका कंचुक से खूब जोड़ बैठता है (आ० ४२०)[१७६]। उसका सिर सुनहली धारियों वाले एक रूमाल से ढंका है। टिपरी बजाने वाली, जो ढोल बजाने वाली के बगल में खड़ी है, के बायें कंधे पर एक नील और सुनहरी धारियों वाला दोहरा रूमाल है (आ० ४२१)। उसके बगल में खड़ी एक दूसरी टिपरी बजाने वाली हरी और नीली धारियों वाला घाघरा पहने है। उसका कंचुक का बदामी गला खुला है (आ० ४२२)। नर्तकी के दाहिनी ओर खड़ी तीन टिपरी बजाने

१७१—एन० रि० आ० डि०, ग्वा०, १९३०-३१, प्लेट० ८
१७२—हेरिगम, वही, प्लेट० ५७
१७३—याजदानी, वही, भा० १, प्लेट० १० ए
१७४—वही, प्लेट० १२-१३
१७५—इस वस्त्र की तुलना सारनाथ मे मिले गुप्तयुग के उतरंग पर एक नर्तकी के वस्त्र से कर सकते हैं। साहनी, वही, प्लेट० २७
१७६—मार्शल, वही, प्लेट० डी०

वालियों में बीच वाली एक आस्मानी रंग की अधबहियां कंचुकी पहने है जो छाती को ढाकती हुई घुटनों तक पहुंचती है । घघरी में हरी धारियां हैं और उनके बीच की सादी पट्टियों पर कटकुट हैं (आ० ४२३ ए० बी०) ।

बजाने वालियों और नर्तकी के दूसरे गरोह में बैठी हुई नर्तकी पहले गरोह की नर्तकी जैसा ही पहरावा पहने है । उसके पीछे खड़ी एक बजानेवाली फाख्तई रंग की चोली जो शायद रुपहले किंखाब की बनी है पहरे है । उसकी एप्रन की काट पहले गिरोह की एक गाने वाली के कंचुकी की काट जैसी है ।

बाग के एक और भित्ति-चित्र में एक स्त्री गायिकाओं का गिरोह है उसमें सबकी सब चोलियां पहने हैं । बीच वाली गायिका सफेद चित्ती वाली हरी चोली पहने है । उसके बायीं ओर वाली नर्तकी मुकुट पहने है और उसका जूड़ा एक सफेद रूमाल से ढंका है, उसके नीचे कंचुक पर एक एप्रन की शकल वाला वस्त्र है । नर्तकी की बगल वाली गायिका आसमानी रंग की अधबहियां चोली पहने है[१७७] ।

कपड़ों पर आये हुए अलंकार

अभी तक तो हम पहरावों पर आयी हुई नक्काशियों का वर्णन करते आए हैं लेकिन अजंटा के भित्ति-चित्रों में अंकित परदों खोलियों इत्यादि पर भी नक्काशियां मिलती है। इनका इसलिए अधिक महत्त्व है कि गुप्त-युग की कपड़ों पर की नक्काशियां और कहीं देख नहीं पड़तीं । नं० १७ की लेण के एक भित्ति-चित्र में हम दो परदे देखते हैं । उनमें से एक परदा हरे रंग का है और सफेद बिंदुओं की पंक्तियां से पट्टियों में विभाजित हैं । उस पर फूल की नक्काशियां भी बनी हैं । दूसरे परदे पर गेरुए रंग की धारियां है और सफेद जमीन पर नीले फूलों की पंखड़ियां बनी हैं (आ० ४२४)[१७८] । इसी लेण के एक दूसरे चित्र में धारीदार कपड़े की गद्दी है जिसमें एक पट्टी छोड़ कर दूसरी पट्टी में शतरंज का अलंकार बना है (आ० ४२५)[१७९] । उसी लेण के एक तीसरे चित्र में, जिसमें काशिराज सुनहरे हंस की पूजा करते दिखलाये गये हैं, कई थानों के परदे लटके हैं । काशी बहुत प्राचीन काल से ही कपड़े का केन्द्र था और इसीलिए काशी संबंधी दृश्य में नक्काशीदार कपड़ों का प्रदर्शन कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है । एक टुकड़े में तिरछी पंक्तियों में सजे फुल्ले हैं (आ० ४२६)[१८०] । दूसरे में खिले फूल हैं और तीसरे में पेचकों की लड़ियां हैं।

१ नं० की लेण के एक महल के चित्र में भी हम कुछ कपड़ों पर बनी नक्काशियां

१७७—वही, प्ले० सी०

१७८—हेरिंगम, वही, प्ले० १, १

१७९—वही, प्ले० २२, २४

१८०—वही, प्ले० २५, २८

पाते हैं[१८१]। स्त्रियां धारीदार कपड़ों की बनी घघरियाँ पहने हैं। एक हल्के रंग के कपड़े से बनी रानी की घघरी पर कत्थई रंग की पड़ी हुई धारियां हैं जिन पर तीर के फलों जैसे अलंकार, जो पक्षियों के रूढ़िगत आकार भी हो सकते है, बने है (आ० ४२७)। रानी के ठेठ बायीं ओर की स्त्री की घघरी पर वृत्त बने हैं। पृष्ठिका में बायीं ओर खड़ी चामरग्राहिणी एक हल्के हरे रंग की घघरी, जिस पर कत्थई रंग की धारियां पड़ती हैं, पहने है। उसी लेण के एक महल के चित्र में गद्दियां चौपतियों से सजे कपड़े से बनी है (आ० ४२८ ए० बी०)[१८२]। पुनः उसी लेण के एक चित्र में दो तकियों पर निम्नलिखित नक्काशियाँ बनी हैं[१८३]। (१) चांपेय की तकिया का कपड़ा सुनहरा अथवा रुपहला है जिस पर रेशम तथा सुनहले या रुपहले तार से छोटे छोटे सितारे बने हैं। (२) रानी की गद्दी के गहरे रंग के कपड़े पर सितारे अथवा चौपतियां बनी हैं।

२ नं० की लेण के एक चित्र में गद्दी के कपड़े पर शतरंज का अलंकार जिसके कोनों पर सितारे हैं बना है[१८४]।

१८१—वही, प्ल० १४, १६

१८२—वही, प्ले० २८, ३७

१८३—याजदानी, वही, भा० १, पृ० ५९, प्ल० ३४ ए० १

१८४—वही, भा० २, प्ले० १२

४२२
४२३
४२३
४२४
४२५
४२६
४२७
४२८
४२८

अनुक्रमणिका

कवर्ग

चवर्ग

टवर्ग

तवर्ग